मिलेगा। कबीर दास जी ने जो कुछ अपने मुख से कहकर बताया है, सन्तों के द्वारा दिखाई गई दृष्टि के बिना वह बात बुद्धि के नीचे नहीं आएगी। इसीलिए सन्तों के चरणों में अपना सिर रख दो और यह शरीर यथार्थ कार्य एवं वार्तालाप में समाप्त हो। कबीरदास जी ने जो ग्रंथों के अन्तर्गत कहा है, वही भेद हमें सन्तों में दिखाई पड़ता है। हे स्वामी! हम सब ग्रंथों में जूझ रहे हैं—हमें इसकी चिन्ता नहीं है कि किस प्रकार वह हमारे हाथों में आए। संत जन सुरति समाधि द्वारा चढ़कर जो उस पार चढ़ गए हैं, उनके द्वारा वे विलक्षण रहस्यों को प्राप्त करते हैं। वे न संसार की भेद रचना एवं भेद पर विचार करते हैं और असार-सार की भी इन्हें पूरी समझ नहीं है। दीन बनकर ये अपने को सत्संगति द्वारा तौलते हैं उससे इन्हें अमूल्य वस्तुओं की सूझ होती है। ये यदि दीनभाव से परिपूर्ण होकर अपनी दासता को तौलें तो उन्हें श्रुति (सन्तों की वाणी का सार तत्त्व) प्राप्त हो। मैंने तो सन्त की शरणागति प्राप्त कर ली है और अन्य किसी बात पर विश्वास नहीं होता। यदि कोई मुझे लाख-लाख तरीके से समझाए किन्तु मूल बात मेरी समझ में एक भी नहीं आती।

॥ चौपाई ॥

कहो को खोज सार कर दीन्हा। हम तो स्वामी तुलसी चीन्हा॥
संत कही और दास कबीरा। जो जो अगम पंथ पद धीरा॥
जिन जिन स्वाद पाइ पद हेरा। होइ हौं उन चरनन कौ चेरा॥
चरन लाग तुलसी के तीरा। उनहिं लखाया अद्‌बुद हीरा॥
अब कहुँ चित्त लगै नहिं भाई। तुलसी बस्तु अमोल लखाई॥
बार बार चरनन सिर नाई। कहिहैं तुलसी मोर सहाई॥
अब तौ पोढ़ पोढ़ कर पकड़ा। तुलसी चरनन में मन जकड़ा॥
और कहूँ मोहिं बोध न आवै। जो कोइ कोटि कोटि समझावै॥
समझि परा सब बात बिधाना। तुलसी बिन सूझै नहिं आना॥

अर्थ—बताइये किसने उस मूल तत्त्व के निचोड़ का अन्वेषण किया है, हमने तो इस विषय में केवल स्वामी तुलसी साहब को पहचाना है। निर्गुण मत के अन्तर्गत जो-जो अगम्य धर्म पन्थ हैं, उसे सन्तों ने कहा है या कबीरदास जी ने जिन-जिन सन्तों का स्वाद प्राप्त करते हुए स्वामी के पदों में उसे खोजा है, मैं उनके चरणों का दास हुआ। इस प्रकार मैं, तुलसी के चरणों के तट से लग गया हूँ। इन्होंने ही अद्‌भुत हीरे का दर्शन कराया है। हे भाई! अब यह चित्त और कहीं नहीं लग रहा है। तुलसी साहब ने अमूल्य वस्तु दिखा दी है। मैं बार-बार उनके चरणों में शीश झुकाता हूँ तुलसी साहब मेरी सहायता करेंगे। अब तो उनके चरणों को मैंने लेट-लेट कर पकड़ रखा है और तुलसी साहब के मन में यह चरण जकड़ उठा है। अन्य कहीं भी स्थान पर मुझे तत्त्व की बात समझ नहीं आती—चाहे कोई मुझे करोड़ों-करोड़ों बार क्यों न समझाए। सारी बातें एवं उनमें निहित रहस्य मुझे समझ में आ गया और बिना तुलसी साहब के कथनों को समझे यह अन्य किसी द्वारा सम्भव नहीं था।

॥ दोहा ॥

फूलदास बिनती करै, पुनि पुनि सरन तुम्हार।
मैं अचेत चेतन कियौ, तुलसि उतारयो पार॥

अर्थ—फूलदास तुलसी साहब से विनय कर रहे हैं कि मैं पुनः आपकी शरण में हूँ। मेरा मन अब संत चरणों में बस गया है और लगता है, तुलसी साहब की मदद से मैं अब भवसागर के उस पार उतर गया हूँ॥

॥ वचन तुलसी साहिब। दोहा॥

फूलदास सज्जन बड़े, तुम चित मति बुधि सार।
संत चरन अब मन बस्यौ, पैहौ सतसंग सार॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते है कि–हे फूलदास! तुम बड़े सज्जन हो, तुम्हारी मति, तुम्हारा चित्त और तुम्हारी बुद्धि सारग्राहिणी है। अब तुम्हारा मन सन्तों के चरणों में बस गया है और तुम्हें सत्संगति का सार तत्त्व (निष्कर्ष तत्त्व) प्राप्त होगा।

॥ चौपाई॥

फूलदास तुम साध सुजाना। तुम्हरी बुधि निरमल परमाना॥
दिन दोपहर भयौ मध्याना। अब परसादी करौ समाना॥
आटा चून चना कर होई। करौ प्रसाद भाजी सँग सोई॥
घीव न पास न पैसा होई। नोन मिरच चटनी सँग सोई॥
किरपा कर प्रसाद बनाई। पुनि वा को सब भोग लगाई॥

अर्थ–तुलसी साहब फूलदास को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे फूलदास! तुम सहृदय साधु हो अब प्रसादी (भोजन) की व्यवस्था करो, दिन दोपहर का मध्याह्न हो उठा है॥

चनाचूर्ण (चूनी) का आटा है, उसके साथ भाजी बनाकर प्रसाद ग्रहण करें। घी नहीं है और पास में पैसा भी नहीं है–नमक, मिर्च और चटनी के साथ उसे बनाएँ। कृपा करके आप प्रसाद बनायें और उसका सब भोग लगाएँ॥

॥ फूलदास उवाच। चौपाई॥

हम नहिं अपने हाथ बनैहैं। सीत उचिष्ट चरनामृत पैहैं॥
तुलसी उठि परसाद बनावा। भया प्रसाद साध सब आवा॥
सब साधू मिलि भोग लगाई। भोजन करि आसन पर आई॥
फूलदास बंदगी सिर नाई। सीस टेक कर परसे पाँई॥
हाथ जोड़ कर बिनती लाई। स्वामी मोहिं भव पार लगाई॥
हमहूँ दीन दडवत कीन्हा। सीस नवाइ चरन पुनि लीन्हा॥

अर्थ–हम उसे अपने हाथ से नहीं बनाएँगे। मैं तो उच्छिष्ट और ठंडा प्रसाद ग्रहण करेंगे। तुलसी साहब ने उठकर प्रसाद बनाया। प्रसाद बना, समस्त साधु गण आ गए। सभी साधुओं ने मिलकर प्रसादी का भोग लगाया और भोजनोपरान्त अपने आसनों पर आ बैठे। फूलदास ने प्रणाम करते हुए सिर झुकाया और कहा, हे स्वामी? आपने मुझे भवसागर के पार लगा दिया।

तुलसी साहब कहते हैं कि मैंने भी दीनतापूर्वक दंडवत् और फिर उनके चरणों में शीश झुकाकर उसे ग्रहण किया।

रेवतीदास चरित्र

॥ वचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

फूलदास संग रहि इक साधा। मनमुख और मान मद माता॥
रेवतीदास ताहि कर नामा। फूलदास देखि घबराना॥
पुनि बोला मन में रिसियाना। स्वामी अब चलिये अस्थाना॥
फूलदास कहै आज न आवौं। तुम सब मिलि अस्थानै जावौ॥
हमहूँ भोर बिहानै अइहैं। राति यहीं चरनन में रहिहैं॥
तिन पुनि तरक कीन्ह इकबाता। तुम हूँ रहि हौ इनके साथा॥
हम को सूझि परा अस लेखा। तुम्हरी मति बुधि अचरज देखा॥

अर्थ–एक साधु फूलदास के साथ रहता था, वह अन्तर्मुखी तथा मान एवं मद में मत्त रहता था। उनका नाम रेवतीदास था और फूलदास को देखकर वह घबड़ा गया और मन-ही-मन नाराज होकर वह पुनः बोला कि है स्वामी! अब आप अपने स्थान (मठ) में चलिए। फूलदास ने उत्तर दिया कि मैं आज नहीं आऊँगा और तुम सब मिलकर अपने स्थान (मठ) पर जाओ। मैं भी कल प्रातः आऊँगा और आज की रात्रि यहीं पर तुलसी साहब के चरणों में विश्राम करूँगा। उसके बाद पुनः उसने एक बात की तर्कणा की कि आप भी इनके साथ रहेंगे। हमें कुछ ऐसा समझ पड़ा है कि मैं आपकी मति और बुद्धि को आश्चर्य से देख रहा हूँ।

॥ फूलदास ॥ चौपाई ॥

गुसा खाइ बोल अस बोली। लै उतार दीन्ही सोइ सेली।।
फूलदास दीन्ही तेहि हाथा। रेवती सीस नवायौ माथा॥
गल बिच डारि महंती दीन्हा। सुखपालै बकसीसी कीन्हा॥
तुम तौ करौ महंती जाई। अब हम नहिं अस्थानै आई॥
चेला चला बैठि सुखपाला। फूलदास भया और हवाला॥
चेला मारग मता बिचारा। मन में सोच किया अधिकारा॥
छाँड़ि महंती हमको दीन्हा। या से अधिक बात कछु चीन्हा॥
सब सुख भोग मनै नहिं लाये। ये तौ अधिक बात कछु पाये॥
जो महंत पद होता भारी। तौ छाँड़त ये देत न डारी॥
ये सब बात तुच्छ सम होई। तल हमरे सिर डारी सोई॥
ये बिचार मन माहि समाना। मति भई सुद्ध उठा अस ज्ञाना॥
फिरि पीछे मारग से आये। सुखपालै अस्थान पठाये॥
सब मिलि कै जावौ अस्थाना। हम महंत संग उपज्यो ज्ञाना॥
मंगलदास रहे गुरु भाई। टोपी सेली तेहि पहिराई॥
आये पुनि महंत के पासा। जहँ तुलसी की कुटी निवासा॥

चौरदार सुखपाली गाइया। चौरा पर उन खबर जनाइया॥
मंगलचेला सुनि पछिताना। चौरा सून भया अस्थाना॥
पुनि बिचार कीन्हा मन माईं। यह अस्थान महंती जाई॥
ये दोनों मिलि कीन्ह बिचारा। हम छाँड़ै तौ होय बिगारा॥
जो कछु होइ होइ सो होई। अब निबाह बिन बनै न सोई॥
मंगल मन मैं बहुत रिसाना। सेली पहिरि बैठि अस्थाना॥
रेवतीदास कुटी पर आवा। ले पकरे तुलसी के पाँवा॥
रेवतीदास बोले अब बानी। मैं रहि हौं इनके ढिंग स्वामी॥
कुटी सामने कुटी बनाई। दोनों रहे कुटी के माईं॥
रेवतीदास दीन दिल आनी। स्वामी से पूछौं इक बानी॥
गुरु चेला कर कैसा लेखा। सो स्वामी मोहिं कहौ बिबेका॥

अर्थ–गुस्सा होकर वे (फूलदास) इस प्रकार की बातें कहीं और अपनी उस सेली (महन्ती का चिह्न) को उतार दिया। फूलदास ने उसे उसके हाथों में दे दिया और रेवती दास ने अपना माथा और सिर झुका दिया। उसे रेवतीदास के गले में डालकर उन्हें महन्ती दे दी और एक प्रकार से सुखपाल के लिए पुरस्कार प्रदान किया। हे भाई! तुम जाकर अब महन्ती करो और अब मैं उस स्थान पर नहीं जाऊँगा। चेला रेवतीदास तो चल पड़ा किन्तु सुखपाल बैठा रहा और फूलदास की एक अन्य विशेष स्थिति हुई। शिष्य सुरतिदास ने मार्ग में यह विचार और मन-ही-मन अपने अधिकार के बारे में भी सोचा। महन्ती छोड़कर हमें दे दी है–लगता है, महन्ती से कोई बड़ी बात उनके समझ में आ गई है। यहाँ समस्त सुखों का भोग है, जिनके प्रति उन्होंने मन को नहीं संसक्त किया है, इन बातों से कोई बड़ी बात तुलसी के मठ में पा गए हैं। यदि महन्त का पद बड़ा होता तो उसे इस प्रकार वे न छोड़ देते। ये सारी महन्ती की बातें तुच्छ जैसी हो उठी है और उसे हमारे ऊपर ड़ाल दिया है।

यह विचार रेवतीदास के मन में समाविष्ट हो उठा–इनकी मति शुद्ध हो उठी और उसमें इस प्रकार का ज्ञान उत्पन्न हुआ। वे मार्ग से लौट कर उनके पास आए और सुखपाल को अपने स्थान पर भेज दिया। अब तुम सभी मिलकर कबीर मठ में जाओ, हम महन्त के साथ रहेंगे ऐसा ज्ञान उत्पन्न हुआ है। उनके गुरुभाई मंगलदास थे–उन्होंने सेलीमाला तथा टोपी उन्हें पहना दी और इसके बाद वे महन्थ फूलदास के पास आए–जहाँ पर तुलसी की कुटी उनके निवास स्थली के रूप में थी। चौबदार ने सुखपाली गाई और कबीर चौरा पर यह खबर दी।

उसे सुनकर मंगलदास नाम के शिष्य को बड़ा पछतावा हुआ और उसने कहा कि लगता है, कबीर चौरे का स्थान सूना हो उठा। उनहोंने पुनः मन में विचार किया कि यदि यहाँ कोई नहीं रहता तो इस स्थान की महन्थी समाप्त हो उठेगी। ऐसा उन दोनों (मंगलदास और सुखपाली) ने विचार किया कि यदि हम इस स्थान को छोड़ देते हैं तो यहाँ की व्यवस्था नष्ट हो उठेगी। जो कुछ होगा, सो होगा, बिना निर्वाह के अब यह कबीर चौरा का स्थान समाप्त हो उठेगा। यद्यपि मंगलदास मन में बहुत खिन्न थे, फिर भी, सेली पहन कर उस स्थान पर बैठ गए।

उधर रेवतीदास तुलसी साहब की कुटी पर आए, और उनके पावों को पकड़ लिया। रेवतीदास ने उनसे इस प्रकार की बात कही कि हे स्वामी! मैं फूलदास के पास ही रहूँगा। उन्होंने फूलदास के सामने कुटी बनाई और दोनों के मध्य रहे। रेवतीदास ने दिल में दीनता ले आकर कहा मैं स्वामी से (तुलसी साहब) से एक बात पूछना चाहता हुँ। गुरु और शिष्य के बीच का सम्बन्ध कैसा है–हे स्वामी! तुलसी साहब! इस सम्बन्ध में कतिपय ज्ञान की बातें कहें।

बचन, तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

रेवतीदास सुनौ तुम भाई। याकी बिधि कहौ समुझाई॥
नहि कोई गुरू नहीं कोइ चेला। बोलै सब में एक अकेला॥
जो कोइ गुरु चेला कर जाना। सोइ सोइ परे नर्क की खाना॥
एक बोल सब माहिं बिराजा। गुरु चेला दोइत बिधि साजा॥
चेला होइ नीकि बिधि भाई। कुरू होई चौरासी जाई॥

अर्थ–हे भाई! रेवतीदास तुम सुनो, मैं इस विषय में समझाकर बताता हूँ। न कोई किसी का गुरु है और न कोई किसी का शिष्य। सभी के अन्तर्गत वह अकेला 'निरंकार' तत्त्व बोल रहा है। जो कोई एक दूसरे को गुरु या चेला कहकर जानता–वे सभी नरक की खानि में पड़ते हैं। एक शब्द सभी में विराजमान है और उस एक शब्द को इस संसार ने 'गुरु तथा शिष्य' के इन दो शब्द रूपों में सजा दिया है। हे भाई! चेला होकर अच्छी पवित्र विधियों को प्राप्त कर सकता है–और गुरु होकर वह चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है।

॥ दोहा ॥

तुलसी मैं तू जो तजै, रहै दीन गति सोइ।
गुरू नवै जो सिष्य को, साध कहावै सोइ॥ १॥
तुलसी कह रेवती सुनौ, कहौं कबीर मुख बात।
कहि कबीर सब में बसौं, को गुरु चेला साथ॥ २॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि जो हन्ता एवं त्वदीप (मैं तुम) को परित्यक्त करता है, दीनता भरी गति में जीवन यापन करता है वह गुरु यदि शिष्य के प्रति नमन करता है तो वही सच्चा साधु है॥ १॥

तुलसी साहब कहते हैं कि हे रेवती! सुनो मैं स्वयं कबीरदास के मुख से कही हुई एक बात कहता है हूँ कि मैं (कबीर) गुरु तथा चेला के साथ-ही-साथ सभी में एक समान रूप से निवास करता हूँ।

॥ चौपाई ॥

कब कबीर सब माहि बिराजौं। सब मैं किया सभी मैं साजौं॥
कह कबीर हम सब के माईं। सब हम किया सभी सब ठाईं॥
सब के माहीं बासा कीन्हा। सब में हमीं हमीं को चीन्हा॥
जो महंत चेला करै भाई। सब में रहा कबीर समाई॥
ये बिधि बिधी कबीर पुकारा। का को चेला करै लबारा॥
घट घट माहिं कबीर समाना। का को चेला करै हैवाना॥
कहा कबीर मोपि सब में बूझा। चेला करै आँखि नहिं सूझा॥
है कबीर सब काया माईं। ता को तुम चेला ठहराई॥
कह कबीर सब ठाम ठिकाना। सोई कबीर का फूँकौ काना॥
तुम्हरी मति कहौ कौन हिराई। कहा कबीर हम ठामै ठाईं॥
कहते तुमको लाज न आई। कहौ कबीर फिर गुरू कहाई॥
कहौ कबीर सब माहिं समाना। गुरू कबीर की करौ बखाना॥

तुम कबीर को स्वामी गावौ। पुनि वा को चेला ठहरावै॥
कस कस ज्ञान तुम्हारा भाई। भूल न अपनी देखौ जाई॥

अर्थ–कबीर साहब ने कहा है कि मैं सभी में समान रूप से विराजमान हूँ। मैंने ही समस्त सृष्टि की रचना और उसकी साज सज्जा की है। कबीर साहब कहते हैं कि मैं ही सभी का स्वामी हूँ, मैंने ही समस्त सृष्ठि रचना की है और उसमें मैं सर्वत्र स्थित हूँ। मेंने सम्पूर्ण सृष्टि के बीच निवास किया है–सभी में मैं ही हूँ और सभी मुझे ही पहचानते हैं। जो महन्त और उनके शिष्य करते हैं, मैं उनमें समाया रहता हैं। जगत के विधाता कबीर ने इस प्रकार बताया है फिर कौन ऐसा लबार गुरू होगा जो किसी को चेला बनाने की बात करेगा।

घट-घट में कबीर समाये हुए हैं, फिर, राक्षस जैसा गुरु किसे चेला बनाएगा। कबीर ने बताया है कि मुझे ही सबमें समझो फिर वह कौन-सा ऐसा अंधा गुरु होगा, जो चेला बनाएगा। गुरु-शिष्य दोनों इसी काया (शरीर) में वर्तमान हैं और उसे गुरु बनकर चेला निर्धारित करते हो, यह गलत है। कबीर दास जी ने कहा है कि सभी का निवास स्थान यह शरीर ही है और उन्हीं कबीर रूपी (मनुष्य) शिष्य का (गुरु बनकर) कान फूंकते हो। कबीरदास जी ने कहा है कि हम स्थान-स्थान (सर्वत्र) हैं–ज्ञात नहीं, तुम्हारी मति को कहो किसने खो डाला है। यह कहते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आ रही है, इस पर भी तुम कबीरदास जी को गुरु कहते हो।

जब कबीर सर्वत्र समाए हुए हैं तो तुम लोग गुरु कबीर का वर्णन कर रहे हो, (यह आश्चर्य का विषय है)। तुम सब कबीर को परमात्मा कह कर मानो। और तब तुम सब लोग उनके शिष्य बनो। हे भाई! तुम्हारा यह ज्ञान कैसा है, अपने ही घर की (मन की) भूल जाकर नहीं देखते।

अगम निगम का ज्ञान सुनावौ। अपने घर की भूल न पावौ॥
कहि कबीर मुख गाना गावौ। सब्द न खोजौ पोल चलावौ॥
नहिं कोई तुम को पकरन हारा। सो धन सब्द समझ की लारा॥
ता से सील पोल तुम लाई। पकरै तो कछु ज्वाब न आई॥
और अनेक बात अस नासी। कौन कौन कहुँ तुम्हारी फाँसी॥
अपना मता ऊँच करि ठानौ। ऊँचे का कछु भरम न जानौ॥
कहि कबीर मुख साँची बानी। तुम अबूझ कछु परख न जानी॥
कहि कबीर कथनी को गावै। बूझै वान न ता कौ आवै॥
मूक स्वाल हम पूछैं भाई। कँवल चौरासी कौने ठाईं॥
या की भेद राह बतलाई। कौन ठाम वे कँवल रहाई॥
नौलख कंवल कबीर बखाना। कहौ तु न उनका कौन ठिकाना॥
सहस कँवल दल सो पुनि भाखा। अष्ठ कंवल दल भेद कहौ ताका॥
चारि कँवल दल देव बताई। दोह दल कँवल कौन से ठाईं॥
ये सब कँवल जोग से न्यारा। जोगी न जानै भेद बिचारा॥
कँवल चक्र षट जोगी गाई। ऊन कँवलन से न्यारे भाई॥
या की बिधि बिधि कहौ बुझाई। कही कबीर पंथ तेहि नाहीं॥
जो कबीर मुख भाखि बखानी। ता की तुम या पूछौं बानी॥

अर्थ–अगम-निगम का ज्ञान तुम सुनाते हो लेकिन अपने मन की भूल तुम्हें समझ में नहीं आती। कबीर का नाम लेकर अपने मुख से कहते हो तुम शब्दों (कबीर के अनुभव एवं ज्ञान से जुड़े शब्द) को नहीं खोजते, झूठी गप्पे चलाते हो। तुम्हें यहाँ कोई पकड़ने वाला (समझाने वाला) नहीं है--मूल तत्त्व (धन , तो 'सबद' है, और वही आध्यात्मिक समझ का सारतत्त्व है। उसके स्थान पर तुमने कल्पित बातों को लाकर रख दिया है, और कोई उसे समझाए तो उसका उत्तर तुम्हारे पास नहीं मिलेगा। इसके अतिरिक्त और कई बाते हैं, जो तुम्हारा विनाश कर रही हैं--तुम्हीं बताओ, तुम्हारे और कौन-कौन बन्धन हैं।

तुम अपनी बातें ऊँची कहकर स्थापित करते हो, किन्तु तुम श्रेष्ठता का कोई मर्म नहीं पहचानते। कबीरदास जी कहते हैं कि जो केवल कथनी का गान करता रहता है, उससे पूछने पर उत्तर नहीं मिलता। हे भाई! हम केवल एक सीधा प्रश्न पूछते हैं, कि चौरासी कमल किस स्थान पर हैं। उनके रहस्य तथा मार्गों का वर्णन करें तथा यह भी बतलाएँ कि ये कमल किस स्थान पर रहते हैं? कबीरदास जी ने तो 'नौलख' कमलों की चर्चा की है, तुम्हीं बताइये, उनके ठिकाने क्या हैं? उन्होंने सहस्त्रदल कमल की व्याख्या की है--यह बताओ कि अष्टदल कमल किसके भेद हैं।

इसी के साथ ही, तुम चार कमल दलों का रहस्य बतला दो--और यह भी बताओ कि दो दल कमल का स्थान क्या है?

ये समस्त काल योग से विलक्षण हैं और इसीलिए बेचारे योगिजन भी इनके भेदों को नहीं समझते। योगिजन षट् चून कमल का गायन करते रहते हैं--ये कमल उन कमलों से विलक्षण हैं।

इनकी समस्त विधियों को समझा कर बताओ-इनका वर्णन कबीर पंथ में नहीं किया गया है। जिसे कबीर ने अपने मुख द्वारा कहकर बताया है, उसी की बात मैं तुमसे पूछता हूँ।

॥ चौपाई ॥

असु सब भेद कहौं समझाई। रेवतीदास सुन चित्त लगाई॥
षष्ट कँवल जोगी पुनि गाई। या का तुम को भेद बताई॥
रहै चार दल गुदा के मईं। और दूजो को बिधी बताई॥
छः दल कँवल नाके नीचें। अष्ट दलमल पुहमी के बीचे॥
पखड़ी बारह हिरदे माईं। सोलह पखड़ी कंउ रहाई॥
उदित मुदित दीप कहावै। ता में सहस कँवल को पावै॥
कँवल चक्र पट खुल के कहिया। संत कंवल भिनि न्यारे रहिया॥
ये कँवला षट चक्र से न्यारा। उनकी जानै संत बिचारा॥
षोड्स द्वार काया के माईं। तुम जानौ दस द्वार रहाई॥
छः त्रिकुटी काया के माईं। तुम जानौ पुनि एकै भाई॥
नाल सताइस काया के माईं। अट्ठाइस पुनि बंक कहाई॥
बाइस सुन्न संत बतलावा। ये कबीर मुख अपने गावा॥
मान सरोवर सुषमनि नारी। तिरबेनी ब्रह्मंड के पारी॥
इतना भेद कहा हम गाई। भिन्न भिन्न कर दिया बुझाई॥
ये हम कहा भाखि सोइ देखा। ये कबीर ने भाखा लेखा॥

जो कोइ या का भेद बखानै। पथ कबीर जाहि को जानै॥
कहि कबीर की भाखि सुनावै। ये झूठै औरन की गावै॥
अपना चखा स्वाद बतलावै। और की करनी काम न आवै॥
और की करनी बूझ बुझावै। सो अपना कारज नहिं पावै॥
गुरु चेला का बूझौं लेखा। सौ गुरु का मैं कहाँ बिबेका॥
जगत गुरू नहिं संत पुकारा। सतगुरु भेद जगत से न्यारा॥
जो कोई चढ़ै गगन को धावै। सो सतगुरु के सरनै आवै॥
सतगुरु सत्त पुरुष हैं स्वामी। सो चौथा पद संत बखानी॥

अर्थ–हे रेवतीदास! मन लगाकर इसे सुनो–मैं समझाकर इनके भेदों को बताता हूँ। योगी 'षष्टकमलदल' का गान करते हैं, मैं तुम्हें इसका भेद बताता हूँ।

गुदा के पास 'स्वाधिष्ठान केन्द्र' में चार दल कमल हैं और अन्य दूसरे की विधि इस प्रकार है। षष्टदल कमल नाम के नीचे हैं और अष्टदल कमल पृथ्वी के बीच में। बारह पंखड़ियाँ हृदय के मध्य में हैं और सोलह पंखड़ियाँ कंठ में रहती हैं. इस शरीर में 'उदित तथा मुदित' नामक दो द्वीप हैं–उसी में सहस्त्रार कमल को प्राप्त किया जाता है षट् चक्र कमल का खुलकर वर्णन करता हूँ, संत जन इन कमलों से भिन्न अलग ही रहते हैं।

यह कमल षट्चक्र कमल से भिन्न है, उनके विषय में संतों के विचार आप जाने। शरीर के मध्य सोलह द्वार हैं–तुम तो केवल यही जानते हो कि केवल दस द्वार हैं। इस शरीर के मध्य छः त्रिकुटियाँ हैं और तुम तो यही जानते हो कि वह केवल एक है। इस शरीर के बीच सत्ताइस नाल हैं–और पुनः अट्ठाइस बंक नाल हैं। बाइस शून्यों के विषय में सन्तों ने बतलाया है और स्वयं कबीरदासजी ने अपने मुख से कह रखा हैं। सुषुम्ना नाड़ी मानसरोवर है और त्रिवेणी ब्रह्मांड के उस पार है। इतना रहस्य भेद हमने कहकर बताया और उनके विषय में अलग-अलग समझाया है। यह हमने उसे बताया है–जिसे स्वयं देखा है और कबीरदास जी ने इनका लेखाजोखा कह रखा है। जो भी व्यक्ति इनका भेद बताता है, उसी को कबीर पंथ का साधु समझिए। (लोग तो ऐसे हैं कि) नाम तो कबीर साहब का लेते हैं और झूँठे ही दूसरों की बातें गाते हैं। जो अपने द्वारा चखा गया हो, उसी को स्वाद बतलाना चाहिए। किसी दूसरे को करनी और उसका अनुभव (गप्प की तरह) समझो और समझाओ–कोई उसके द्वारा अपने कार्य की सिद्धि नहीं प्राप्त करते॥

इस प्रकार, गुरु और शिष्य के सत्य संदर्भ को समझो और मैं ऐसे गुरु के ज्ञान (विवेक) के विषय में कह रहा हूँ। इस सांसारिक गुरु को सन्त नहीं कहा जा सकता। सत्गुरु का भेद तो इस संसार से विलक्षण है। जो साधक शून्याकाश पर चढ़कर दौड़े, वही सत्गुरु की शरण में आता है, दूसरा नहीं। सत्गुरु ही स्वामी परमात्मा एवं सत्त पुरुष है और उसका स्थान चौथा पद है, ऐसा सन्तों ने वर्णित किया है।

॥ सोरठा॥

तुलसी कहै बिचार, रेवती यह बिधि गुरु लखौ।
चखौं अमर पद सार, देखि आदि अन्दर मई॥

अर्थ–तुलसीदास विचार करके कहते हैं कि हे रेवती! इस प्रकार गुरु को देखो। उसको देखते हुए अमरत्व के पद से जुड़े सार तत्त्व का आस्वादन करो और उस आदि तत्त्व को अपनी अन्तरात्मा में ही देखो।

प्रश्न, रेवतीदास और फूलदास ॥ चौपाई ॥

सुनि रेवती मन संसय आनी। तुम ने औरै और बखानी॥
जस जस बचन बिधी समझावा। अस आगे कोउ संत न गावा॥
औरो संत गये वहि राही। सो अब उनकी साखि सुनाही॥
सत्त सुधा रस जिनकी बानी। कहिये नाम भेद गुर छानी॥
येहि बिधि फूलदास पुनि बोला। पूछै बिधि गुरू और चेला॥
स्वामी या की साखि सुनाई। अगम पंथ को संतन पाई॥
भिनि भिनि न्यारा नाम बताई। जिनकी साखी सब्द सुनाई॥
अनुभौ भिनि भिनि सज कर न्यारा। भाखौ एक एक बिस्तारा॥
संत संत की न्यारी बानी। एक एक की कहौ निसानी॥

अर्थ–इसे सुनकर रेवतीदास के मन में संदेह उत्पन्न हुआ और कहा कि आपने तो और का और अन्यथा) वर्णन कर डाला। जिन-जिन वर्णन रूपों द्वारा आपने उनकी विधि समझाई है–ऐसा आगे किसी सन्त ने नहीं कहा है–अनेक सन्तगण भी उसी मार्ग का अनुभव किये हैं–अत: अब मैं उनकी साखी (अनुभव का साक्ष्य) सुना रहा हूँ। जिनकी बाणी ही सत्य सुधारस है: गुरु ने उनके नाम तथा वेद को निचोड़कर कहा है। इस प्रकार पुन: फूलदास भी बोले और गुरु तथा चेला की विधि पूछी। हे स्वामी! इसकी साखी (अनुभव साक्ष्य) बताइये क्योंकि सन्तों ने ही उस अगम्य पंथ को प्राप्त किया है, अन्यों ने नहीं। उन्होंने इसका भिन्न-भिन्न विलक्षण नाम बताया है और जिनके विषय में साखी (आत्मानुभव का साक्ष्य) एवं सबद (परम्परा के ऋषि अनुभवों का कथन) सुनाया है। सभी के अनुभव भिन्न-भिन्न और विलक्षण हैं और उनका एक-एक करके विस्तारपूर्वक वर्णन करें। सन्तों की पारस्परिक वाणी भिन्न-भिन्न रूपों की है और हर एक वाणी को चिह्नित करते हुए हमें बतायें॥

॥ उत्तर, तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

कहै तुलसी तुम सुनिये काना। संत शब्द का करौं बखाना॥
दादू मीरा नाभा भाई। नानक दरिया सूर सुनाई॥
अरु कबीर पुनि भाखा भाई। और अनेक संत बिधि गाई॥
जो जो संत अगम पर धाये। जिन जिन साखी शब्द सुनाये॥
सत चरन रज तुलसीदासा। कछु कछु भाखा अगम बिलासा॥
तुलसी संत चरन की लारा। मेरी बुद्धि न उन अनुसारा॥
संत चरन महिमा पुनि भाखौं। उनके चरन सीस पर राखौं॥

अर्थ–तुलसी साहब ने कहा, तुम लोग कानों से सुनो–मैं, 'सन्त' शब्द का वर्णन करता हूँ। दादू, मीराबाई, नाभादास, नानकदेव, दरियादास, सूरदास के विषय में कहता हूँ। हे भाई! पुन: कबीरदास ने भी इनके विषय में कहा है और अनेकों ने इस 'संत' के विषय में वर्णन किया है।

जो-जो सन्त अगमपुर में गए-जिन-जिन ने साखी और शब्द को सुनाया है–यह तुलसीदास तो उन सन्तों के चरणों की धूलि है और उन्हीं की कृपा से ही अगम्य आध्यात्मिक विलास का गान किया है।

तुलसी साहब को स्वयं सन्त चरणों की संभाल है, मेरी बुद्धि तो उन संतों जैसी है। मैं सन्त चरणों की महिमा का पुन: वर्णन कर रहा हूँ और मैं निरन्तर उनके चरणों पर अपना शीश रखे रहता हूँ।

॥ दोहा ॥

संत शब्द विधि बिधि कहौं, सुनियों फूलादास।
जो जो शब्द उन भाखिया, कहौं चरन होइ दास॥

अर्थ—मैं सन्त शब्द का विवेचन विधिपूर्वक करूँगा, हे फूलदास। आप उसे सुनें. जिन-जिन शब्दों को उन्होंने कहा है, मैं उनके चरणों का सेवक बनकर कहूँगा॥

॥ शब्द ॥

तुलसी तुल जाई, गुरु पद कंज लखाई॥ टेक॥
मैं तो गरीब कछू गुन नाहीं, मो को कहत गुसाँई।
जो कछु कीन्ह कीन्ह करुनामय, मैं उनकी सरनाई॥ १॥
मैं अति हीन दीन दारुन गति, घट रामायन त्नाई।
रावन राम की जुद्धि लड़ाई, सो नहिं कीन्ह बनाई॥ २॥
ये तत सार ततो निज जानत, जो ये लखै लखाई।
काल काया परिवार मयाई, ये गुन ग्रन्थन गाई॥ 3॥
ता में सार पाद पद न्यारा, सो कोइ संत जनाई।
पंडित भेष जगत अरु ज्ञानी, भेद कोऊ नहिं पाई॥ 4॥
अब बरतत कहौं याही कौ, भरत चत्रगुन भाई।
दसरत सीता और कौसिल्या, सिया लछमन्न कहाई॥ 5॥
काग भसुंड गरुड़ सबै सब, मंथा अरु केकाई।
रघुपति रंग संग परिवारा, येहि बिधि जगहिं सुनाई॥ 6॥
और सुनौ रावन रंग राई, सब परिवार बताई।
कुंभकरनं भाभीषन भाई, इंद्रजीत सुत राई॥ ७॥
रानी राइ मँदोदरि सोइ, सब परिवार सुनाई।
ये घट माहिं घटा घट ही में, रामायन्न बनाई॥ ८॥
रावन ब्रह्म बसै त्रिकुटी में, लंक त्रिकूट बनाई।
कुम्भ तनै करता मनहीं को, कुम्भकरन्न कहाई॥ ९॥
भय भौ खानि भभीषन भाई, सो भौ माहिं भ्रमाई।
इंद्रजीत जीतै मनहीं को, सो इंद्रजीत कहाई॥ १०॥
रावन ब्रह्म बसै मन दौरा, ता को मंदोदरी बनाई।
मन की दौर को दूर बहावै, त्रिकुटी ब्रह्म कहाई॥ ११॥
दस इंद्री रत दसरत कहिये, राम रमा मन जाई।
सत की सीता असत सिया को, कुमति कौसिल्या बसाई॥ १२॥
मन थिर सुरति करै थिर कोई, सो मन संथा कहाई।

अर्थ–तुलसी साहब कहते है कि गुरु के चरण कमलों को देखते ही, उनके लिए यह बिक जाएगा। मैं तो एक नितान्त निर्धन व्यक्ति हूँ, मुझमें कोई गुण नहीं हैं–फिर भी, लोग मुझे गोस्वामी कहते हैं। जो कुछ किया, उन्हीं करुणामय मेरे गुरु ने ही किया है, मैं उनकी शरण में हूँ। मैं अत्यन्त तुच्छ, दीन तथा विपत्तियों से संसक्त हूँ और इस दशा में मैंने घट रामायण की रचना की है। राम तथा रावण के युद्ध की स्थिति की मैंने रचना नहीं की है॥ 1-2॥

यह रामायण तत्त्वों का सार है, और इसको वही जानता है, जिसे यह दिखाई पड़ जाए काल, शरीर, परिवार और माया इन सबके गुण ग्रन्थों में गाए गए हैं किन्तु इन सबमें सार तत्त्व सबसे विलक्षण है–उसे कोई सन्त ही बताता है। उसके रहस्य का ज्ञान पंडित, वेषधारी साधु, यह संसार तथा ज्ञानी कोई नहीं पाता। अब मैं इसी का वृत्तान्त कह रहा हूँ–भरत-शत्रुघ्न तो भाई-भाई हैं। दशरथ, सीता और कौसल्या तथा सुमित्रा और लक्ष्मण कहे जाते हैं। ॥ ३-५॥

कागभुशुंडि, गरुण तथा अन्य मंथरा एवं कैकेयी सभी श्रीराम के साथ उनका समस्त परिवार जिस प्रकार यह लोक इस कथा को सुनाता है। और दूसरी ओर अपने रंग में राते रावण के विषय में सुने–मैं उसके समस्त परिवार के विषय में बताता हूँ। कुंभकर्ण, विभीषण उसके भ्राता के तथा इन्द्रजीत राजा रावण का पुत्र था। ७॥

रावण की रानी मंदोदरी थी और इस प्रकार मैंने उसके परिवार के विषय में सुनाया। ये सारे के सारे पात्र अन्तः शरीर की घटाएँ हैं (शरीर के अन्तर्गत ही है) औ इसी रूप में मैंने इस रामायण की रचना की है।। ८॥

त्रिकुटी को लंका बनाकर रावण ब्रह्म त्रिकुटी में निवास करता है, कुम्भ रूपी शरीर का कर्त्ताधर्त्ता होने के कारण ही वह कुम्भकर्ण कहलाता है।। 9॥

जो सासारिक माया के भय की खानि है, वही विभीषण है और वह निरन्तर माया के संसार में ही भ्रमित रहता है। जो मन को जीत लेता है। उसे इन्द्रजीत कहते हैं। मन के मध्य रावण रूपी ब्रह्म निरन्तर निवास करता है, उसी के लिए मन्दोदरी बनाई गई है। जो मन की व्याप्ति को दूर करके (उसे केन्द्रित कर ले) वही त्रिकुटी ब्रह्म है। जो दसों इन्द्रियों में संसक्त रहता है वह दशरथ है, उसका मन राम और रमा में लगा रहता है। सत्य ही सीता हैं किन्तु असत्य सीता को कुमति रूपी कौसल्या ने अपने पास रखा॥ 10-12॥

वहँ की बात कहौं कौन सुनाई, कर्मन थिर केकाई॥ १३॥
ले छे रस मनहीं को भाई, लछमन बीर बड़ाई।
गो में रूढ़ गरूढ़ गिनाई, भय ले भसुण्ड भुलाई॥ १४॥
भय रत भरम भरत है सोई, चाह त्रिगुन्न गिनाई।
ता को नाम चतुरगुन कहिये, ये सब भेद बताई॥ १५॥
ये नौ द्वार काया के माहीं, सो हनुमान हँसाई।
ये तो चिन्न भिन्न बिन देखे, जोग करै करै सो जनाई॥ १६॥
काया सोध कसै इन्द्रिन को, त्रिकुटी व्यान लगाई।
स्वाँसा धाइ बंक खुल खोलै, सहस कवल दल पाई॥ १७॥
जो कोई जोग जुगति करि लाई, जेहि घट ब्रह्म दिखाई।
जोगी का जोग इष्ट जगही को, ये गति यों बिधि गाई॥ १८॥
दूजा जोग ज्ञान गति गाई, आतम तत्त लखाइ।
मुद्रा पाँच अवस्था चारी, ज्ञान तीनि गति गाई॥ १९॥

चाचरि मूचरि और अगोचरि, खेंचरि खेह लगाई।
उनमुनि उभै अकास के ठाईं, ज्ञान बिधी बतलाई॥ २०॥
रेचक पूरक कुम्भक कहिये, येहि बिधि ज्ञान गिनाई।
और अवस्था अरथ बताई, ज्ञाना किनहूँ न पाई॥ २१॥
जाग्रत सुपन सुषोपति कहिये, तुरियातीत कहाई।
तुरियातीत बसै वोहि पारा, जो या करै तिन पाई॥ २२॥
चारो बानी का भेद बताई, सास्तर संघ लखाई।
परा पसंता मधिमा सोई, बैखरी वेर बताई॥ २३॥
ये सब जोग ज्ञान गति गाई, ज्ञानी यही बताई।
इनके परे भेद है न्यारा, सो कोइ संत जनाई॥ २४॥
और सुनौ जो अगाध अघाई, संतन की गति गाई।
जा को भेद भेद नहिं जानै, जोगी किनहुँ न पाई॥ २५॥
परमहंस बैरागी गुसाँईं, जग्त की कौन चलाई।
ये कहुँ देखि कहूँ न कहाई, काहू प्रतीति न आई॥ २६॥
तुलसी तोड़ फोड़ असमाना, सूरति सार मिलाई।
सरकी चाँप चली धौ धाई, धनुवा धनुष चढ़ाई॥ २७॥
तीनि लोक तिल खेई पारा, चौथे जाइ समाई।
वो साहिब सतनाम अपारा, तिन मोहिं अंग लगाई॥ २८॥
या के पार परे गति न्यारी, सो कोई संत जनाई।
जा को नाम अनाम अमाई, केहि बिधि कहौं बुझाई॥ २९॥
ता के रंग रूप नहिं रेखा, नाम अनाम कहाई।
तुलसी तुच्छ कुच्छ नहिं जानै, ता घर जाइ समाई॥ 30॥
सब संतन के चरन सीस धरि, आदि अजर घर पाई।
तीनि लोक उपजै और बिनसै, चौथे के पार बसाई॥ 31॥

अर्थ—मन को स्थिर करके जो सुरति ध्यान करता है और उसे स्थिर कर लेता है, वह मन से स्थिर कहलाता है। वहाँ रामकथा की बात कहो किसने बताई है, वह कर्मों में स्थिर कैकेयी थी। मन द्वारा द्रवों एवं रसों का स्वाद लेकर जो भोज्य सरस दृढ़ है—वही लक्ष्मण है। जो इन्द्रियों पर आरूढ़ है (नियंत्रित कर रखा है) वही गरुण है। जो भय को भूल जाए, वह भुशुंडि है। जो भय से संसक्त व्याकुल होकर इस लोक में भरम रहा है, वह भरत है और उसकी आशा सदा त्रिकुटीसाल्यकता में है। इसके सबके नाम चतुर्भुजों के अनुसार है और इसके ये सारे भेद बताए गए हैं। सम्पूर्ण नवों द्वार शरीर के ही बीच हैं, हनुमान के लिए वही उपहास के कारण हैं। वे जो चिन्मय से भिन्न न करके योग साधना में रमा रहता है, उसे (घट रामायण) यह सब प्रतीत होता है—सभी को नहीं ॥ (१३-१६)॥

त्रिकुटी में ध्यान लगाकर, जो इन्द्रियों के स्वरूप का शोधन करता है तथा श्वासमार्ग से दौड़कर बंक नाल में प्रवेश करके उसे खोल दे, वह सहस्त्र दल कमल प्राप्त कर लेता है। यही नहीं जो भी कोई युक्तिपूर्वक योगक्रिया को सम्पन्न कर लेता है, उसके इसी घट में ब्रह्म गोसाई पड़ जाता है। योगी का

योग संसार के सभी लोगों के लिए अभीष्ट है। इस गति को इस प्रकार ही प्राप्त किया जा सकता है॥ १७-१८॥

द्वितीय योग का वर्णन ज्ञान गति द्वारा गाया जाता है, इसमें आत्म तत्त्व दिखाई पड़ता है। पाँच मुद्राएँ, चार अवस्थाएँ तथा तीन ज्ञान की गतियों का वर्णन किया गया है। इसमें चाचरि, भूचरि, अगोचरि एवं खेचरी मुद्राओं में ध्यान लगाना पड़ता है। शून्याकाश की उभय स्थली में उन्हें उन्मनि दशा ज्ञान की विधि इंगित करती है॥ १९-२०॥

रेचक, कुम्भक तथा पूरक योगविधियों द्वारा ये ज्ञान के स्वरूप की गणना कराते हैं। ये अन्य अनेक अवस्थाओं के अर्थ तथा स्वरूप का वर्णन करते हैं किन्तु इनमें किसी को भी ज्ञान नहीं प्राप्त होता॥ २१॥

जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति कहकर अब तुरीयातीत दशा का वर्णन करते हैं। तुरीयातीत इस ज्ञान धारा के उस पार निवास करता है, जो इसकी साधना करता है, वही उसे प्राप्त भी करता है॥ चारों वाणियों का मैं भेद कहता हूँ, उसे शास्त्र रूपी सिंधु ने दिखाया है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी की चतुर्थ अवस्था को ज्ञान कहते हैं (वेद वर्णित करते हैं)। ये सभी के सभी = योग मार्ग के अन्तर्गत ज्ञान की गति के रूप में गाये गये हैं और इनके विषय में ज्ञानी जन यही बताते हैं॥ इनके आगे ज्ञान का विलक्षण स्वरूप है–जिसे कोई सन्त ही बतलाता है॥ २२-२४॥

उसके आगे जो परिपूर्ण एवं अगाध है, उसके विषय में सुनो, उसके भेद (रहस्य) को वेद भी नहीं जानते-योगीजन तो उसे लेशमात्र भी नहीं प्राप्त करते॥ २५॥

इस संसार के प्राणियों की कौन बात कहे परमहंस, वैरागी, नागा-ये कहीं कहीं देखकर कहीं भी बातों का रहस्य नहीं बताते, अतः इन बातों के प्रति विश्वास नहीं होता॥ २६॥

तुलसी साहब कहते हैं कि ये शून्याकाश को तोड़ फोड़कर उससे सुरिति समाधि के सार तत्त्व को जोड़ देते हैं। दृढ़ धनुष की प्रत्यंचा देवी से संरक जाती है और सुषम्मा रूपी धनुष को चढ़ा लेते है। तिल-तिल खेकर तीनों लोकों को ये पार कर लेते हैं और अन्त में , चौथे में जाकर ये स्वयं विलीन हो उठते हैं। उन अनन्त-सतनाम साहब का पार नहीं पाया जा सकता--वे मुझे अपने अंकों में समेट लेते हैं॥ २७-२८॥

उनके पार के उस ध्यान की गति विलक्षण है, उसे किसी संत के ही समझ में आता है। जिसके नाम में वह अनाम ब्रह्म तत्त्व समाया हुआ है--मैं किसी प्रकार उसको समझा कर बताऊँ॥ २९॥

उनका न रूप है, न रंग है, न लक्षण (रेखा) है, और वह नाम से अनाम कहलाता है। तुच्छ तुलसीदास उसके विषय में कुछ भी नहीं जानते, केवल उस घर में जाकर वह घुसे पड़े हैं॥ ३०॥

सम्पूर्ण सन्तों के चरणों पर शीश धारण करके मैंने उस आदि अजर-अमर के घट को पा लिया है। यह तीनों लोक निरन्तर उत्पन्न होते और विनष्ट होते रहते हैं, इसलिए मैंने चौथे पद के पार अपना घर बसा लिया है॥ ३१।

॥ सोरठा॥

येहि बिधि रघुपति रंग, रावन संग प्रसंग भयो।
सुरति चढ़ी चित चंग, ज्यों पतंग डोरी गह्यो॥

अर्थ–इस प्रकार राम के रंग में रंगे रावण के साथ यह प्रसंग घटित हुआ। चित्त आनन्द के साथ सुरति समाधि में चढ़ा, जैसे डोरी के साथ जुड़ा हुआ पतंग॥

॥ शब्द १ दादू साहिब॥

दादू देखा अदीदा, सब कोइ कहत सुनीदा॥ टेक॥
हवा हिरस अंदर बसकीदा। तब यह दिल भया सीधा॥ १॥

अनहद नाद गगन चढ़ गरजा। तब रस पिया अमीं दा॥ २॥
सुखमनि सुन्न सुरति महलौं नभ। आया अजर अकीदा॥ ३॥
अष्ट कंवल दल में दृग दरसन। पाया खुद्द खुदी दा॥ ४॥
जैसे दूध दूध दधि माखन। बिन मथे भेद न घी दा॥ ५॥
ऐसे तत्त मत्त सत्त साधन। तब टुक नसा पिय पीदा॥ ६॥
नहिं ये जोग ज्ञान मुद्रा तत। यह गति और पदीदा॥ ७॥
जो कोइ चीन्ह लीन्ह यह मारग। कारज हो गया जी दा॥ ८॥
मुरसिद सत्त गगन गुरु लखिया। तन मन कीन्ह उसी दा॥ ९॥
आसिक यार अधर लखि पाया। हो गया दीदम दीदा॥ १०॥

अर्थ—सन्त दादू ने आदर्शनीय तत्त्व को देखा, सभी कोई कहते हैं, उसे सुन लो। वायु को हृदय के अन्दर वश में कर लिया (प्राणायाम द्वारा वायु रोक ली) तब उनका हृदय अत्यन्त निर्मल बना॥ १॥

अनाहत नाद शून्याकाश में चढ़कर ध्वनित हुआ और तब उन्होंने समग्र अमृत रस का पान किया॥ २॥

सुषम्ना सुरति महल के मध्य शून्यावकाश तक पहुँची और उस स्थान पर वह अबिनाशी तत्त्व आकर उपस्थित हुआ॥ ३॥

यहाँ अष्ट कमल दल के अन्तर्गत उस अपूर्व तत्त्व का दर्शन हुआ और इस चित्त ने स्वयं उस निरंजन ब्रह्म को प्राप्त किया॥ ४॥

जैसे दूध और दूध में दही, मक्खन, सब कुछ है किन्तु बिना मंथन किए घी के रहस्य का पता नहीं चलता है॥ ५॥

इसी प्रकार ही, साधक का चित्त अनेक साधनों में मत्त रहता है, तब कहीं जाकर—एकाध बार थोड़ा-बहुत प्रिय के नशे का पान करने का अवसर मिलता है॥ ६॥

यह तत्त्व न योग से प्राप्त होता है, न ज्ञान मुद्राओं से परन्तु यह दशा अन्य माध्यमों से मिलती है॥ ७॥

जो कई भी व्यक्ति इस मार्ग की पहचान कर लेता है, उसके हृदय का सम्पूर्ण कार्य पूर्ण हो जाता है॥ ८॥

आध्यात्मिक गुरु उस शून्याकाश में वह तत्त्व देखता है और उसको देखने के बाद वह समस्त तन-मन उसी को अर्पित कर देता है। वह याद अपने प्रेमी को अन्तआंत्मा में देख पाया और देखते हो वह तन्मयथी भूत (तन्मयीभूत, तन्मय) हो गया॥ ९-१०॥

॥ शब्द २ : दादू सहिब॥

जानै अंतरजामी अचरज अकथ अनामी॥ टेक॥
नौ लख कँवल जुगल दल अंदर। द्वादस साहिब स्वामी॥ १॥
सूरत कड़क कँवल दल नभ पर। झटकि झटकि थिर थामी॥ २॥
जैसे जहाज चलै सागर में। बरदबान बहै धीमी॥ ३॥
तैसे यार प्यार लखि पाया। तब सूरति ठहरानी॥ ४॥
सूरति सब्द सब्द में सूरति। अगम अगोचर धामी॥ ५॥
का से कहौ पिया सुख सारा। ज्यों तिरिया मुसकानी॥ ६॥

नहिं ये जोग ज्ञान तुरिया तत। यह गति अकथ कहानी॥ ७॥
कंद न सूर पवन नहिं पानी। क्योंकर करौं बखानी॥ ८॥
सुन्न न गगन धरन नहिं तारा। अल्ला रब्ब न रामा॥ ९॥॥
कहा कहौं कहिबे की नाहीं। जानत संत सुजानी॥ १०॥
बेद न भेद भेष नहिं जानत। कोऊ देत न हामी॥ ११॥
दादू दृग दीदार हिये के। सूरति करति सलामी॥ १२॥
मैं पिया प्यार प्यार पिय अपने। मिलि रहे एक ठिकानी॥ १३॥
सूरति सार संध लखि पाई। ये गति बिरले जानी॥ १४॥

अर्थ–अन्तर्यामिन ही उस आश्चर्यपूर्ण, अकथनीय एवं अनाम तत्त्व को समझता है॥

दो कमल दलों के अन्दर नौ लाख कमल हैं और उनके मालिक तथा स्वामी बारह हैं॥ १॥

उस कमल दल पर स्थित आकाश पर सुरति एकाधि बड़ी ही गतिशील है और वह–झपट-झपट कर उसे पकड़ती और स्थिर करती रहती है॥ २॥

जैसे जलयान सागर में चलता है और उसकी पाल धीरे-धीरे चलती है॥ ४॥

उसी प्रकार, इस साथी ने अपने उस प्रियतम को देखकर प्राप्त कर लिया, तब तक सुरति एकाधि स्थिर हो उठी थी॥ ८॥

सूरति समाधि 'शब्द' में स्थित हो उठी और 'सबद' ही सुरति बन उठा अर्थात् समाधि के अनुभव शब्द तथा अनुभव शब्द की समाधि दोनों एक हो उठे। ये दोनों शब्द एवं अनुभूति अगम्य एवं अगोचर में स्थित है। प्रियता के साहचर्य की उस अनुभूति का हैं वर्णन कैसे करूँ–वह तो युवती की स्थिति जैसी आनन्द दायिनी है। यह अवस्था योग की तुरीयावस्था की ज्ञानानुभूति तत्त्व से विलक्षण है–यह अनुभूति तो अकथ्य कथा के रूप में विलक्षण है। न यहाँ चन्द्र है, न सूर्य है, न वायु है, न जल है, मैं इस स्थिति का कैसे वर्णन करूँ। यहाँ न शून्याकाश है, न आकाश है, न पृथ्वी है, न तारागण हैं, न अल्लाह है, न स्वर्ग है, न राम हैं॥ ५-९॥

इसके विषय में क्या कहें, कुछ भी कहने के लिए शेष नहीं हैं इसे कोई सहृदय एवं चतुर संत ही जानता है। वेद कोई रहस्य नहीं जानता तथा वर्णन करते समय उसके लिए स्वीकृति भी कोई नहीं देता। सन्त दादूदास कहते हैं कि वह हृदय नेत्रों से ही देखा जाता है और सदा-सदा मैं उसके रूप को प्रणाम करता हूँ। मैं निरन्तर इस प्रियतम के प्यार में डूबा रहता हूँ, और वह प्रिय मेरे प्यार में और दोनों परस्पर मिलकर एक जैसे स्थान पर हो जाते हैं। मैंने उसे सुरति के तत्त्व रूपी सिन्धु में देख सका हूँ, मेरी इस दशा को बिरले ही समझते हैं।

॥ शब्द नानक साहिब॥

उघरा वह द्वारा वाह गुरू परिवारा॥ टेक।
चढ़ गइ चंग पतंग संग ज्यों। बंद चकोर निहारा॥ १॥
सुरति सोर जोर ज्यों खोलत। कुंजी कुलफ किवारा॥ २॥
सुरति धाइ धसी ज्यों धारा। पैठि निकसि गइ पारा॥ ३॥
आठ अटा की अटारि मँझारा। देखा पुरुष नियारा॥ ४॥
निराकार आकार न जोती। नहिं वह बेद बिचारा॥ ५॥
ओंकार करता नहिं कोई। नहिं वह काल पसारा॥ ६।

वे साहिब सब संत पुकारा। और पखंड पसारा॥ ७॥
सतगुरु चीन्ह दीन्ह यह मारग। नानक नजर निहारा॥ ८॥

अर्थ–गुप्त द्वार उकर (खुल) गया, गुरु का परिवार धन्य है। उन्हीं के साथ ही चित्त समाधि लग गई–जैसे डोरी के साथ पतंग और एक क्षण में उन्हीं के साथ ही चित्त समाधि लग गई। डोरी के साथ पतंग और एक क्षण के बाद उनको उस प्रकार देखने लगा जैसे चन्द्रमा को चकोर निहारता है॥ १॥

सुरति की समाधि के जोर एवं शोर से उसे ज्यों ही मैं कुंजी द्वारा उस जटिल दरवाजे को खोलता हूँ, सुरति दौड़ती हुई उसमें उसी प्रकार धँस उठी जैसे नदी की धारा में पानी॥ वह उसी में प्रविष्ट होकर उस पार निकल गई॥ 2-3॥

आठ खंड की अँटारी (महल) के बीच मैंने उस विलक्षण पुरुष को देखा॥ 4॥

उसकी कोई रूप रचना नहीं है, न कोई आकार है, न कोई ज्योति है और उसके विषय में न वेदों में भी कोई विचार हुआ है। न वह ऊँकार रूप है, किसी के लिए कर्त्ता रूप भी नहीं है, और न ही वह काल की व्याप्ति के बीच फैला हुआ है॥ ५-६॥

वही एक मात्र साहब (स्वामी) हैं, ऐसा सन्तों ने बताया है, शेष सब, पाखण्ड का प्रसार-प्रसार है॥ ७॥

यही एक मार्ग है (केवल सुरति समाधि का) जिसने सत्गुरु सत्गुरु की पहचान दी है और नानक ने (उस पर चलते हुए) अपने नेत्रों से उसे देखा है॥ ८॥

॥ शब्द, दरिया साहिब॥

दरिया दरबारा खुल गया अजर किवारा॥ टेक॥
चमकी बीज चली ज्यों धारा। ज्यों बदरी बिच तारा॥ १॥
खुलि गया चंद बंद बदरी का। घोर मिटा अँधियारा॥ २॥
लै लगी जाइ लगन के लारा। चाँदनी चौक निहारा॥ ३॥
सूरति सैल करै नभ ऊपर। बंक नाल पट फारा॥ ४॥
चढ़ि गइ चाँप चली ज्यों धारा। ज्यों मकरी मुख तारा॥ ५॥
मैं मिलि जाइ पाय पिया प्यारा। ज्यों सलिता जल धारा॥ ६॥
देखा रूप अरूप अलेखा। लेखा वार न पारा॥ ७॥
दरिया दिल दरवेस भये तब। उतरे भौजल पारा॥ ८॥

अर्थ–दरिया साहब करते हैं कि उस प्रभु के दरबार का कभी न नष्ट होने वाला किवाड़ (दरवाजा) खुल गया।

बिजली चमक गई और वह नदी की धारा की भाँति चल पड़ी–जैसे चलते हुए बादलों के बीच तारा। बादलों का बंद (बन्धन द्वार) खुल गया–चन्द्रमा निकल आया–घना अँधेरा मिट गया॥ १-२॥

उनकी संसक्ति में मेरा सारा प्रेम खुल गया, उस चाँदनी के बीच चौक (बाजार) जैसा दृश्य दिखाई पड़ने लगा॥ ३॥

सुरति समाधि का पर्वत मेरे समाधिस्थ चित्त को अपने शिखर के ऊपर ले जाने लगा और उसने बंक नाल की संधि स्थली रूपी वस्त्र को फाड़ डाला॥ ४॥

वह नदी की धारा की भाँति उसे दबाता हुआ आगे बढ़ गया जैसे मकरी के मुख से निकलने वाला तार (जाल तंत्र)॥ ५॥

मैं जाकर, अपने प्रियतम को प्राप्त करके उनसे मिल गया—जैसे नदी से जलाधा ॥ ६ ॥

मैंने मिलने के बाद (अपने प्रियतम के) अल्प एवं अलेख (लक्षणविहीन) रूप को देखा और मुझे उसका आदि-अन्त समझ में नहीं आया ॥ ७ ॥

तब से इस साधक दरियादास का हृदय साधु होकर इस मायाजाल के पार हो उठा ॥ ८ ॥

॥ शब्द, मीराबाई ॥

मीरा मन मानी सुरति सैल असमानी ॥ टेक ॥
जब जब सुरति लगै वा घर की। पल पल नैनन पानी ॥ १ ॥
नहीं हिये पीर तीर सब सालत। कसक कसक कसकानी ॥ २ ॥
रात दिवस मोहिं नींद न आवै। भावत अन्न न पानी ॥ ३ ॥
ऐसी पीर बिरह तन भीतर। जागत रैन बिहानी ॥ ४ ॥
ऐसा बैद मिलै कोइ भेदी। देस बिदेस पिछानी ॥ ५ ॥
ता से पीर कहौं तन केरी। फिरि नहि भरमौ खानी ॥ ६ ॥
खोजत फिरौं भेद वा घर का। कोऊ न करत बखानीं ॥ ७ ॥
रैदास संत मिले मोहिं सतगुरु। दीन्ही सुरति सहिदानी ॥ ८ ॥
मैं मिलि जाइ पाइ पिया अपना। तब मोरी पीर बुझानी ॥ ९ ॥
मीरा खाक खलक सिर डारी। मैं अपना घर जानी ॥ १० ॥

अर्थ—मीराबाई कहती हैं कि सुरति समाधि द्वारा शून्याकाश के शिखर पर मेरा मन लग गया है ॥

जब-जब उस घर की स्मृति आती है, मेरे नेत्रों में प्रतिपल अश्रु भर उठता है ॥ १ ॥

मेरे हृदय को पीड़ा हृदय में प्रविष्ट बाण की भाँति सालता है—और उसकी कसक क्षण-क्षण कसकती रहती है ॥ २ ॥

मुझे रात दिन निद्रा नहीं लगती, अन्न-जल भी अच्छा नहीं लगता ॥ ३ ॥ ऐसी विरह की पीड़ा रस शरीर के भीतर उठ रही है कि मैं रात्रि-दिन जागती रहती हूँ ॥ ४ ॥

देश-विदेश में ऐसा कोई पहचान का वैद्य मिले, जो इसके रहस्य से परिचित हो। मैं उससे अपने शरीर की पीड़ा बताऊँ और पुनः इस भ्रम की खानि रूपी संसार में न भटकना पड़े ॥ ५-६ ॥

मैं अपने प्रियतम के उस घर का रहस्य खोजती फिर रही हूँ, उसका वर्णन कोई नहीं कर पा रहा है ॥ ७ ॥

सत्गुरु रविदास (रैदास) मुझे सत्गुरु के रूप में एक बार मिले थे और उन्होंने सुरति समाधि का अभिज्ञान कराया था। उससे मैंने जाकर अपने प्रियतम को प्राप्त किया था—तब मेरी पीड़ा शान्त हुई थी ॥ ८-९ ॥

मीराबाई कहती हैं कि मैंने तो व्यर्थ ही इस सृष्टि (खलक) की राखों का अम्बार अपने शिर पर डाल रखा है—मुझे तो अब अपने घर की समझ आ गई—(यह संसार व्यर्थ है) ॥ १० ॥

॥ शब्द, सूरदास जी ॥

मुरली धुनि गाजा, सूर सुरति सर साजा ॥ टेक ॥
निरखत कँवल नैन नभ ऊपर। सब्द अनाहद बाजा ॥ १ ॥
सुनि धुनि मैल मुकर मन माँजा। पाया अमी रस झाँझा ॥ २ ॥
सूरति संध सोध सत काजा। लखि लखि सब्द समाजा ॥ ३ ॥

घट घट कुंज पुंज जहँ छाजा। पिंड ब्रह्मंड बिराजा॥ ४॥
फोड़ि अकास अललपछ भाजा। उलटि के आपु समाजा॥ ५॥
ऐसे सुरति निरखि निःअच्छर। कोटि कृष्न तहँ लाजा॥ ६॥
सूरदास सार लखि पाया। लखि लखि अलख अकाया॥ ७॥
सतगुरु गमन गली घर पाया। सिंध में बुन्द समाया॥ ८॥

अर्थ—वंशी की ध्वनि गुंजरित हुई, सूरदास जी कहते हैं कि मैंने सुरति समाधि रूपी सरोवर सजा दिया।

शून्याकाश के ऊपर कमल को मेरे नेत्र देख रहे हैं। अनाहत शब्द की ध्वनि निकल रही है॥ १॥

इस ध्वनि को सुनकर अपने मन-दर्पण पर लगे सांसारिक मैल को साफ कर दिया और उसके फलस्वरूप अमृत रस को उस सुरति ध्वनि में प्राप्त किया॥ २॥

शब्द साक्ष्य के विविध रूपों को देखकर संतों के लिए मैंने उस सुरति सिन्धु का शोधन किया॥ ३॥

प्रत्येक (प्राणी में) घट रूपी कुंजों के पुंज में वह शोभित है तथा इस पिंड के बीच समग्र ब्रह्मांड समाविष्ट है॥ ४॥

अपने इस लौकिक सांसारिक समाज को उलट-पुलट कर तथा उस शून्याकाश को फोड़कर मैं उस अदर्शनीय पक्ष की ओर भगा॥ ५॥

उस अक्षर-शून्य ऐसी सुरति समाधि को देखा जहां कोटि-कोटि कृष्ण शोभित हो रहे हैं॥ १६॥

बिना शरीर वाले उस अलक्ष्य तत्त्व को देख देखकर सूरदास कहते हैं कि मैंने सृष्टि के निचोड़ तत्त्व को देख लिए॥ ७॥

सत्गुरु की कृपा हुई उस गली से घर तक पहुंचा। मुझे लगा जैसे बूँद समुद्र में विलीन हो उठी॥ ८॥

॥ शब्द॥ नाभा जी॥

नाभा नभ खेला, सुरति केल सर सैला॥ टेक॥
दरपन नैन सैन मन माँजा। लाजा अलख अकेला॥ १॥
पल पर दल दल ऊपर दामिनि। जोत में होत उजेला॥ २॥
अंडा पार सार लखि सूरति। सुन्नी सुन्न सुहेला॥ ३॥
चढ़ि गई धाय जाय गढ़ ऊपर। सब्द सुरति भया मेला॥ ४॥
ये सब खेल अपेल अमेला। सिंध नीर नद मेला॥ ५॥
जल जल धार सार पद जैसे। नहीं गुरू नहिं चेला॥ ६॥
नाभा नैन ऐन अंदर के। खुलि गये निरखि निहाला॥ ७॥
संत उचिष्ठ वार मन झेला। दुरलभ दीन दुहेला॥ ८॥

अर्थ—नाभादास दी कहते हैं कि मैंने शून्याकाश में सुरति शिखर पर स्थित सरोवर में केलि क्रीड़ा की।

मैंने अपने चित्त रूपी दर्पण, नेत्र, भंगिमाएँ, मन सबको माँजकर निर्मल करके उस अलक्ष्य प्रियतम को अकेले देखकर लज्जित हो उठी॥ १॥

उसके पलक के ऊपर कमल दल है, उस कमल दल के ऊपर विद्युत धारा है और उस ज्योति में अद्भुत उजालापन है। इस सृष्टि (अंड) के उस पार सुरति समाधि द्वारा उस सुरति तत्त्व को देखा—जहाँ शून्य ही शून्य का साथी था॥ २-३॥

उस शिखरगढ़ पर मैं दौड़कर जा चढ़ी और 'सबद' सुरति समाधि से साक्षात्कार हो उठा॥ ४॥

ये सारे के सारे खेल सहज् (मेल) तथा बिना साक्षात्कार (अमेल) के ही हो उठे–वहाँ (मैंने देखा)–सिन्धु, नदी तथा जल का सहज ही जमघट (मेला) लगा हुआ है॥ ५॥

वह तत्त्व स्थान सम्पूर्णतः तत्त्व रूप जल धारामय था (न कोई बड़ा था, न छोटा) वहाँ न कोई गुरु था, न चेला॥ ६॥

नाभादास जी कहते हैं कि हृदय-नेत्र थे जहाँ वाणी का वार झेल गया–निश्चित ही दीन जो पर उसकी दुर्लभ कृपा है॥ ८॥

॥ शब्द॥ कबीर साहिब॥

कबीर पुकारा, मैं तो जगत से न्यारा॥ टेक॥
आदि पुरुष अविगत अबिनासी। दीप लोक पद पारा॥ १॥
सरयि सहर हेर हिये द्वारा। सब्द न सिंध अकारा॥ २॥
काल न जाल स्वाल नहिं बानी। सो घर अधर हमारा॥ ३॥
अंत न आदि साध कोइ जानै। सतगुरु पदम निहारा॥ ४॥
नहिं तहँ आदि निरंजन जोती। सत्त पुरुष दरबारा॥ ५॥
ब्रह्मा बिस्नु बेद बिधि नाहीं। नहीं आदि ओंकारा॥ ६॥
ये सच यार प्यार लख पूरा। रूप न रेख जहूरा॥ ७॥
कहै कबीर संत वोहि द्वारा। चकवा चौक हुकारा॥ ८॥

अर्थ–कबीरदास पुकार-पुकार कर कहते हैं कि मैं तो इस संसार से अलग हूँ।

वह आदि पुरुष ज्ञानातीत और अविनष्टधर्मा है और शून्य द्वीप के लोक में उसका स्थान भी विलक्षण है।

हृदय के द्वारा समस्त नगर में मैंने उसे हृदय द्वारा तलाशा, किन्तु उसके लिए न कोई 'सबद' मिला, न सिंधु मिला, न रूप आकार मिला॥ २॥

उसके लिए न काल है, न कोई जाल (संकट) है, न कोई प्रश्न है, न कोई वाणी है–वही अन्तरात्मा ही मेरा घर है। उसी अन्तरात्मा रूपी घरमें मैंने उसे देखा है, वैसे उसका आदि अन्त नहीं है, किन्तु सोई साधु ही उसे जानता है॥ ३-४॥

उस निरंजन ज्योति का कोई आदि तत्त्व नहीं है, वही सत्य पुरुष (निर्गुण ब्रह्म) का दरबार है। न वहाँ आदि ओंकार तत्त्व है, न वहाँ ब्रह्म है, न विष्णु हैं, न वेद विधि वर्णित कोई अन्य तत्त्व॥ ५-६॥

उस सत्य स्वामी साथी को प्यार से देखो, न उसका कोई रूप है, न लक्षण है और न पहचान तत्त्व है। कबीरदास जी कहते हैं कि उसके द्वार पर सन्तगण रहते हैं और चक्रवाक की भाँति ये सन्तगण उसके घर में स्वर करते (हुंकारते) रहते हैं॥

॥ दोहा॥

फूलदास तुलसी कहै, सन्त शब्द की रीत।
जो जो गये अगाध को, सोइ सोइ सन्त समोर॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे फूलदास' सन्त' शब्द की यही परम्परा है कि जो-जो उस अगाध तत्त्व तक पहुँचे हैं, वही-वही सन्तों के भिन्न है॥

॥ छन्द ॥

तुलसी गति गाई सब्द सुनाई, पंथ अगम सुर्त सार भई॥ १॥
नानक और दादू दरिया साधू, मीर सूर कबीर कही॥ २॥
नाभा नभ जानी भाखि बखानी, सुरति समानी पार गई॥ ३॥
सब की बिधि न्यारी एक बिचारी, सब संतन इक राह लई॥ ४॥
सब चढ़े इक धारा पहुँचे पारा, लखा गगन गति गवन गई॥ ५॥
कोइ करिहै संका महामति रंका, तुलसी डंका दीन्ह सही॥ ६॥
ये सतमत भाखा देखा आँखा, साखि सब्द मै गाइ कही॥ ७॥

॥ छन्द ॥

अर्थ–सन्तों के अनुभूत तत्त्व, 'सब्द' को गाकर सुरति की सार तत्त्वमयी अगम पंथ को वर्णित किया है। नानक, दादू, साधु दरियादास, मीरा, सूरदास और कबीर का साक्ष्य देखकर बताया है॥ १-२॥

नाभादास ने उस तत्त्व को शून्याकाश में समझा था, मैंने उनके अनुभव को कहकर बताया–और सम्पूर्ण अनुभूति सुरति समाधि में समाविष्ट होकर उस पार जा पहुँची॥ ३॥

विचारक एक है किन्तु सबकी विधि अलग-अलग है–किन्तु सारे संत एक ही राह चलते हैं॥ ४॥

सभी एक धारा पर चढ़कर उस पार पहुंचे हैं, उन्होंने देखा कि उनका अनुभव शून्याकाश में प्रविष्ट हो उठा है॥ ५॥

कोई इस बात पर संदेह कर सकता है कि यह महामति से दरिद्र (हीन) है, किन्तु तुलसीदास ने अपना डंका ठीक तरह से बजाया है॥ ६॥

मैंने सन्तों के इस सत्यमत का वर्णन किया, आँखों से इसे देखा और सन्तों के साक्षी द्वारा कथित शब्दों द्वारा सुनाया है॥ ७॥

ये करी बखाना भेष न जाना, सब्द निसाना सुरति लई॥ ८॥
कागद नहिं स्याही ग्रन्थन पाई, गाइ गाइ सब जनम गई॥ ९॥
कोइ संत लखै हैं न्यारौ कहिहैं, कथन बदन में नाहिं नहीं॥ १०॥
जो पोथी पढ़ि हैं ज्ञान से अड़िहैं, नरक परैं पन भक्ति नहीं॥ ११॥
बिन भक्ति न पैहैं जनम गमै हैं, संत सरन बिन राह नहीं॥ १२॥
जिन जिन यह मानी सत कर जानी, भक्ति संत सब भाखि कही॥ १३॥
संतन को जाना शब्द पिछाना, सुरति समानी आदि लई॥ १४॥
तुलसी तत सारा अगम निहारा, गुरू पिया पद पार लई॥ १५॥
महुँ पुनि गाई संत सुनाई, संत सब्द रस अगम कही॥ १६॥
सब संत पुकारा महँ पुनि लारा, सारा चारा पार गई॥ १७॥
चौथा पद गाई संत सुनाई, सुरति सैल अज आदि लई॥ १८॥

अर्थ–इन संतों ने इस ज्ञान तत्त्व का वर्णन किया है, ये आडम्बर (भेष) नहीं जानते और उनके अनुभव के शब्द के लक्ष्य पर केवल सुरति समाधि है॥ ८॥

न इनके पास कागज है, न स्याही है, इन्होंने तो ग्रन्थों में ही पढ़ा है, और उन ग्रन्थों को गा-गाकर उनका सम्पूर्ण जीवन बीत गया॥ ९॥

जो कोई सन्त उस परम तत्त्व को देखा है, वह विलक्षण तत्त्व को कहता है, और उसका कथन उसके मुँह में स्थायी रूप से बना नहीं रहता (शास्त्रादि तो स्वामी हैं)॥ १०॥

जो पोथियों को पढ़ेंगे, उसमें लिखे हुए ज्ञान तत्त्व पर अड़े रहेंगे, वे नरक में पड़ेगे किन्तु भक्ति नहीं मिलेगी॥ ११॥

बिना भक्ति के वे कुछ भी नहीं प्राप्त करेंगे, सम्पूर्ण जन्म नष्ट कर देंगे क्योंकि सन्तों की शरणागति के बिना कोई मुक्ति मार्ग नहीं है॥ १२।

जिन्होंने इसे स्वीकार किया, इसे सत्य की भाँति समझा, उनको सन्तों ने सम्पूर्ण भक्ति कहकर समझाया॥ १३॥

जिसने सन्तों को जान लिया वे 'सबद' भी पहचान गए। वे सुरति समाधि में लीन हुए और आदि तत्त्व को प्राप्त किया॥ १४॥

स्वयं तुलसी ने स्वयं उस समस्त अगम्य तत्त्व को देखा और गुरु की कृपा से उस पार प्रियतम के पद को प्राप्त किया॥ फिर मैंने गाकर उसे सन्तों को सुनाया—निश्चित ही, सन्तों ने उस अगम्य रसमय तत्त्व का वर्णन किया है। सारे सन्तों ने बताया है, मुझे भी उसमें संसक्ति है और मैं सम्पूर्ण लोक सीमा के पार हो गया। सन्तों को चौथा पद गाकर सुनाया और सुरति शिखर पर उस अजन्मा तत्त्व को प्राप्त किया॥ १५-१८॥

संतन कर भेदा जानै न बेदा, खेद कर्म की दूर भई॥ १९॥
संतन की सरना दुख सुख हरना, बरना तुलसी तोल लई॥ २०॥
संतन मुख भाखी अगम की आँखी, उनसे ताकी तरक कही॥ २१॥
कोइ बूझेन संधा पड़ा जम फंदा, अंधा जग को बूझ नहीं॥ २२॥
संतन बिधि लाई सब्द सुनाई, भई बानी सब गाइ कही॥ २३॥
सब्द जो गावै आँखि न आवै, बिन सत संगति भर्म सही॥ २४॥
छूटै सब टेका बूझै एका, ये संतन ने सार दई॥ २५॥
तुलसी गोहराई बूझे न पाई, बिन बूझें सब खानि मई॥ २६॥
दीन निहारा संत पुकारा, सब्द बिचारा पार भई॥ २७॥

अर्थ—वेद भी सन्तों के भेद नहीं जानते और सन्तों की कृपा से ही कर्म की पीड़ा दूर होती है (मुक्ति मिलती है)। सन्तों की शरण ही सुख-दुख (भौतिक) दोनों का हरण करती है—तुलसीदास जी ने इसे भली भाँति तौलकर (मूल्कांकन करके) समझ लिया है॥ १९-२०॥

उस अगम्य की आँख तथा सन्तों के मुख से इसका वर्णन किया है, इसमें कोई तर्क नहीं है, केवल उस अनुभव को समझा है॥ २१॥

कोई भी, यम के फंदे में पड़ा हुआ साधु इसे समझ नहीं सकता, उसे इस अंधे संसार की समझ नहीं है॥ २२॥

सन्तों ने इसे विधिपूर्वक व्यवस्थित किया है, और उसी क्रम में इसका वर्णन सुनाया है, वह वाणी बनी और फिर आगे सन्तों ने उसे गाकर सुनाया॥ २३॥

जो अनुभव साक्ष्य 'सब्द' सुनाये जाते हैं, वे तब तक आँख के सामने प्रत्यक्ष नहीं होते क्योंकि सत्संगति के बिना भ्रम बना रहता है॥ २४॥

सन्तों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि सत्संगति के सम्पर्क में आने पर सम्पूर्ण प्रतिज्ञाएँ छूट जाती हैं—केवल एक तत्त्व ही समझ में आता है॥ २५॥

तुलसी पुकार-पुकार कर बताता है किन्तु उसे सभी समझ नहीं पाते--और बिना समझे सभी नरक में पढ़े रहते हैं॥ २६॥

दीन दुखियों को हृदय से समझा, सन्तों की पुकार की, सब्द पर विचार किया और इन तीनों के द्वारा अन्त में मुक्ति मिली॥ २७॥

॥ सोरठा॥

तुलसी सब्द बिचार फूलदास ये बिधि सुनौ।
सब्द करै निरधार सार पार पद लखि परै॥ १॥
सब्द सब्द बहु भेद, ये अभेद गति भाखिया।
तुलसी ता की धार, सब्द निरखि रस जिन पिया॥ २॥

अर्थ--हे फूलदास! 'सबद' के विषय में मेरे इस प्रकार के विचारों को सुनें। शब्द ही व्यक्ति का निस्तारण करते हैं--और उसी के द्वारा ही उस पार स्थित वह सार तत्त्व दिखाई पड़ता है॥ १॥

सबद 'सबद' में बहुत अन्तर है किन्तु ये 'सबद' अभेद गति का वर्णन करते हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि उसकी धारा को वही समझता है, जो 'सबद' को टटोल कर उसका रसपान करता है॥ २॥

॥ चौपाई॥

तुलसी सब्द संत जो भाखा। निज निज संत जो गये अगाधा॥
अपने अपने सब्द बनाये। अपनी अपनी साखि सुनाये॥
जों जो गये अगम के द्वारा। पंथ अगम के उतरे पारा॥
पार जाय बिधि सगरी भाखौ। जो जो देखा अपनी आँखी॥
अपनी देखी कही बखानी। आदि अंत जो जिन ने जानी॥
कही संत और कही कबीरा। सब मिलि कही एक बिधि हीरा॥
पहुँचे पहुँचे एक ठिकाना। बिन पहुँचे का और बखाना॥
जो जो सत जो भये सनाधा। पहुँचे पार सार रस माता॥
बरनि न जाइ संत गति न्यारी। मोरी मति कछु नाहि बिचारी॥
संतन की गति कस कस गाऊँ। दादू की कहौ साखि बताऊँ॥
दादू सब्द संत गति गाई। सब्द संत उन भाखि सुनाई॥
उनकी निसा साखि दरसाऊँ। तुलसी उनकी अगम सुनाऊँ॥

अर्थ--तुलसीदास कहते हैं कि जिन शब्दों को सन्तों ने कहा है, वे सन्त अपने-अपने सब अनुभव के अगाध तत्त्व में प्रवेश कर गए। अपने-अपने सब्दों बनाकर अपनी-अपनी सखियाँ उन्होंने सुनाई।

जो-जो सन्त उस अगम्य के द्वार पर पहुँचे--वे अगम के पंथ से उस पार उतर गए। उस पार जाने की समस्त विधियों का मैं वर्णन करता हूँ--मैंने जो-जो अपनी आँखों से देखा है (वह बता रहा हूँ)।

जिसने आदि अन्त तक उसे जितना देखा, उसने उतना ही उसका वर्णन किया है। उसके विषय में अन्य सन्तों ने बताया है और कबीरदास जी ने भी सभी ने उस परम तत्त्व को एक ही तरह से बताया है। सभी-के-सभी, अन्त में, एक ही ठिकाने पर पहुँचे हैं--क्योंकि बिना वहाँ-पहुँचे उसका और क्या वर्णन करते।

वे-वे सन्त जो आश्रययुक्त (सनाथ) बने; वे सभी उस रसमय सार तत्त्व के पास पहुँच चुके हैं।

सन्तों की विलक्षण गति का वर्णन नहीं किया जा सकता—मेरी गति भी इस सन्दर्भ में विचार करने योग्य नहीं है। सन्तों की ज्ञानानुभूति का मैं कैसे-कैसे वर्णन करूँ और कहें तो दादू की ही साखी मैं सुनाऊँ।

दादू ने 'सबद' के द्वारा सन्तों की गति का वर्णन किया है और उन्होंने शबद द्वारा सन्त के विषय में कहकर सुनाया है। कहिये तो उनकी पहचान साखी में ही दिखाऊँ और उनके द्वारा अनुभूत अगम्य तत्त्व का वर्णन करूँ॥

फूलदास संवाद

॥ शब्द (३)॥ दादू साहिब॥

दादू जानै न कोई, संतन की गति गोई॥ टेक॥
अविगत अंत अंत अंतर पट। अगम अगाध अगोई॥ १॥
सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा। अगुन सगुन नहि दोई॥ २॥
अंड न पिंड खंड ब्रह्मंडा। सूरति सिंध समोई॥ ३॥
निराकार आकार न जोती। पूरन ब्रह्म न होई॥ ४॥
इनके पार सार सोइ पैहै। तन मन गति पति खोई॥ ५॥
दादू दीन लीन चरनन चित। मैं उनका सरनोई॥ ६॥

अर्थ—सन्तों की गति गुह्य (गोप्य) है, दादू कहते हैं कि इसे कोई नहीं जानता॥

उस अज्ञेय ब्रह्म तत्त्व का जहाँ अन्त होता है, वह अन्त लोक की अन्तरात्मा ही है, वह अगम्य है, अगाध है, इन्द्रियातीत है॥ १॥

शून्याकार शून्य में है, वह शून्य के उस पार है—वह न निर्गुण है और न सगुण दोनों॥ २॥

न वह ब्रह्मांड है, न सृष्टि है, वह न ब्रह्मांड का कोई अंश तत्त्व है किन्तु वह सुरति समाधि में सर्वथा समाया हुआ है॥ ३॥

वह न निराकार है, न आकारमय है, न ज्योति स्वरूप है, और वह पूर्ण ब्रह्म भी नहीं है॥ ४॥

इन सबके उस पार उस सार तत्त्व को प्राप्त किया जा सकता है—(और उसे प्राप्त करने लिए) शरीर, मन, ज्ञान, मर्यादा सभी को नष्ट कर देना पड़ता है॥ ५॥

दादू कहते हैं कि मैं अंकिचन उनके चरणों में निरन्तर चित्त लीन किए रहता हूँ मैं तो (सदा-सदा के लिए) उनका शरणागत हूँ॥ ६॥

॥ सोरठा॥

तुलसी कहै बुझाय, फूलदास सुन संत गति।
दादू साखि बताय, निसा बूझि कै यह कही॥

अर्थ—तुलसी समझाते हुए कहते हैं कि हे फूलदास! सन्तों की गति को (ध्यान देकर) सुनो। दादू ने तो यह साखी ज्ञानान्धकार को ही देखकर कही है?

॥ चौपाई॥

फूलदास सुनियौ चित लाई। यह दादू की साखि बताई॥
जो संतन ने देखा माहीं। रूप रेख बिन रहै अकाई॥

तन भीतर जो लखा अलेखा। रूप रेख ना रहै अदेखा॥
जा के रूप रेख कुछ नाहीं। सो वो देखा घट के माहीं॥
पुनि दादू की साखि बताऊँ। सब्द एक जो गाइ सुनाऊँ॥
जो जो संतन दिल में देखा। जिन जिन भाखा अगम अलेखा॥

अर्थ–हे फूलदास, मन लगाकर सुनें दादू साहब की साखी यह बतलाती है कि जो सन्तों ने स्वयं देखा है, वह रूप, लक्षण के बिना अशरीर रहता है। वह अलेख्य शरीर के ही भीतर रहता है–चूँकि उसका न कोई रूप है और न लक्षण, इसलिए वह अदृश्य ही रहता है। जिसके न रूप है न कोई लक्षण-वह इसी शरीर के भीतर समाधि द्वारा दिखाई पड़ता है। इसके बाद फिर से, मैं दादू की साखी सुनाता हूँ, उनका एक सब्द गाकर सुनाता हूँ–वह यह कि जिसे-जिसे सन्तों ने अपने हृदय में देखा है, और जिसे अगम्य एवं अलेख्य तत्त्व बताया है–वह ब्रह्म तत्त्व है॥

॥ शब्द (४)॥ दादू साहिब॥

दादू दिल बिच देखा, रंग रूप नहिं रेखा॥ टेक॥
हद हद बेद कितेब बखानै। मैं कहा बेहद लेखा॥ १॥
मुल्ला सेख सैयद और पंडित। ये मुए अपनी टेका॥ २॥
राम रहीम करीम न केसों। हरि हजरत नहिं एका॥ ३॥
वो साहिब सबहिन से न्यारा। कोइ कोइ संतन पेखा॥ ४॥
दादू दीन लीन हुई पाया। क्यों कहुँ अगम अलेखा॥ ५॥
जिन जिन जाना तिन पहिचाना। मिटि गया मन का धोखा॥ ६॥

अर्थ–दादू साहब कहते हैं कि मैंने उसको अपने हृदय के मध्य देखा है, वैसे न उसका कोई रंग है, न रूप है और न लक्षण।

वेद तथा धर्मग्रंथ उसे एक सीमा के भीतर ही वर्णित करते हैं, मैंने तो ओ असीम बताया है। मुल्ला, शेख, सैयद और पंडितगण ये तो अपनी दृढ़ता में ही नष्ट हो गए। १-२॥

वह न राम है, न रहीम है, न केशव है–और विष्णु तथा हजरत साहब–दोनों में से एक भी नहीं है॥ ३॥

वह स्वामी सभी से विलक्षण है, उसे किसी-किसी सन्त ने देखा है। दादू साहब कहते हैं कि अत्यन्त दीन होने के बाद उसे प्राप्त किया है–मैं उसे अगम्य एवं अलक्ष्य क्यों कहूँ। जिसने-जिसने उसे समझा है, उसने उसे पहचाना है और उसके मन का भ्रम इस प्रकार समाप्त हो गया॥ ४-६॥

॥ शब्द (५)॥ दादू साहिब॥

दादू देखा मैं प्यारा, अगम जो पंथ निहारा॥ टेक॥
अष्ट कँवल दल सुरति सब्द में। रूप रेख से न्यारा॥ १॥
पिंड ब्रह्मंड और बेद कितेबै। पाँच तत्त के पारा॥ २॥
सत्त लोक जहँ पुरुष बिदेही। वह साहिब करतारा॥ ३॥
आदि जोत और काल निरंजन। इनका वहँ न पसारा॥ ४॥
राम रहीम रब्ब नहि आतम। मुहम्मद नहि औतारा॥ ५॥
सब संतन के चरन सीस धर। चीन्हा सार असारा॥ ६॥

अर्थ–संत दादूदयाल जी कहते है कि मैंने जिस पंथ को देखा, वहाँ अपना प्रियतम दिखा।

सुरति समाधि के सब्द में वह अष्ट दल कमल है, वह रूप तथा लक्षण से विलक्षण है॥ १॥

पिंड, ब्रह्मांड, वेद और धर्मग्रन्थों में इंगित वह पाँच महाभूत तत्त्वों से विलक्षण है। सत्य लोक में वह परमात्मा अनासक्त है, वही स्वामी है, वही सृजनकर्त्ता है॥ २-३॥

आदि चेतना के प्रकाश एवं काल निरंजन द्वारा वह प्रसारित नहीं है। वह न राम है, न रहीम है, न वह ईश्वर है, न आत्मा है और न वह मुहम्मद साहब का अवतार है॥ ४-५॥

समस्त संतों के शीश पर चरणों को रखकर मैंने इस असार सृष्ठि के बीच स्थित उस सार तत्त्व को पहचाना है॥ ६॥

॥ शब्द (६)॥ दादू साहिब॥

दादू दरस दिवाना, आरसी यार दिखाना॥ टेक॥

आधी रात गगन मध चंदा। तारा खिलक खिलाना॥ १॥
चटकी सुरति चढ़ी ज्यों चकरी। फूटि गया असमाना॥ २॥
लै लगी जाइ महल मध ऊपर। सूरति निरत ठिकाना॥ ३॥
मिल गया यार प्यार बहु कीन्हा। खुलि गया अरस निसाना॥ ४॥
आदि अन्त देखा मध म्याना। क्योंकर करूँ बखाना॥ ५॥
गुप्त बात गुप्तै भई गाफिल। अंदर माहिं छिपाना॥ ६॥
मैं कछु कीन लीन सोइ जानत। और कहूँ नहि चीन्हा॥ ७॥
दादू पीर मिटी परलै का। जन्म मरन नहिं माना॥ ८॥

अर्थ–दादू उस अपने प्रियतम के दर्शन की दीवाने हो उठे हैं, ये मित्र! दर्पण में ही यार का मुख बिम्ब दिखा दो॥ १॥

आधीरात हो गई है, चन्द्रमा आकाश के मध्य आ गया है और तारे खिल-खिलाकर फूल जैसे खिल उठे हैं॥ २॥

सुरति समाधि एकाएक चटककर चकरी व जैसी चढ़ गई और शून्याकाश फूट गया॥ ३॥

मैं प्रियतम के महल के मध्य में ऊपर स्थित (अटारी पर) जा लगी। वहाँ सुरति-निरति का ठिकाना देखा॥ ४॥

उसके आदि मध्य अन्त में सर्वत्र उसे समाया हुआ देखा, मैं उसका वर्णन कैसे करूँ॥ ५॥

गुप्त बातें गोपनीय ही रहीं, मैं उसका वर्णन क्यों करूँ, कैसे करूँ–वह अन्दर-ही-अन्दर छिप गया॥ ६॥

मैंने उसमें पूरी तरह संसक्त होकर जो कुछ भी किया, वह वही जानता है, किसी अन्य ने तो न उसे न मुझे पहचाना तक नहीं॥ ७॥

सृष्टि के प्रलयकाल से जलने तथा मरने की सारी पीड़ा समाप्त हो उठी और जन्म-मृत्यु का संदर्भ भी खत्म हो गया॥ ८॥

॥ सोरठा॥

जो देखा घट माहि, जिन जिन संतन सब कही।
रूप रेख नहिं ताहि, सो अदृष्ट अन्दर लखी॥

अर्थ–जिन-जिन, संतों ने सारी बातें बताई थी, उसे अपने शरीर के मध्य देखा। उसका न रूप था, न लक्षण, उस अदृष्ट तत्त्व को मैंने अपने भीतर देखा॥

॥ चौपाई ॥

सब संतन ने पाया लेखा। जोई अगम पंथ जिन देखा॥
जोइ जोइ संतन भाखि सुनाई। सो सब देखा अपने माईं॥
बिन देखे नहिं संत पुकारा। देखे बिन कहै झूठ लबारा॥
फूलदास बूझौं मन माईं। संत कही जो कबीर गुसाँईं॥
संत कबीर से अंतर नाहीं। भिन्न कहै सो नरकै जाई॥
जो जो संत गये निज धामा। सो कबीर न कहे मुकामा॥
चढ़े संत जो गगन ठिकाना। उनकी गति काहू नहिं जाना॥
संत मते कों दुइ कर जानै। ता तें परै नरक की खानै॥
संत की निन्दा करै बनाई। आदि अन्त भौ भटका खाई॥
संतन की गति भेष न जाना। संत बिना कहुँ नाहिं ठिकाना॥
भेष भुलाना भौ के माहीं। रहै काल बस जम की छाहीं॥
मैं कछु कही न निन्दा भाई। जस जस देखा तस तस गाई॥

अर्थ–जिन-जिन संतों ने अगम पथ को देखा, उन सबने उसकी समझ प्राप्त की है। जिन-जिन संतों ने इसके विषय में कहकर सुनाया है, उन्होंने उसे स्वयं अपनी दृष्टि से देखा है। बिना देखे, सन्तजन उसे कह नहीं सकते–और झूठ तथा लबार बिना देखे उसके विषय में कहते हैं।

हे फूलदास! तुम इसे मनही-मन समझो–जिसे गोस्वामी कबीर दासजी ने कहा है, वह सत्य है। संत और कबीर के बीच कोई अन्तर नहीं है जो दोनों को (कबीर और सन्त को) अलग-अलग बताते हैं, वे नरक में जाते हैं। जो-जो संत-संत अपने धाम गए, कबीरदास जी ने उनके उनके स्थानों का वर्णन किया है और जो संत शून्याकाश के ठिकाने पर पहुँच चुके हैं, उनकी दशा के विषय में कोई नहीं जानता॥

संत मत को जो अलग-अलग (दुइ करि) करके जानता हैं, उसके कारण वह नरक की खान में पड़ता है और जो अपने से गढ़-गढ़कर सन्तों की, निन्दा करता है, वह इस भवसागर में आदि से अन्त तक भटकता रहता है।

लोग सन्तों के भेष तथा उनके ज्ञान के विषय में नही जानते (लोगों को यह समझना चाहिए कि) कि उनके बिना संसार में किसी का कोई ठिकाना (अस्तित्व) नहीं है। भवसागर में पड़कर लोग वेशभूषा में भूल जाते हैं–इसलिए वे वेषधारी साधु जन की छाया में (सदैव) काल के ही वश में रहते हैं।

मुख अपने निदा नहि गाऊँ। और संत की साखि सुनाऊँ॥
ओरौ और और पुनि गाऊँ। तिन तिन की मैं साखि बताऊँ॥
तुलसी संत भेष कर चेरा। ये भौ सिंध अनीत अनेरा॥
तुलसी संत चरन की धूरी। दादू सब्द बताऊँ मूरी॥
उनकी साखी सब्द बताऊँ। पुनि दादू की साख सुनाऊँ॥
भेष भूल तब जग के माईं। ता कारन ये सब्द सुनाई॥
भेष भुलान खान सुख कारन। ता तें दादू सब्द पुकारन॥

अर्थ-हे भाई! मैंने कुछ निन्दाभाव में नहीं कहा है, संसार में मैंने जैसा-जैसा देखा है, उसे वैसा-वैसा बतलाया है। मैं अपने मुख से किसी की निन्दा नहीं करूँगा और केवल सन्तों के साक्ष्यों को ही सुनाऊँगा। इसके अतिरिक्त भी मैं अन्य बातें कहूँगा, तथा अन्य अनेक सन्तों की साखियों को और कुछ सुनाकर बताऊँगा और उनके-उनके साक्ष्यों को बताकर सुनाऊँगा।

तुलसी साहब कहते हैं कि वेश तो सन्तों का दास है—और इसी भेष के कारण यह सम्पूर्ण संसार के अनीति और स्वच्छन्दता का केन्द्र है। मैं तुलसीदास तो सन्त चरणों की धूलि हूँ। मैं दादू साहब के शब्दों में इसके मूल रहस्य को वर्जित करूँगा॥

उनकी साखियों तथा शब्दों को मैं बतलाऊँगा, फिर मैं दादू की साखियों को सुनाऊँगा। मैं इन सबद को इसलिए सुना रहा हूँ कि संसार के मूल में मैंने वेश रचना को ही प्रधान रूप में देखा है।

सुख के अन्य कारणों के केन्द्र को भूलकर व्यक्ति वेश रचना में ही संसक्त हो उठा है, इसीलिए ही, दादू ने अपने सबदों में इसे पुकार-पुकार कर बताया है।

॥ शब्द (७)॥ दादू साहिब॥

दादू भेष भुलाना, जम संग कीन्ह पयाना।। टेक॥
षट दरसन पंडित और ज्ञानी। पढ़ि पढ़ि मुए पुराना॥ १॥
परहंस जोगी सन्यासी। बेद करत परमाना।। २॥
आतम ब्रह्म कहैं अपने कों। सब में हमीं समाना॥ ३।।
ता से भौजल पार न पावैं। अहंग ब्रह्म मन माना॥ ४॥
मन बिहंग की खबरि न जानै। तन निहंग है बाना॥ ५॥
जग जज्ञास मोह पद माते। ता से बहु लपटाना॥ ६॥
बे साहिब समरथ हैं दाता। तिन को नहिं पहिचाना॥ ७॥
वा को भेद बेद नहिं पायौ। अगम पंथ नहिं जाना॥ ८॥

अर्थ—अरे यह साधु वर्ग वेश रचना में भूल गया है, दादू साहब कहते हैं कि इसीलिए यह यमराज के साथ प्रस्थान कर रहा है।

छः दर्शन सिद्धान्त, उनके पंडित तथा ज्ञानी एवं पुराणवाचक सभी के सभी उन्हें पढ़ते हुए मर गए॥ १॥

परमहंस, योगीगण, सन्यासी आदि जो वेद के प्रभाव का ज्ञान मानते हैं, वे अपने को आत्म ब्रह्मरूप कहते हैं और गाते हैं कि सभी में आत्मरूप-ब्रह्म समाया है॥ २-३॥॥

इन कारकों से वे माया संसार से मुक्त नहीं होते—वे अहम् में विलीन ब्रह्म को मानते हैं॥ ४॥

वे मन रूपी पक्षी की खबर नहीं जानते और वे इस शरीर को पूरी तरह से धर्मचिह्न बनाए हैं। वे संसार के प्रति जिज्ञाशावान् किन्तु मोह तथा मद में माते हुए हैं और उनसे उनके अनेक भाई -बन्धु संसक्त तथा लिपटे हुए हैं॥ ५-६॥

वे परमात्मा स्वामी हैं, समर्थ हैं, दाता हैं, ये उन्हें नहीं पहचानते। उन स्वामी के रहस्य का ज्ञान वेद भी नहीं समझते—और वे उस परमात्मा के अगम्य पंथ को भी नहीं जानते।

॥ शब्द (८)॥ दादू साहिब॥

दादू दो दिन रहिहौ, जम दुख बंधन सहिहौ॥ टेक॥
तू मत जान ज्ञान आतम कस। इन बस धोका खैहौ॥ १॥
ये संसार भाव भय भावत। खोजत फिरि फिरि वहौ॥ २॥

भेष भुलान खान सुख कारन। सार न पुनि फिरि पैहौ॥ ३॥
ये जग खोट मोट कौ पूजत। सूझत स्वारथ दैहौ॥ ४॥
ये भौ-सिंध अथाह अपारा। बूझि बूझि पग दैहौ॥ ५॥
जम की जाल बड़ी अति दारून। आपै आपु बँधैहौ॥ ६॥
दादू कहत पुकारि जगत जग। भेष सबै सुनि लैहौ॥ ७॥
भौजल पार जबै होइ जैहौ। सुरति शब्द समैहौ॥ ८॥

अर्थ–दादू साहब कहते है कि इस संसार में थोड़े दिन (दो दिन) ही रहना है–इसका दुखदायी बन्धन सहो। तू यह समझने की चेष्टा मत करो कि 'आत्म ज्ञान' कैसा है, इसको बताने वाले इन साधुओं के वश में आकर धोखा खा जाओगे॥ १॥

यह संसार भावमय है, सुन्दर लगता है, और उस परम तत्त्व को खोजते-खोजते फिर-फिर बह जाओगे॥ २॥

भौतिक सुखों के कारण यह संसार वेशरचना में ही भूल उठा, (और अब आगे) वह उस मुक्ति के सारतत्त्व को पुन: नहीं प्राप्त कर सकेगा॥ ३॥

यह संसार नासमझों एवं सम्पन्नों (महन्थादि) की पूजा करता है और उन्हें समझ में आता है कि ये हमारे स्वार्थ (लोकाकांक्षाओं) को पूर्ण कर देगें॥ ४॥

यह भवसिन्धु अपार हैं, अथाह है, इसमें प्रवेश करने के लिए समझ-समझकर पद रखना॥ ५॥

यम की जाल के फंदे अत्यन्त दारुण एवं व्यापक हैं, तुम स्वयं उसमें अपने आप बँध जाओगे॥ ६॥

दादू साहब समस्त संसार को पुकार-पुकार कर कहते हैं कि इस वेश रचना के विषय में सभी सुन लें। इस भवसागर के पार तभी हो सकोगे-जब सुरति के शब्द ज्ञान (अनुभव ज्ञान) में प्रविष्ट होगे॥ ८॥

॥ शब्द (१)॥ दादू साहिब॥

दादू दीन अवाजा, अग जिव भेष न लाजा॥ टेक॥
सिव सनकादि सिगी पारासर। इनकौ सरयौ न काजा॥ १॥
ये तन तोर काल कर खाजा। छिन छिन सिर पर गाजा॥ २॥
सुकेदव व्यास जनक नारद मुनि। घट घट उन पर छाजा॥ ३॥
तू केहि लेखे माहि न बचिहै। पचि पचि मरत अकाजा॥ ४॥
बाघ उपाव करै गउ कारन। जम दल यहि बिधि साजा॥ ५॥
पल में छुटि जैहै सुख सम्पति। ज्यों माखी मधु राजा॥ ६॥
राति दिवस धावै धन कारन। मरन काल कित आ जा॥ ७॥
जिन कोइ सरति सत्त लखि चीन्हा। जन्म मरम भौ भाजा॥ ८॥
दादू भेष भेद जब छूटै। सुरति शब्द समा जा॥ ९॥
जब भया सिंध बुँद का मेला। बोहि साहिब को लाजा॥ १०॥

अर्थ–दादू साहब ने आवाज देकर कहा, हे संसार (अग) के जीवों! तुम्हें इस वेश रचना से लज्जा नहीं आती है।

शिव, सनकादि, शृंगी ऋषि एवं पारासर आदि की वेश रचना से भी उनका आध्यात्मिक मन्तव्य पूरा नहीं हुआ॥ १॥

यह तुम्हारा शरीर काल का खाद्य पदार्थ है और क्षण-क्षण तुम्हारे सिर पर कालकी गाज गिर रही है॥ २॥

शुकदेव, व्यास, जनक एवं नारद आदि के घट-घट पर वह फैला हुआ है॥ ३॥

हे मनुष्य! तू किस विचार से उनसे बच निकलेगा, व्यर्थ ही, तू पच-पच कर मर रहा है॥ ४॥

जैसे कोई व्याघ्र गाय के लिए रक्षा का कोई उपाय करता हो, ठीक उसी तरह यमराज की सेना तुम्हारे लिए सजाई गई है॥ ५॥

सम्पूर्ण सुख सम्पत्ति पलभर में छूट जाएगी–जैसे मधुराजा के हटते ही छत्ते से मक्खियाँ छूट जाती है॥ ६॥

धन के निमित्त तुम रात्रि दिवस दौड़ते हो, किन्तु मृत्यु कहाँ कब आ जाए। तय नहीं है॥ ७॥

जिन संतों ने सुरति के सत्य भी पहचान कर ली है उसके लिए जन्म-मृत्यु एवं भौजाल स्वयं भाग जाते हैं॥ ८॥

जब सन्त में सुरति का साक्ष्य ज्ञान समाविष्ट हो जाता है तो वेश रचना का भेद समाप्त हो उठता है तथा बूँद (आत्मा) और सिंधु जैसे परमात्मा का मिलन हो जाता है तो वह स्वामी परमात्मा स्वयं जीव की रक्षा के लिए लज्जित हो उठते हैं॥ ९-१०)॥

॥ शब्द (१०)॥ दादू साहिब॥

दादू कहत पुकारी, कोइ मानै नाहिं हमारी।। टेक॥
पंडित काजी बेद कितेबा। पढ़ि पढ़ि मुए लबारी॥ १॥
ये तीरथ ये हज को जाते। बूढ़े भौजल धारी॥ २॥
हिन्दू तुरक दीन दोउ भूले। करम धरम पचि हारी॥ ३॥
नूर जहूर खुदा हम पाया। उतरे भौजल पारी॥ ४॥

अर्थ–दादू पुकार-पुकार कर कहते हैं, कोई हमारी बातें नहीं मानता।

पंडित, काजी, वेद, धर्मशास्त्र–इन्हें पढ़ पढ़कर लोग लबार बन गए हैं॥ १॥

वे तीर्थ को और वे हज को जा रहे हैं और वे सभी भौजल की धारा में डूब चले हैं॥ २॥

हिन्दू और मुसलमान दोनों अपने धर्मो को भूल गये हैं और इसी धर्म तथा कर्म में फँस कर मर गए है॥ ३॥

हमने ईश्वर का तेज और उसकी कृपा प्राप्त की है, परिणामस्वरूप हम सब इस भौजल के पास उतर गए हैं॥

॥ शब्द (११)॥ दादू साहब॥

दादू दीन अधीना, मैं मति काहु न चीन्हा॥ टेक॥
देह भाव जानत जग सारा। मैं तिन से तस कीन्हा॥ १॥
मैं अति नीच जाति कर बेहना। का कहुँ बूझि न सैना॥ २॥
जो कछु कही सही नहिं लीन्हा। पुनि पुनि उत्तर दीन्हा॥ ३॥
मैं कहा सार पार परमारथ। स्वारथ जग मति हीना॥ ४॥
जो कोइ कहन गहन लखि लीन्हा। कही संतन मत भीना॥ ५॥
आठ अरब बानी पद पूरन। सूर न सार यकीना॥ ६॥

दादू दूरि गाँव बसि पारा। धुनि कपास रस पीना॥ ७॥
सतगुरु संघ मारग अति झीना। ज्यों जल तैरत मीना॥ ८॥

अर्थ–दादू साहब कहते हैं कि मैं तो प्रभु के अधीन उनका एक दास हूँ, मैंने किसी के ज्ञान को नही पहचाना तथा चीन्हा है।

यह सारा संसार भेद भाव को अच्छी तरह जानता है किन्तु मैंने तो सबके साथ समान आचरण रखा॥ १॥

मैं अत्यन्त नीच जाति से सम्बद्ध 'बेहना' हूँ। मैं क्या बताऊँ, इशारे से ही समझो न?॥ २॥

मैंने जो कुछ भी कहा है, उसे लोगों ने ठीक ढंग से नहीं लिया है और बार-बार मेरी बातों को स्वीकार न करके लोग मुझे उत्तर देते रहे हैं॥ ३॥

मैंने बताया कि परमार्थ के उस पार जीवन का सार तत्त्व है, और यह संसार अपने स्वार्थों में फँसा गतिहीन है॥ ४॥

जिस किसी ने भी कथनी को स्वीकार करके उसके सार तत्त्व को स्वीकार कर लिया है, उसने सन्तों के मतों को भिन्न तरह से कहा है॥ ५॥

आठ रबों से भी अधिक पदों से परिपूर्ण सन्तों की वाणी है–किन्तु इन विद्वानों को उस वाणी के सार तत्त्व पर विश्वास नहीं है॥ ६॥

दादू दास कहते है कि मैं तो गाँव के उस पार निवास करता हुआ और मैंने कपास को धुन कर के उस आध्यात्मिक आनन्द का पान किया है॥ ७॥

सतगुरु के साथ चला जाने वाला मार्ग अत्यन्त झीना है–जैसे तैरते हुए जल में मछली का मार्ग॥ ८॥

॥ सोरठा॥

तुलसी भेष भुलाना, जानि मानि भौ में लसा।
फँसा रस सार न जान, जानि कानि बूझी नहीं॥

अर्थ–यह जान करके कि और समझ करके कि वह भवसागर में संसक्त हो उठा है। उसमें फँसा हुआ व्यक्ति रस के सार तत्त्व को नहीं समझता। वह उसे समझ करके भी उसे समझता नहीं है॥

॥ चरचरी॥

तुलसी सब तोल देख, भेष भाव जाई॥ टेक॥
तलसी रस खान पान, जान मान माईं।
ऐसा मन भूल भेष, भिन्न चिन्ह न पाई॥ १॥
संतन से बैर हेर, साथ चहत नाईं।
तुलसी सब भेष मूल, अपने हँस माई॥ २॥
देखा सब झार झार, पार कोउ न पाई।
लाई लै लार लार, जग असार साईं॥ ३॥

अर्थ–सम्पूर्ण तत्त्वों का जिस दिन मूल्यांकन कर लोगे, यह भेष का भाव नष्ट हो उठेगा।

तुलसी साहब कहते हैं कि हे मान! खान, पान एवं आध्यात्मिक रस के के ज्ञान को मानो।

उस आध्यत्मिकता का मन के बीच ऐसी भिन्न वेश रचना है कि उसका कोई भिन्न स्पष्ट चिह्न नहीं पा रहा है। सन्तों से बहुत अधिक बैर करके, तुम उनका साथ नहीं चाहते। हे भाई, तुलसी साहब कहते है कि अपनी अहन्ता में सभी फँसे हुए तुम सभी बेषभूषा को मूलतत्त्व माने हुए हो॥ १-२॥

मैंने सारे के सारे गोपनीय स्थानों को देखा किन्तु उस पार (आध्यात्मिक लोक में) किसी को नहीं प्राप्त किया। मै हर तिनके को प्रेम में जोड़कर ले आया किन्तु हे स्वामी? यह समस्त संसार असार ही दीख पड़ा॥ ३॥

भूलो हक सक्क नाहिं, तुलसी कछु गाई।
पैंहै सुख संत साथ, और कहूँ नाहीं॥ ४॥
सत साँच और काँच, पाँच भूत माईं।
तुलसी सब हेर देख, भेष अनेक ठाईं॥ ५॥
देखा सब जोइ जोइ, चौज कहँ न पाई।
तुलसी मन टूट फूट, छूट छाँड़ ताही॥ ६॥
बिना संत सत्त तत्त, हाथ नहीं आई।
देखा सब जोइ दोइ, द्वार खानि माईं॥ ७॥
तुलसी निरखा निहार, पार सार नाहीं।
चित्त कहन बर्त बूझ, कर्म काल जाई॥ ८॥
मैं तो कही पेख नैन, देख भेद जाई।
बूझा नहिं सुपन सैन, ऐन आद नाहीं॥ ९॥
ता से मन चेत बूझ, देखि दृष्टि जाई।
तुलसी तन तोड़ फोड़ मोड़ पोढ़ पाई॥ १०॥

अर्थ--इसमें कोई शक नहीं है कि सभी अपने अहंकार में भूले हुए हैं, तुलसी साहब उसी के विषय में कुछ कह रहे हैं--यहाँ तो सम्पूर्ण सुख सन्तों के ही साथ मिलेगा, अन्य और कहीं भी नहीं॥ ४॥

सन्त ही सच्चे हैं और हे भाई! ये पाँचों महाभूत तत्त्व कच्चे हैं, तुलसी ने सबको अनेक बेशों एवं अनेक धार्मिक स्थानों पर देखा है॥ ५॥

सभी का निरीक्षण करके देखा है किन्तु वह आनन्द विलास कहीं भी नहीं मिला, उन्हें देखते ही तुलसी का आस्थावादी मन टूट गया, उनसे अलग हो उठा और उसी क्षण उसे त्याग दिया और वह छूट गया॥ ६॥

बिना सन्तों के सत्य तत्त्व हाथ नहीं आया, मैंने तो समस्त संसार को उसके द्वार पर उसकी सम्पन्नता की प्रतीक्षा करके देखा॥ ७॥

तुलसी ने पुनः निहार कर देखा, इस भौतिक जगत के उस पार भी कोई सारवान तत्त्व नहीं दिखा। चित्त के कहने पर मैंने भवसागर को देखा। यहाँ केवल कर्म तथा काल ही निरन्तर गमनशील हैं॥ ८॥

मैंने तो उसे अपने नेत्रों से देखकर कहा है, इनके रहस्य को तुम भी जाकर समझो--मैं तो इस संसार के स्वप्न एवं भंगिमाओं को भी नहीं समझ गया॥ ९॥

इससे हे व्यक्तियों तुम मन से समझकर इसे जानो और जाकर अपनी स्वयं की दृष्टि से देखो। तुलसी साहब कहते हैं कि इस शरीर के साथ जुड़े मन दोनों को तोड़कर, फोड़कर, मोड़कर ही इस मूल तत्त्व को प्राप्त कर सकते हो॥ १०॥

॥ चौपाई॥

भेष भुलान सबै जग माईं। आदि अन्त की खबर न पाई॥
जो कोइ भेद कहै समझाई। भेष कान पर एक न लाई॥

कपरा रँगे भेष भये साधू। बूझै न बस्तु जो आदि अनादू॥
दया जानि कोइ भेद बतावै। तौं वह नगर रहन नहि पावै॥
गृही भेष सब मारि निकारै। कहै हमरा रुजगार बिगारै॥
परमारथ नहि बूझि गँवारा। पढ़ि पढ़ि बूड़े भव जल धारा॥
या ते संत मता नहि पावै। ता ते जिव भव में रहि जावै॥
कर्म बंध जिव भरमै खाना। बिना संत नहिं लगै ठिकाना॥
फूलदास रेवती सुन दासा। संत मिलै तौ होइ सुबासा॥
और जो सुनौ जगत सब बोरा। भेष टेक में बूड़ न थोड़ा॥
संत मता कहुँ देख न आवै। भेष मता सब जगत बुड़ावै॥
ऐसी सोल पोल कहा कीजै। उपजै बिनजै नित नित छीजै॥
ऐसी कहा कहा की कहिये। ता से गुप्त मौन होइ रहिये॥
को जग अजगुत सिर पर लेही। परी भूल सर्ब मत येही॥

अर्थ–हे भाई! इस संसार में सभी बेश रचना के आडम्बर में भूले हुए हैं। उन्हें न आध्यात्मिक आदि की चिन्ता है, न अन्त की। उनको यदि कोई इस विषय पर समझा कर बताता भी है तो साधुओं की वेशभूषा के आडम्बर के विषय में कोई बात उनके मन में नहीं बैठती। साधुजन कपड़ा रंग के वेशधारी बनते हैं किन्तु उन्हें आदि-अनादि की मूल वस्तु समझ में नहीं आती। यदि कोई उन पर दया करके उन्हें इस बात को समझाना चाहे तो वह काशी जैसी नगरी में रहने नहीं पाएगा।

गृहस्थवेष के साधु को देखकर सभी उसे मारकर निकाल देते हैं और कहते हैं कि यह हमारा रोजगार बिगाड़ रहा है। ये गँवार परमार्थ तत्त्व को नहीं जानते और शास्त्रादि पढ़ पढ़कर भवजाल में डूब मरते हैं। इसी कारण ये संतमत को नहीं समझ पाते और इनका जीव इसी भवसार में रह जाता है। जीव कर्मबन्ध के कारण नाना योनियों में भरमता है और बिना सन्तों के उसका कहीं और ठिकाना भी नहीं लगाता।

हे फूलदास, हे रवतीदास आप लोग सुनें, सन्त के मिलने पर ही ठौर ठिकाना मिलता है। यदि अन्य से इस तत्त्व को समझना चाहोगे तो वह इस भवसागर में डुबने देगा–वेष रचना पर अड़ जाने पर व्यक्ति पूरी तरह डूब जाता है, उस व्यक्ति को कहीं भी सहमति नहीं दिखाई पड़ेगी और उस वेश रचना सारे संसार को डूबो देगी॥

इस प्रकार की सोल पोल (आडम्बर) करने से क्या लाभ, वह तो बीज की भाँति प्रतिदिन उपजता तथा नष्ट होता रहेगा। ये कहाँ-कहाँ थी मैं क्या बातें कहूँ। इसलिए इससे मुक्त होकर शान्त की रचना की ठीक है। समस्त मतों के मूल में यही तथ्य निहित है, इसलिए इस संसार की सम्पूर्ण दुर्व्यवस्था को सिर पर लेने से क्या लाभ?

हाल मुसलमान साधू अली मियाँ का

॥ बचन तुलसी साहिब॥ चौपाई॥

एक समय इक अचरज भइया। इक फकीर मक्के से अइया।।
नाम अलीं तेहि जाति फकीरा। राति भई रहे हमरे तीरा॥
अल्ला कुह कुह करै निमाजा। हमरे माहिं देखि मन लाजा॥
फारिग भये तब खाना खाया। ले आसन कुटिया में आया॥

हम से खुदा खुदा कर बोले। खुदा नबी बिन कछू न तोले॥
पूछा अल्लानबी केहि ठावाँ। उन पुनि ले असमान बतावा॥
हम पुनि कहा तुम्हारे पासा। मुरसिद मिलै तो होय खुलासा॥
हमरी बानी कान न लावा। तब दादू का सब्द सुनावा॥
अली मियाँ सुन हक्क इमाना। मुरसिद दादू किया बखाना॥
अदर अली भली कर मानौ। अल्ला अलिफ जुबान बखानौ॥

अर्थ–एक समय एक आश्चर्यमयी घटना हुई। एक मक्के से आया था, उसका नाम अली, तथा वह जाति का फकीर था। रात्रि हुई और वह हमारे पास आया। अल्ला-अल्ला कहकर वह नमाज़ करता था–उसको देख मेरे मन में लज्जा लगती थी। शाम को फारिग होकर उसने भोजन किया तथा अपना आसन लेकर वह मेरी कुटिया में आ गया। वह मुझसे खुदा-खुदा कहते हुए बोले और खुदा के बिना कुछ वो नहीं मूल्यांकित करते थे।

हमने उनसे पूछा कि अल्ला मिया तथा नबी कहाँ हैं, तो उन्होंने मुझे आकाश की ओर इशारा किया। हमने उनसे पूछा कि क्या वह तुम्हारे भी पास हैं, उन्होंने उत्तर दिया–धर्म गुरु मिलें तो यह बात स्पष्ठ हो।

उन्होंने जब मेरी बातों पर ध्यान नहीं दिया, तब मैंने दादू साहब के 'सबद' को सुनाया। अली मियाँ उसे सुनकर स्तम्भित (हक्क इमान) रह गए। मैंने बताया कि मैं धर्मगुरु दादू के वर्णन को बता रहा हूँ। अली साहब ने उसे अच्छा मानकर सुना और कहा कि अपनी जुबान से आप अल्ला मिया का वर्णन करें।

॥ अली मियाँ ॥ चौपाई ॥

भूल रसूल रमक दरसावौ। पैगम्बर परमान बतावौ।।
पैगम्बर कहि भाखि सुनावौ। मसजिद हक मक्का को गावौ॥

अर्थ–परमात्मा के मूल का रहस्य बताएँ तथा पैगम्बर का प्रभाव भी कहें। पैगम्बर ने यह कहा है, ऐसा कहकर भी बताएँ और ईश्वरीय मस्जिद मक्का का भी वर्णन करें।

संवाद अली मियाँ

॥ तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

कितनी कही इमान न लावा। मंजल एक उन भाखि सुनावा॥
खुदा खुदाय सब खलक बखानै। खुदा बिना कही एक न मानै॥

अर्थ–मन लोगों के सामने कितनी बार खुदा की बाते कहीं किन्तु कोई उस पर ईमान नहीं ला सका। खुदा तो खुदाय का है, सभी उसे संसार का कहते हैं–और खुदा के बिना कहे कोई एक भी बात स्वीकार नहीं करते॥

(ग़ज़ल अली मियाँ)

बंदा बेहोश याद हर दम लावै।
तेरे बिन खुदी खूब कैसे भावै॥ १॥
कीन्हे तें आफताब खलक आफरी।
कलमा बिन पढ़ न कहै कुफर काफरी॥ २॥

तुलसी ये अली ग़ज़ल गाइ सुनाई।
दाद दुरवेश एक देश हमहूँ गाई॥ ३॥

अर्थ–हे प्रभु! तुम्हारे बिना यह संसार कैसे अच्छा लगे। प्रभु के प्रति समर्पण को देखकर यह संसार क्षमा करता है। यदि कलमा नहीं पढ़ते तो उन्हें धर्महीन बताते हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि हे अलीमियाँ, यह गज़ल हमने गाकर सुना दी। साधु दादू दयाल के एक छन्द को मैंने भी गाकर आपको सुना दिया। १-३॥

(गजल तुलसी साहिब)

दिल का दुरवेश एक दादू फ़कीर।
भीख कही साखि शब्द मुरशिद पीर ॥ १॥
सुनिये म्याँ अली अलिफ़ बानी उनकी।
रोज़ा निमाज़ कही अन्दर धुन की॥ २॥
कलमा पढ़ खुदा खुदा खोज अपने माई।
देखो तन बदन बीच भिश्त बनाई॥ ३॥
तुलसी की कहन मियाँ दिल में लावो।
बदन बीच खोज यार अन्दर पावो॥ ४॥

अर्थ–दिल से साफ एक दादू फकीर, उसने अपने शब्दों में आध्यात्मिक गुरुओं की पीड़ा का वर्णन किया है। मियाँ अली साहब, जरा उसकी कुछ बातें सुनें। रोज तथा नमाज यह अन्दर की आवाज है–और कलमा पढ़-पढ़कर हे भाई उसे अपने में ही खोजो और ध्यान से देखो तो वह इस शरीर के भीतर स्वर्ग बना रखा है। हे अली मियाँ? तुलसी की बातों को कुछ हृदय में लेकर उन्हें स्थान दो। जिस यार के लिए इतने परेशान हो, उसे इशी शरीर के बीच खोजो और उसके अन्दर प्राप्त करो॥ १-४॥

॥ सोरठा॥

अली अजब दीदार, पार परख दादू कही॥
दिल दुरबीन निहार, सो बिचार कह्यौ सब्द॥

अर्थ–दादू ने कहा है कि उसका दृश्य बड़ा ही आश्चर्य जनक है–उसे मन के ही उस पार देखो। उसे दिल की दूरबीन से निहार कर उसी के बिचार के लिए ये सबद मैंने कहे हैं।

॥ दोहा॥

फहम फकीरी अरस की, मुकर देखि दुरबीन।
चीन्ह चलै उस राह कों, रूह रहम लौलीन॥

अर्थ–परम्परा से चली आ रही फकीरी की समझ को मन की दर्पण में चित्त की दूरबीन से देखो। उस सच्चे मार्ग की पहचान करके चलो और आत्मा तो निरन्तर तुम्हारे कल्याण में लगी हुई है॥

॥ सोरठा॥

दादू दूर दराब, आबताब पट अबर नहिं।
अल्ला अलिफ मकान, अबर फाड़ि पट राह लख॥ १॥

दिल बिच अलिफ दीदार, स्याम सहर पर रूह लखो।
चखौ अरस रस सार, ये बिचार दादू कही॥ २॥

अर्थ–दादू साहब कहते हैं कि वह प्रकाश सूर्य की रोशनी के बीच नहीं छिपा है। ईश्वर का गृह तो शून्य में है और भौतिक वासनाओं को फाड़ करके उस देखो!

हृदय के बीच में ही ईश्वर का दर्शन सम्भव है और वहीं श्याम और श्वेत स्थल पर उस अगम्य को देखो। वह जो सामान्य रूप से रूखा दिखाई पड़ता है उसके रस के सार तत्त्व का आस्वादन करो, यही दादू साहब का विचार है॥

॥ चौपाई॥

दरिया भी दादू बतलाई। अली मियाँ सुनि साखि सुनाई॥
जो सराब दादू भरि पीना। सो सुनि कर कै करौ यकीना॥
आव अलिफ जिनकी चलि आई। सों फकीर दुरबेस कहाई॥
उन कुरान का मझब सुनावा। भिस्त खोज खुद खुदा लखावा॥
अब दादू का सब्द सुनाऊँ। परस पिया रस लखन लखाऊँ॥

अर्थ–दरिया (नदी) के विषय में दादू साहब ने भी बताया है हे अलीमियाँ! आप सुनें, मैं उसकी साखी सुनाता हूँ। जो आध्यात्मिक उन्माद भरी शराब दादू साहब ने पी है, इस साखी को सुनकर आप विश्वास करें। वही ज्ञानी कहा जाता है, जिसका नाम रोशन हो उठता है और उसी को लोग सिद्ध फकीर कहने लगते हैं। वही कुरान का धर्मोपदेश करते हैं और स्वर्ग की खोज करते हुए स्वयं ईश्वर को दिखाते हैं। अब इस प्रसंग में दादू साहब का शब्द सुनाता हूँ और प्रियतम (अगम्य तत्त्व) के स्पर्श के अनुभव को स्पष्ट रूप से दिखाता हूँ।

॥ शब्द (१२)॥ दादू साहिब॥

दादू दूरि दराबी, पिय रस पियत सराबी॥ टेक॥
पियत पियाला मन मतवाला। भोर भई उँजियारी॥ १॥
खूबी खलक खुदी खोइ ख्वाबी। अंदर खिलि गइ ख्वाबी॥ २॥
मक्का भिस्त हज्ज को देखा। अबरा आब और ताबी॥ ३॥
अल्ला आदि नबी लख छूटा। रोजा निमाज अजाबी॥ ४॥
मलकुत नासुत जबरुत जा के। लाहुत हाहुत पागी॥ ५॥
लै लगी लामुकात रबि ही से। जगत जहान खराबी॥ ६॥
दादू दृग दीदार हिये के। चूँ बेजूँ बेज्वाबी॥ ७॥
चौधा तबक रियाजत बाजा। आया अरस अराबी॥ ८॥

अर्थ–दादू साहब कहते हैं कि दूर स्थिति उस उस प्रियतम के आनन्द (आध्यात्मिक) की शराब वह साधक पीता रहता है।

प्याला पीते ही उस मन उन्मत्त हो उठता है और उसकी अन्तश्चेतना में अन्धकार के स्थान पर प्रातः का उजाला दिखाई पड़ने लगता हैं। वह इस संसार में स्थित परमात्मा के गुणों में खो जाता है और उसका आध्यात्मिक स्वप्न उसकी अन्तरात्मा में खुल उठता है। वहीं अपनी अन्तरात्मा में मक्का तथा स्वर्ग दोनों को देखता है और प्रकाश में जलधारा की लहरों का वहीं संगम हो उठता है। उसे देखते ही

अल्लाह और धर्म गुरू छूट जाते हैं तथा नमाज, रोजा और मृत्युलोक के दण्डों का भय भी छूट जाता है। देवलोक (मलकूत), यह मृत्युलोक (नासून), श्रेष्ठता तथा बड़प्पना का अहंकार (जबरूत), आध्यात्मिक दिव्यता (लाहूत) तथा हाहूत सभी एक में मिलकर उसमें तन्मय हो उठते है। साधक की तन्यमता स्वयं प्रकाश में आत्मलीन हो उठती है और यह दृश्य जगत व्यर्थ हो उठता है। दादू साहब कहते हैं कि अन्तर्मन द्वारा उस अगम्य तत्त्व के हृदय में दर्शन होते ही वह लाजवाब परमतत्त्व इस प्रकार अद्वितीय हो उठता है।

॥ सोरठा ॥

अली मियाँ सुन साखि, दिलै फहम बेदिल हुआ।
मुए रूह से बाद, साथ स्वाल काफर कहा॥

अर्थ–हे अलीमियाँ इस साखी को सुनों यह हृदय उसमें तन्मय होकर इन वासनाओं के लगाव से दूर हो उठा। मृत्यु के बाद कुछ प्राप्त होता है, ये बातें बेकार हैं।

॥ चौपाई ॥

अली मियाँ सुन हमरी बानी। गुन गुन मन में बहुत रिसानी॥
कही कुरान अल्ला मुख बानी। हिंदू को काफर कर जानी॥
और रसूल पार करौ यकीना। उन फकीर ताजीमी कीन्हा॥
स्वाल भाखि पुनि आसन लीन्हा। उठकर चलन फिकर मन कीन्हा॥
हाथ पकरि हम गुसा उतारा। आसन जिमीं डारि बैठारा॥
हम पर मेहर करौ तुम साँईं। अपने दिल में बूझौ भाई॥
तुम खदाइ का खोंज न पावा। मट्टी महजित को सिर नावा॥
जो महजित तुम आप बनाई। ता महजित में खोज लगाई॥
कहौ खदा तुम सब के साईं। ऐसे कुरान कितेब सुनाई॥
अपने मुख से सब में भाखौ। मट्टी महजिद को फिर ताकौ॥
समझौ अपने दिल के माहीं। खुदा खोज खोजौ दिल माहीं॥
पाँच यार मुहम्मद जो भाखा। आग खाक जल पौन अकासा॥
ता को खोजो अपने माहीं। बिन मुरसिद कोइ खोज न पाई॥
सब में खुदा कुरान बतावै। करौ हलाल सो दरद न आवै॥
अपना कुफर चीन्ह नहि भाई। हिंदू को काफर बतलाई॥
सुनकर अली मियाँ कछ बूझा। ये तो ज्वाब खूब कर सूझा॥
खुसी भये और गुसा उतारा। है खदाई सब में इक प्यारा॥
फिर हम से वो पूछन लागा। कहौ खुदाइ सब माहिं बिराजा॥
अली कहै कछु देख न आवै। खोजै खुदा खोज नहिं पावै॥

अर्थ–हे अली मियाँ मेरी बातें सुनो, वह मन-ही-मन सोचता हुआ बहुत नाराज हुआ। कुरान के विषय में कहा जाता है कि वह अल्लाह के मुख से निकली हुई वाणी है। यही नहीं, हिन्दू का काफिर

करके जाना जाता है। इस पृथ्वी के उस पार का विश्वास करते हो औ उसको बताने वाले फकीरों को सम्मान दिया जाता है।

अपने उत्तर को कह कर उन्होंने आसन ग्रहण किया और फिर उठकर चलने की इच्छा की। हमने उनका हाथ पकड़कर उनका क्रोध शान्त किया और पृथ्वी पर आसन डालकर उन्हें बैठाया। हे स्वामी! तुम हम पर दया करो—तुम स्वयं अपने दिल में यह समझो कि स्वयं तुमने तो खुदा की खोजकर करके भी उसे प्राप्त नहीं कर सके और मिट्टी की बनी इस मस्जिद को सिर झुकाते हो। जिस मस्जिद को तुमने स्वयं बनाई है, उस मस्जिद में ईश्वर की खोज कर रहे हो।

धर्मग्रन्थ कुरान ने यह बताया है और तुम भी कहते हो कि खुदा सबका मालिक है और अपने मुख से ही कहते हो कि वह सबमें वर्तमान है—और इतना जानते हुए भी मिट्टी और मस्जिद को तुम देख रहे हो। अपने दिल के भीतर समझो और खुदा की खोज उसी दिल के भीतर करो। मुहम्मद साहब के पाँच दोस्तों का वर्णन है:ये है, आग, मिट्टी (राख), जल, वायु एवं आकाश। उसको अपने में ही खोजो किन्तु बिना धर्मगुरु के कोई खोज नहीं पाता। कुरान यह बताता है कि खुदा सबमें है किन्तु पशुओं का हलाल करते हो, और लेशमात्र भी पीड़ा का अनुभव नहीं होता।

हे भाई! तुम अपनी ना समझी पहचान नहीं पाते और दूसरी ओर हिन्दू को काफ़िर (धर्मद्रोही) कहते हो। इसे सुनकर अली मियाँ की समझ में कुछ बात आई—कि इन्होंने तो उत्तर बहुत अच्छा दिया है। अली मियाँ खुश हो उठे और अपना क्रोध उतार दिया और समझ में आया प्यारा खुदा सब में एक तरह से है।

इसके बाद, वे मुझसे पूंछने लगे कि उस खुदा के बारे में बताइये जो हम सब में स्थित है। अली मियाँ कहते हैं कि वह कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता, उसे सदैव खोजते रहते है, किन्तु खोज नहीं पाते॥

॥ दोहा ॥

तुलसी कह म्याँ अली सुन, खुदा भिस्त के द्वार।
दो अनार लटकत रहैं, कुंजी मुरसिद हाथ॥ १॥
अली मियाँ अचरज भया, काही बात सब साँच।
तुलसी भेद बताइये, दीन होय मैं जांच॥ २॥

अर्थ—तुलसीदास बोले कि हे मियाँ अली, सुनों, खुदा तो स्वर्ग के दरवाजे पर है, उस दरवाजे पर दो अनार लटक रहे हैं, उसकी कुंजी धर्मगुरुओं के पास है॥ १॥

अली मियाँ को आश्चर्य हुआ कि उन्होंने बातें सच कही हैं और बोले कि मैं अत्यन्त दीन की भाँति आप से याचना (जांच) करता हूँ कि इसका भेद बताएँ॥ २॥

॥ चौपाई ॥

कहि तुलसी हम भेद बतावा। भिस्त के द्वार अनार लखावा॥
येहि अनार पर सुरति लगावौं। खुलै द्वार भिस्त तब पावौं॥
तुम तुलसी के कदम उन लीन्हा। अली मियाँ आधीनी कीन्हा॥
हुआ अधीन भेद बतलाई। तब उठि मियाँ राह को जाई॥
फूलदास बूझौ तुम मूला। हिंदू तुरक भेद दोउ भूला॥
भूला भेष काल भरमाया। काल अपरबल सब को खाया॥
संत मते की राह न जानै। काल चाल बिधि कालहि मानै॥
जम फाँसी में भेद भुलाना। केहि बिधि पावै जीव ठिकाना॥

ये जग माहिं फाँस जम डारा। संत बिना नहिं होइ उबारा॥
बारा मते काल न कीन्हा। आदि अंत फाँसी जिव दीन्हा॥
सतजुग द्वापर त्रेता माई। और कलजुग की कहा बताई॥
अनेक जुगन जुग फाँस फँसानी। भेद न चीन्हा पड़े पुनि खानी॥
जब निरगुन बैराट पसारा। सत्त नाम से माँगि लबारा॥
बारा नते मोहि को दीजै। मोरा मता साध अस कीजै॥

अर्थ–तुलसी साहब ने कहा कि उन्हें हमने भेद बताया और स्वर्ग के द्वार पर स्थित उस अनार को भी दिखाया। इस अनार पर सुरति ध्यान लगाओ–तब स्वर्ग का द्वार खुलेगा और तुम स्वर्ग प्राप्त करोगे॥

तब उन्होंने तुलसी के चरणों को छुआ और उनकी आधीनता स्वीकार कर ली। जब वे मेरे अधीन हुए तब मैंने उन्हें मैंने उनका रहस्य बतलाया और उसके बाद अली मियाँ अपनी राह चल पड़े।

हे फूलदास! तुम इसके मूल रहस्य को समझो। तुम तो हिन्दू एवं मुसलमान के भेद में पड़े हुए हो। तुम वेषसज्जा में भूले तथा काव्य के द्वारा भ्रमित किए हुए हो। यह काल सर्वथा शक्तिशाली है, और यह सभी को खा गया है। सत्य मत की कोई राह नहीं जानता तथा काल की चाल के कारण काल को ही विधाता मान रहा है। यम के फँदे में पड़ा हुआ यह मनुष्य सम्पूर्ण भेदों को भूल गया है और वह यह नहीं जानता कि जीव किस प्रकार अपने आश्रय स्थल को प्राप्त करेगा। इस सम्पूर्ण सृष्टि में काल ने अपनी फाँस डाल रखी है–अतः बिना सन्तों के जीवों का उद्धार असम्भव है। काल ने अपने बारह तरीके बनाये हैं और आदि में या अन्त में वह जीव को फाँसी देता है। सत्युग, त्रेता तता द्वापर तथा कलियुग की कही हुई कथा मैं बतलाता हूँ। इन अनेक युगों में काल ने मनुष्य को फाँसी के फंदे में फँसाता रहा और जिसे (परमार्थ का रहस्य) समझ में नहीं आया वे भवसागर में पाप की खानि में पड़े रहे। निर्गुण ने जबसे विराट सृष्टि का प्रसार किया, उस लबार ने सत् नाम से यह यह बरदान माँगा। मुझे बारह प्रकार के साधनों को दें और हमारे मतों को ऐसा साधन बनायें।

बारा मत की राह चलाऊँ। जा से जीव जगत उरझाऊँ॥
ऐसे निरगुन माँगा माई। काल जाल मति जिनहिं चलाई॥
बारा माहिं भेष सब भूला। सो जग जाल सहै जम सूला॥
निरगुन काल जग कीन्हे भेषा। चारो जुग जग बाँधी टेका॥
भेष किया जग काल कराला। संत बिना नहिं छूटै जाला॥
काल भेष जग भये अनेका। अपनी अपनी बाँधी टेका॥
ता से तुलसी पंथ न कीन्हा। जगत भेष भया काल अधीना।।
जो जो कहे जीव निरबारा। सो सो फाँसी सबने डारा॥
बिन आँखी सूझा नहिं भाई। बिना संत कहौ कौन लखाई॥
चीन्है संत तो होइ उबारा। नहिं तो बूड़ै भौजल धारा॥
जे कोइ बारा मत को चीन्हा। काल रहे पुनि तासु अधीना॥
ता पर काल जाल नहि डारा। जम होइ दीन ताहि की लारा॥
संत मिलें पुनि मारग पावै। ऐसे जीव लोक को आवै।।
ये जग भेंष काल बस होइ। इनकी बात न मानौ कोई॥

जो कोइ काल भेष पहिचानै। गति मति भेद संत कर जानै॥
दस औतार निरंजन जाना। ब्रह्म बिष्नु काल उत्पाना॥
बेद कितेब अस फंद पसारा। ये जग काल जाल मत डारा॥
या को जब चीन्है कोह प्रानी। मत बारा की राह पिछानीं॥
पुनि बारा से भये अनेका। कह लग कहौं पार नहिं जे का॥
जो कोइ काल भेष पहिचानै। गति मति भेद संत कर जानै॥

अर्थ–मैं जीवों को इन बारह मार्गों की राह पर चलाऊँ और उससे जीवों को उनके द्वारा फंसा दूँ। हे भाई! उसने यह बरदान निर्गुण ब्रह्म से माँगा और उसने काल जाल की व्यवस्था चलाई। इसी बारह मार्गों में सभी भूल गए और संसार उन जालों को सह रहा है–जो यम के शूल है॥ निर्गुण ब्रह्म द्वारा उत्पन्न काल तत्त्व के अनेक वेष बनाकर उसने संसार के चारों युगों को बाँधने की टेक बाँध ली। संसार को विनष्ट करने के लिए काल ने भयंकर वेष रचना की और बिना संतों के यह उनसे छूट नहीं सकता।

संसार में काल के अनेक वेष बने और उन वेषों ने भी अपनी अपनी टेक बाँध ली। इसीलिए तुलसीदास जी ने कोई धर्मपंथ नहीं चलाया है क्योंकि सम्पूर्ण वेष रचना तो कालाधीन हो गई॥ जिस-जिस ने कहा जीवन मुक्त है:उन उन सभी वक्ताओं ने उन पर फाँसी लगा दी। हे भाई! बिना ज्ञान दृष्ठि (आँख) के यह सूझता नहीं और बिना संतों के उन्हें कौन-दिखा सकता है। जो व्यक्ति संतों को पहचान लेता है तो उसका उद्धार सम्भव है, नहीं तो वह भवसागर की धारा में डूब जाता है। जो कोई इन बारह मतों को पहचानता है, काल स्वयं उसके अधीन रहता है, उस व्यक्ति पर काल अपना जाल नहीं डाल सकता और यमराज स्वयं दीन बनकर उसकी सेवा में लग जाते हैं। सन्तों के मिलने पर वह सत्मार्ग प्राप्त कर लेता है और ऐसे जीव अन्त में सत्तलोक में आते हैं। नाना प्रकार के जो वेश धर्म के अन्तर्गत बताये गये हैं, ये सभी काल के वशीभूत हो उठते हैं–अत: कोई इनकी बात न माने। जो कोई व्यक्ति काल के वेष को पहचानता है–वही ज्ञान से बुद्धि से सन्तों के रहस्यों को जानता है। निरंजन के दस अवतार हैं–ब्रह्मा एवं विष्णु तो काल के द्वारा उत्पन्न किए गए हैं। वेद और धर्मशास्त्र सभी अपने इस प्रकार के फंदे फैलाए हुए हैं–ये सभी संसार काल के रूप हैं और काल के जाल फैलाए हुए हैं। जब कोई प्राणी इन्हें पहचान लेता है, तब वह बारह मतों की राह समझ जाता है। इन बारह से फिर अनेक मत बनते हैं–उनका कहाँ तक वर्णन करूँ–कोई सीमा नहीं है।

॥ फूलदास दोहा॥

फूलदास बिनती करै, स्वामी कहौं बुझाइ।
ये बिधि मो को लखि परी, पुनि कबीर कहि गाइ॥

अर्थ–फूलदास विनय करते हुए कहते हैं कि हे स्वामी तुलसी साहब! इन्हें समझाकर बताएँ ताकि इस प्रकार मुझे ये दिखाई पड़ जाएँ और फिर बताएँ। इसी प्रकार से इसे कैसे कबीर ने गाकर कहा है।

॥ सोरठा॥

अनुराग सागर माहिं, कही कबीर धर्मदास सों।
हम पुनि देखा ताहि, स्वामी यह बिधि सत्त है॥

अर्थ–अनुराग सागर कृति में कबीरदास जी ने इसे गाकर धर्मदास को समझाया है। हमने भी उसे देखा है, इसलिए, हे स्वामी!, आपकी बातें सच हैं॥

॥ प्रश्न, तुलसी साहिब ॥ सोरठा ॥

तुलसी पूछै बात, फूलदास कहिये बिधी।
कस कबीर बिख्यात, काल मते बारा कहे॥

अर्थ–तुलसी साहब फूलदास से बात पूछ रहे हैं कि हे फूलदास! इसे स्पष्ट करें कि काल के इन बारह मतों का वर्णन करके कबीरदास किस प्रकार प्रसिद्ध हुए॥

॥ चौपाई ॥

फूलदास यह भाखौ साखी। बारा मते काल कस भाखी॥
कस कबीर ग्रंथन में गावा। सो बारा की बिधी बतावा॥
तुम ग्रंथन में देखा आँखी। सो सब भाखि कहौ बिधि ताकी॥
पहिले तुम भिनि भिनि बतलाई। फिरि तुमको हम बरनि सुनाई॥
बारा भेद नाम गुन कहिये। भिन्न-भिन्न पुनि बरनि सुनैये॥
कस कबीर ने भाखि बताई। सो बिधि तुम हम को समझाई॥

अर्थ–हे फूलदास! इस साखी का वर्णन करो–काल के क्यों बारह मतों का वर्णन किया गया है। उसे कबीर साहित्य में कैसे वर्णित किया गया है और उन बारह की विधियों का वर्णन करें। तुमने उन्हें ग्रन्थों में पढ़ा है और आँखों से भी देखा है, इसलिए उनके सारे भेदों का वर्णन बताओ। पहले तुमने उनके विषय में भिन्न-भिन्न करके बतलाया था, उसके बाद हमने वर्णन करके सुनाया। उनके नामों का गुणवेद के अनुसार बारह रूपों में वर्णन करें और फिर एक-एक का उनका वर्णन करें। कबीर साहब ने किस तरह से उनके विषय में कह कर बताया है, वह विधि तुम हमें समझाकर सुनाओ।।

॥ उत्तर फूलदास ॥ चौपाई ॥

फूलदास अस भाखा लेखा। कही कबीर सो कहूँ बिबेका॥
तुमने बचन जो भाखि सुनावा। सो कबीर मुख अपने गावा॥
तुम भाखा सत नाम से पावा। बारा मते काल लै आवा॥
या में वा में अंतर नाहीं। ता की बिधि मैं बरनि सुनाई॥
ये कबीर मुख अपने कीन्हा। काल निरंजन को मत दीन्हा।।
उन अपना खुद ज्ञानै भाखा। तुमने भक्ति भाव कर राखा॥
दोनों बिधी एक सम जानी। या में कछू भेद नहि मानी॥
बारा मते काल को दीन्हा। मन अपने परमान जो कीन्हा।।
ये तो स्वामी सत्त जनाई। कहि कबीर ग्रंथन में गाई॥
भाखा सोई सुनाऊँ लेखा। जोइ कबीर ग्रंथन में देखा॥
ये कबीर मुख अपने भाखी। बारा मते काल बिधि ताकी॥
धरमराइ नीरंजन होई। बारा मते दीन्ह हम सोई॥
अस कबीर ग्रंथन में गाई। देखी जस बिधि ताहि सुनाई॥
प्रथम दूत मृतअंध कहावा। दास नरायन नाम धरावा॥

काल अंस ये नाम नरायन। जीव फाँस फंदा जिन लायन॥
तिरमिर दूजा नाम बखाना। जाति अहेरी कुफर कहाना॥
दूत तीसरा भाखि सुनाऊँ। अंध अचेत ताहि कर नाऊँ॥
सुरति गुपाल नाम तेहि पावा। कह कबीर ऐसी बिधि गावा॥
चौथा दूत भंगमन होई। झंगा मूल पंथ कहै सोई॥
पँचवाँ दूत ज्ञानभंग नामा। परचा करन मंत्र को थामा॥

अर्थ–फूलदास ने इस प्रकार उसका विवरण दिया और कहा कि कबीर साहब ने जिस प्रकार से उनका विवरण दिया है, मैं कह रहा हूँ। आपने जो बातें कहकर सुनाई हैं, कबीरदास जी ने उन्हें गाकर कहा है। आपने कहा है कि परम तत्त्व को 'सत्तनाम' से प्राप्त किया है और 'काल' ने बारह मतों को स्थापित किया है। इसमें और कबीर मत में कोई अन्तर नहीं है उसकी विधि को मै वर्णन करके सुना रहा हूँ। यह कबीर साहब ने स्वयं मुख से कहा है और उन्होंने भी काल निरंजन का मत दिया है। उन्होंने स्वयं आत्म ज्ञान का वर्णन किया है और आपने उससे अपना भक्तिभाव रखकर बताया है। दोनों विधियाँ एक ही प्रकार की हैं और इनमें और कबीर मत में कोई भेद नहीं है। काल के, आपने, बारह मतों को बताया है–और स्वयं अपने मन द्वारा उनका प्रमाण दिया है। हे स्वामी! यह तो सत्य प्रतीत हो रहा है क्योंकि कबीर ने अपने ग्रन्थों में ऐसा ही कहकर गाया है। आपने जो कहा है, मैं उसी का वर्णन करूँगा क्योंकि उसी को मैंने कबीर के भी ग्रन्थों में देखा है। इनका वर्णन कबीरदास जी ने अपने मुख से किया है कि काल के बारहों मत इसी प्रकार हैं। धर्मराज ही निरंजन हैं और उन्होंने ही बारह मतों का वर्णन किया है। ऐसा कबीर ने अपने ग्रन्थों में गाया है–और अनुभव से उन्होंने जैसा देखा था, उसी प्रकार सुनाया है।

इन बारहों में, प्रथम दूत का नाम 'मृत अंध' है और उसका नाम नारायण दास रखा गया है। ये नारायण नाम के काल में अंश हैं, जिन्होंने जीवों के गले में मृत्यु के पाश का फंदा (बन्धन) बाँध रखा है।

दूसरे का नाम 'तिरमिर' है। यह जाति का शिकारी है, और इन्हें कुफ्र भी कहा जाता है। तीसरे दूत के विषय में मैं कहकर सुनाता हूँ–उसका नाम 'अंध अचेत' है। कबीरदास ने इस प्रकार भी कहा है कि उसे 'सुरति गोपाल' नाम भी दिया गया है। चौथा दूत 'भंगमन' है–और झंगा मूल पंथ' इसी ने बताया है। पाँचवें दूत का 'ज्ञानभंग' नाम है--और उसने परिचय करने वाले मंत्र को स्वीकार किया है।

मकरंद षष्टम दूत कहावा। नाम कमाली तासु धरावा॥
सप्तम दूत आहि चितभंगा। नामा रूप करै मन रंगा॥
अष्टम दूत का नाम बताऊँ। अकलभंग तासु कर नाऊँ॥
नवाँ दूत कर नाम बताऊँ। दूत बिसंभर बरनि सुनाऊँ॥
अब मैं दसवाँ दूत बताई। नकटा दूत ताहि कर नाँई॥
एकादस दूत नाम बतलाऊँ। दुर्गदानी तेहि बरनि सुनाऊँ॥
द्वादश दूत नाम बतलाऊँ। हंस मुनी तेहि बरनि सुनाऊँ॥
ऐसे बारा दूत बखाना। अनुराग सागर करत बखाना।।
साहिब कबीर ऐसी विधि गावा। सो मैं तुमको भाखि सुनावा॥

अर्थ–छठाँ दूत 'मकरंद' है, उसका नाम कमाली भी रखा गया है। सातवें दूत 'चितभंग' है, वह मन की इच्छा के अनुसार नाना रूपों को धारण करता है। मैं अष्टम दूत का नाम बता रहा हूँ। आपका नाम

'अकल भंग' है। नवें दूत का भी नाम बता रहा हूँ, उसका वर्णन 'विसंभट' के नाम से कर रहा हूँ। अब मैं दसवें दूत के विषय में बता रहा हूँ–उसका नाम 'नकटा' है। ग्यारहवें दूत का भी नाम बता रहा हूँ–'दुर्गदानी' नाम से उसका मैं वर्णन करके बता रहा हूँ। बारहवें दूत का नाम बता रहा हूँ–उसका नाम 'हंसमुनि' है–मैं उसका नाम वर्णित करके सुना रहा हूँ।

इस प्रकार से बारह दूत कहे गए हैं, 'अनुराग सागर' नामक ग्रन्थ इस प्रकार का वर्णन करता है। कबीर साहब ने इनका इसी प्रकार से वर्णन किया है–जिसे मैं कहकर सुना रहा हूँ।

॥ प्रश्न फूलदास ॥ चौपाई ॥

तुलसी स्वामी बिधी सुनाई। कस कस मता काल बिधि पाई॥
याकी बिधि मोहि बरनि सुनैये। सब बिधि नाम दूत कर कहिये॥

अर्थ–हे तुलसी साहब! आपने इनके रहस्य को बताया है। काल ने किस-किस प्रकार का रहस्य प्राप्त किया है। इनकी विधि मुझे वर्णित करके, सुनायें और इन दूतों के नामों को भी सभी प्रकार से कहें।

॥ उत्तर तुलसी साहिब चौपाई ॥

फूलदास सुनियौ चित लाई। अब या कौ हम बरनि सुनाई॥
निरगुन काल निरंजन जानौ। सोई याहि मनै पहिचानौ॥
सत्त सब्द तन माँहि रहाई। वा को छाँड़ि खानि को जाई॥
बारा मत नहिं कहिया भाई। वाही राह की मती बुझाई॥
मन ये राह की मति जो राखा। या को बारा की मति भाखा॥
मन ये द्वैत भाव जग राखा। दूत नाम येहि बिधि भाखा॥
एक नाम बिधि भूला भाई। ता से मन को दूत बताई॥
ये मन की बिधि कहूँ बखाना। फूलदास सुनियौ दै काना॥
बारा मत मन ही के जाना। द्वैत न छाँड़ि एक नहिं माना॥
यों बारा मत मन के भइया। बारा मत मन नाम कहइया॥
द्वैत राह मन छाँड़ न भाई। तहँ लगि यह मन काल कहाई॥
द्वैत काल मन यह बिधि गाया। मन मत द्वैत जगत सब आया॥
मन मत द्वैत वो राह न पाया। ये कबीर न यों बिधि गाया॥
या मन की बिधि बिधि समझाइ। बारा दूत मन काल कहाई॥

अर्थ–हे फूलदास! आप ध्यान लगाकर सुनें, अब मैं इनका वर्णन करके सुनाता हूँ। निर्गुण ब्रह्म को ही 'काल-निरंजन' समझें, और इनको मन-ही-मन पहचानें। 'सत्' शब्द इसी शरीर में ही रहता है–उसका त्याग करने पर व्यक्ति नरक में चला जाता है। हे भाई! इसे बारह मत नहीं कहा जाता–उस मार्ग के ज्ञानी ही उसे बताते हैं। इस मन में अध्यात्म मार्ग का जो ज्ञान रखा है, उसी के विषय में ये बारह मत हैं।

यह संसार मन में द्वैत भाव रखता है–दूतों का नाम इसी द्वैतभाव के कारण रखा गया है। हे फूलदास! तन्मय होकर आप सुनें, मन की इन विधियों का वर्णन मैं कर रहा हूँ। मन के ही बारह (मत) रूप हैं–किसी भी उपदेश को व्यक्ति एक भी नहीं मानता और द्वैतभाव को छोड़ता नहीं। इस प्रकार, मन

बारह मत हैं और इस प्रकार, मन के ही बारह नाम कहे गए हैं। यह मन जब तक द्वैत मार्ग का त्याग नहीं करता—वहाँ तक वह मन ही 'काल' कहा जाता है।

मन के द्वैत को काल रूप स्वीकार करके इस प्रकार से कहा गया है, मन के द्वैत मत से ही सारा संसार जाना गया। मन के इस द्वैत मत से उसने (किसी ने भी नहीं) अध्यात्म मार्ग को प्राप्त नहीं किया, इस प्रकार कबीरदास जी ने बताया है। इस द्वैत मन के रहस्य को इस प्रकार समझाया गया है और इस मन रूपी काल के बारह दूत कहे गए।

ये मत बिधि सब कही बखाना। बारा नाम मनहिं के जाना॥
नरायनदास नर मन है भाई। येहि बिधि दास कबीर बताई॥
मन मृत अंध दूत बतलाई। मन नित मृत करै जग जाई॥
ये मन तिमर जगत को लावा। या ते तिमर नाम मन पावा॥
मन जगअंध अचेत करावा। अंध अचेत दूत ठहरावा॥
सुरति गुपाल नाम तेहि कहिया। मूरति मनगोपाल न करिया॥
मन मत भंग करै जग केरी। मन मत भंग नाम अस फेरी॥
मन मत ज्ञान करै चित भंगा। मन मत दूत नाम रस रंगा॥
मन पतंग माया मन राखा। मन मकरंद दूत यों भाखा॥
मन अरु चित भंग करै अनेका। चितभंग दूत नाम यों लेखा॥
मन अक्कल को भंग लगावा। अकलभंग नाम अस गावा॥
बिषै अमर मन करिकै राखै। सुरति नाम को नेक न ताकै॥
ताकर नाम बिसंभर दूता। बिष रस जीव किया मजबूता॥
मन कहँ नकटा दूत कहाई। ज्ञान सुनै फिर बिष रस खाई॥
या को लज्जा नेक न आवै। नकटा होइ पीछे पुनि धावै॥

अर्थ—इनके विषय में सारे मतों तथा रहस्यों को वर्णित करके कहता हूँ—इस मन के ही बारह नाम है, इस प्रकार समझो।

नर मन का नाम नारायण दास है, इस प्रकार कबीर दास ने बताया है। मन का एक दूत 'मृत अंध' कहा गया है, संसार में आकर मन निरन्तर मृत रखता है। तीसरा मन संसार में अंधकार लाता है, अतः मन का नाम अंधकार बतलाया गया है। यही मन संसार को अंधा और अचेत बना देता है। अतः इसे ही अंध अचेत काल दूत कहा गया है। उसी का नाम सुरति गोपाल कहा जाता है, क्योंकि वह मन में स्थित ब्रह्म की मूर्ति नहीं बनाता। जो संसार के मन को भंग करता (तोड़ता रहता) है—इसीलिए उसका नाम बाद में मतिभंग रखा गया। मन अपने ज्ञान से चित्त को बार-बार भंग करता है, इसीलिए मन के उस नाम को 'चितभंग' रखा गया है। मन पतंग, निरन्तर माया में मन रखे रहता है—इसीलिए इस मन के दूत का नाम मत मकरंद है। मन तथा चित्त को जो अनेक रूपों में भंग करता है, उसका नाम इसीलिए चित्त भंग कहा गया है। मन तथा बुद्धि को जो तोड़ता है, उसका नाम 'अक्लभंग' कहा गया है। अगर विषय वासनाओं को जिसने मन में स्थितर करके रखा है औ सुरति ध्यान आदि के विषय में जो कुछ भी नहीं जानता—उसका नाम विसम्भर दूत है और उसने वासना रस (विष रस) द्वारा मन को सुदृढ़ कर रखा है मन का नकटा दूत वह कहलाता है—जो ज्ञान सुनने के बाद भी विषय-रस में लीन रहता है। इसे लेशमात्र भी लज्जा नहीं आती और यह नकटा होकर भी वासनाओं के पीछे दौड़ता रहता है।

नकटा नाम दूत येहि जानौ। या की साखि न कोऊ मानौ॥
मन दुग गुन के दान चुकावै। गुन तीनों से जग बौरावै॥
दुर्ग दानी यहि मन को जाना। अस दुर्ग दानी नाम कहाना॥
या की बात सत्त कर मानी। येहि बिधि मन को दूत बखानी॥
यह मन निर्मल सुरति कराई। मन होइ हंस सुरति घर जाई॥
हंस मुनी होइ दूत उड़ाई। सुरति सब्द घर अपने जाई।
सत्य नाम पद पहुँचै भाई। चौथा पद रस पियै अघाई॥
मुनि होइ हंस ताहि कर नामा। बारा मत मन के पहिचाना॥
यह कबीर ने भाखा पेखा। औरौ संत यही बिधि लेखा॥
ये सब मन के मते बताये। मन से पंथ भेष जग आये॥
मन बाहर कोइ पंथ न होई। ये सब मते काल कर जोई॥
मन से भिन्न सुरति को पावै। सुरति जाइ पद नाम समावै॥
सो बारा से न्यारा होई। सो जिव अमर पंथ को जोई॥
मन से राह सुरति नहिं जाने। सो सब पंथ काल मत साने॥
यह महंत मन अंधा धुन्धा। येहि माँ काल रखावा फंदा॥
दास कबीर येहि पुनि भाखा। हमहूँ दीन्ह येही बिधि साखा॥
वह कबीर यह तुलसी लेखा। मन मानै तौ करौ बिबेका॥
तुलसी संत चरन की आसा। संत सरन में सुरति निवासा॥

अर्थ–इसी को नकटा दूत समझो तथा इसका विश्वास कभी न करो। मन दुर्ग है, और रज, सत्त्व एवं तम गुण का दान चुकता करता रहता है। इन्ही तीनों गुणों में संसार पागल बना रहता है। इसी मन को दानदाता दुर्ग समझो–इसका दानी दुर्ग ऐसा नाम कहा गया है। इसकी बात हमेशा सत्य समझो। इस प्रकार मन को ही दूत कहा गया है। यही मन निर्मल होकर सुरति ध्यान में लगता है–और यह मन हंस बनकर सुरति के घर के लिए गमन करता है–मन हंस बनकर इन बारह दूतों को पास से भगा देता है–और वह अपने घर सुरति के लिए प्रस्थान कर जाता है। 'सत् नाम' के स्थान पर पहुँचकर यही मन चतुर्थ अन्नाला के पद में प्रवेश कर आनन्द रस का पान करता है। जो मुनि हैं, उन्हीं का नाम हंस है, इस प्रकार ये बारह मत मन में ही पहचाने जाते है। कबीर दास जी ने इसी को देखा है और कहा है तथा अन्य सन्तों ने भी इसे इसी प्रकार देखा है। ये सभी बारह मन के भेद बताये गए है–तथा मन के द्वारा ही ये अनेक पंथ एवं वेष इस संसार में आए हैं। कोई भी पंथ मन के बाहर नहीं है–और यही सब काल के भी मत हैं।

मन से अलग होकर कौन सुरति समाधि प्राप्त कर सकता है। यह महन्त का अंधा धुन्ध है–और इसी में काल ने अपना पाश रख छोड़ा है। कबीरदास जी ने भी यही कहा है–हमने भी इसी प्रकार की ही साक्षी दी है। वह कबीर का मत है, यह तुलसी का मत और तुम्हारा मन स्वीकार करे तो इसे स्वीकार करो। तुलसी को तो निरन्तर सन्त चरणों की आशा रहती है और सन्तों की ही शरण में सुरति की निवास स्थली है॥

॥ दोहा ॥

फूलदास मत भाखिया, मते काल के नास।
बारा मत मन के बसे, जग्त भेष के पास॥

अर्थ–हे फूलदास! मैंने काल मत का वर्णन किया है और इस मत के जानने से काल का बिनाश हो उठता है। ये बारहों मत मन में निवास करते हैं और इसी से सम्बद्ध वेश रचना संसार के पास है (संसार में है)।

॥ छन्द ॥

बारा मत गाई मनहिं लखाई। बूझ बुझाई राह कही॥ १॥
तुम अंतै गावौ भेद न पावौ। मनहिं काल घट घाट मई॥ २॥
या को नहिं बूझा अंत न सूझा। ता से तुम को भूल रही॥ ३॥
जिन मन को जाना सुर्त पिछाना। नरत न तोल असमान गही॥ ४॥
संतन निज जानी करी बखानी। महुँ पुनि उन सम गाइ कही॥ ५॥
मन की बिधि जानी सुरति पिछानी। बिन सूरति यह राह नहीं॥ ६॥

अर्थ–मैंने इस बारह मतों को कहकर बताया, मन का बोध करा दिया और समझी-बूझी राह (मार्ग) कह दी। तुम इसको अन्त तक गाते रहोगे किन्तु इसका रहस्य नहीं समझोगे क्योंकि मन सदैव काल रूपी घट के रूप में उसके घाट पर (किनारे पर) स्थित रहता है। तुमने इसको समझा नहीं, और यह अन्त तक सुनाई नहीं पड़ा–इसीलिए तुम्हें भूल बनी रही। जिन्होंने मन को जान लिया है, उन्होंने सुरति भी पहचान ली है–अन्यथा उसकी समझ के लिए भटकते रहो। सन्तों ने इसे स्वयं समझा है, उन्होंने इसका वर्णन कर रखा है और पुनः उन्होंने इन सबको गाकर कहा है। उन्होंने मन रहस्य समझा है, सुरति को पहचाना है–क्योंकि बिना सुरति को पहचाने यह राह मिलने वाली नहीं है।

॥ दोहा ॥

तुलसी कहै बुझाइ, फूलदास सूरित लखौ।
ये चौका येहि पान, सुरति जाति पद रस चखौ॥

अर्थ–तुलसी साहब समझा कर कहते हैं कि हे फूलदास सुरति समाधि को देखो, उसी में यह चौका है, यह पान भी है–सुरति में प्रवेश करके उस आत्मतत्त्व का आनन्द चखो।

॥ चौपाई ॥

सुरति चीन्ह रस जानौं भाई। तब वा घर का मारग पाई॥
कमठ ध्यान कछुवा मत ताकौ। ऐसी सुरति नाम से राखौ॥
ज्यों चकोर चंदा को ताकै। येहि बिधि सुरति नाम रस चाखै॥
सूरज-मुख पषान इक होई। रबि सन्मुख तेहि पावक जोई॥
पथरी सूरज सन्मुख लावै। तत खन तामें अगिनि समावै॥
चन्द्रमुखी इक पथरी भाई। सन्मुख चंदा जाय दिखाई॥
तत खन नीर चुवै तेहि माई। देखो पथरी हाल मँगाई॥
ऐसे दृढ़ करि सुरति लगावै। चूवै अभी नाम रस पावै॥

चौका पान झूठ है भाई। सूरति नाम पान से पाई॥
भाखा संत सरन को चीन्हा। सुरति पान लखि होइ यकीना॥
नील सिषर खिरकी के पारा। वहाँ से ताकै अगम दुवारा॥
अलख पलक से न्यारा होई। खलक राह सब छूटै सोई॥
निस दिन सुरति गगन में राखै। झँझरी सुरति नजर से ताकै॥
येहि बिधि निस दिन सुरति लगाई। मन में इष्ट भरम नहिं लाई॥

अर्थ–सुरति को पहचान कर उसके आनन्द को समझो–तब उस पट का तुम मार्ग प्राप्त करोगे। कछुवा जैसा आत्मस्थ होकर ध्यान लगाओ किन्तु उस कमठ ध्यान पर दृष्टि मत रखो–इस सुरति नाम में अपने मन को लगाओ। जैसे चकोर चकुआ को एमकटक ताकता रहता है–उसी प्रकार सुरति नामक इस तत्त्व का रस चखो।

एक सूर्यमुखी पाषाण है–सूर्य के सामने वह उसमें अग्नि प्रकट होती है। उस पत्थर को जब सूरज के सामने लाते हो उस क्षण उसमें अग्नि समाविष्ट हो उठती है। एक पत्थर चन्द्रमुखी नाम का है। जब चन्द्रमा उसके सामने दिखाई पड़ जाए तो उस क्षण उसमें से जल स्रवित होने लगता है–ऐसे पत्थर को मँगा कर उसका हाल समझो।

ठीक इसी सूर्यमुखी एवं चन्द्रमुखी पत्थर की भाँति स्वयं को दृढ़ करके ध्यान लगाओ–अमृत नाम का रस चूने लगेगा, उस रस का तुम आनन्द लो। हे भाई! चौका पान मिथ्या है–उसमें स्थित [illegible] सुरति नाम प्राप्त करो। सन्त के चरणों को पहचान कर यह कहा गया है कि उसी से रसमयी पान को देखकर विश्वास होगा। उस खिड़की के पार नील शिरकर है उसके आगे, उस अगम्य तत्त्व का द्वार है–वह अलक्ष्य, इन पलकों से विमुक्त है और वहाँ पहुँचने पर स्वर्ग के सारे मार्ग पृथक हो जाते है। मन को रात-दिन सुरति के आकाश में रखो–अपने मन की दृष्टि से सुरति की खिडकी देखते रहो। इस प्रकार, रात-दिन मन को सुरति में लगाए रही फिर आपक मन में अपने इष्ट देवता के लिए कोई भ्रम नहीं रहेगा।

ऐसे सुरति द्वार पर खेला। स्याम सपेदी न्यारी सैला॥
स्याम लोक पुनि सेतहि दीपा। संख चक्रमध पुनि एक सीपा॥
वा के परे बंकगढ़ न्यारा। सुख मुनि सैल मान सर पारा॥
वा के परे त्रिबेनी घाटी। ता से निकरि अगमपुर बाटी॥
करि असनान अगम को धावै। तब साँचे सतगुरु को पावै॥
चारि कँवल द्वै भीतर माई। ता में पैठि द्वादस में जाई॥
ता के परे पुरुष इक देखा। रूप रेख बिन अगम अलेखा॥
अठमेवा पुरुष को जाना। अठवाँ लोक तेहि संत बखाना॥
कोउ कोउ आठ अटारी भाखो। कोउ कोउ आठ महल कहै जाको॥
संत बिना कोउ भेद न पावै। ताते तुलसी यहि बिधि गावै॥
यह बिधि भेष पंथ में नाहीं। संत मिलै तो पावै राही॥
सूरति चढ़ै गगन को धावै। तौ अठमेवा पुरुष को पावै॥
पाँच बासना मन से जावै। तब मन राह पुरुष की पावै॥

नरियर ऐनक मुकर लगाई। मन मोड़ै पुनि बास उड़ाई॥
तीनि गुनन का तिनुका तोड़ै। इंद्री गौ घृत रित को मोड़ै॥
कदली छेत बास चढ़ पारा। सेय के परे निरखि वहि द्वारा॥
सो पारी जाइ पवन सो पावै। सेत सुपारी पुनि दरसावै॥
यहि बिधि चौका जो कोइ जानै। सोई कबीर पंथ हम मानै॥
और अनेक बिधि कस कस कहिये। स्याना होइ समझ लखि लैये॥
थोड़े में लखि लेइ सयाना। बहुत बहुत क्या करूँ बखाना॥
सूच्छम बूझ भेद हम भाखा। थोड़े माहिं भेद कह्यो ता का॥
या से भेद संत कर न्यारा। कोइ बूझै संतन का प्यारा॥
जिन पर संत दयाली कीन्हा। अगम बूझ कोइ बिरले लीन्हा॥
कहा कहा कहूँ अगम की बाता। तुलसी बूझ संत सँग साथा॥
ता से मौन मौन होइ रहिये। जस जग देखि ताहि बिधि कहिये॥

अर्थ–यह आत्मा ऐसी सुरति द्वार पर क्रीड़ा करती है–जहाँ नील एवं श्वेत वर्ण के शिखर हैं। एक श्याम लोक है, उसमें श्वेत द्वीप है, वहाँ मध्य में शंख तथा चक्र है–और उसी में एक सीपी है। उसके आगे विलक्षण बंकगढ़ है, उस शिखर के पार एक सरोवर है। उसके आगे त्रिवेणी का घाट है; उससे निकलने के बाद अगमपुर का मार्ग है। यहाँ त्रिवेणी में स्नान करके अगमपुर के लिए प्रस्थान करें, तब सच्चे सत्गुरु को कोई प्राप्त करता है। यहाँ चार कमल के भीतर दो और कमल हैं। उसमें प्रवेश करके द्वादश कमल में प्रवेश करें–उसके परे एक पुरुष दिखाई पड़ता है,–उसका न कोई रूप था, न कोई लक्षण (रेख) वह इन दोनों से मुक्त अगम्य एवं अलेख्य था। यही पुरुष ही 'अठमेवा' है। संतों ने ही इसे आठवाँ लोक बताया है। किसी-किसी ने इसे आठ अट्टालिका कहा है–किसी अन्य के अनुसार ये आठ महल हैं। संतों के बिना कोई इसका रहस्य नहीं जानता इसलिए तुलसीदास इसे इस प्रकार, कहते हैं।

इस प्रकार, इस मार्ग के आगे भेद नहीं हैं और (भाग्य से) कोई सन्त मिल जाए तो वही राहगीर साथी है। सुरति लोक में चढ़कर जो शून्याकाश में दौड़ता है–वही पुरुष अठमेवा को प्राप्त करता है। मन से पाँचों इन्द्रियों की वासनाएँ जब समाप्त हो उठती है, तभी वह उस पुरुषका मार्ग प्राप्त कर सकता है। नारियल रूपी ऐनक के शीशे लगाकर, मन को तोड़ ले और उसकी सुगन्धि की ओर से उड़ा दे–त्रिगुणात्मक वृत्ति के तिनके को तोड़ दे–सत्य रूपी इन्द्रिय वासनाओं रूपी गौघृत को इकट्ठा कर ले कदली क्षेत्र मे बास पर चढ़ने में समर्थ वह उसके आगे उस अगम्य के द्वार को देखे–तब वहाँ जाकर उस शून्य लोकके पवन से साक्षात्कार करेगा और फिर उसे श्वेत सुपारी दिखाई पड़ेगी। इस प्रकार से निर्मित चौका की विधि जो कोई जानेगा–उसी को हम कबीर पंथ का सन्त स्वीकार करेंगे। इस विधि को अनेक रूपों में मैं क्या समझाऊँ–जो चतुर होगा, वह उसे समझा देख-समझ कर पा जाएगा। चतुर व्यक्ति तो थोड़े में ही समझ लेते हैं। मैंने तो चौका का सूक्ष्म तत्त्व विवेचित किया है तथा थोड़े में ही उसका रहस्य बताया है। जिन व्यक्तियों पर सन्तों की दया रहती है, वे ही इस अगम्य को पहचानते हैं, क्योंकि इस तत्त्व को कोई बिरला ही पहचानता है। मैं इस अगम्य की बात का वर्णन कहाँ-कहाँ तक करूँ। तुलसी ने इसे संतों के साथ रहकर समझा था। इसलिए इस संदर्भ में मौन ही होकर रहा जाए तो ठीक है क्योंकि संसार को जैसी स्थिति देखो, उसी प्रकार, उसे कहो।

भेद राम रामायन के रचने का

॥ चौपाई ॥

भेष अबूझ जगत नहिं जानै। कस कस कहूँ कोऊ नहिं मानै॥
जग अपनी बिधि में सब माना। ता से उन से करी बखाना॥
राम रमायन माहीं गाई। सात कांड कहि अस बिधि भाई॥
रावन राम किया सम्बादा। औरौ कही बनाइ जियादा॥
जग सब अंध फंद गति बूड़ा। राम राम गति जानि अगूड़ा॥
उन अँधरन मिलि कै हम गायौ। यहि बिधि राम चरित्र सुनायौ॥
सब जग कहै राम रस भाखो। राम बिना कछु इष्ट न राखी॥
तुलसी तौ भये राम उपासी। येहि बिधि सकल जगत करै हाँसी॥
सब अंधन में महुँ पुनि चोटा। कस कस कहूँ जगत सब खोटा॥

अर्थ—यह अबूझ संसार भेष रचना के मर्म को नहीं समझता। कैसे-कैसे मैं समझाऊँ, उसे कोई नहीं स्वीकार करता। यह संसार तो अपनी तरह से सब समझता है, इसलिए उनसे मैं इसका वर्णन करता हूँ। हे भाई, 'राम' रामायण में गाए गए हैं और इस प्रकार से उसमें सात कांड कहे गए हैं। रावण और राम का संवाद कराया गया है—और उसमें बात बढ़ाकर और कुछ भी कहा गया है। सारा संसार अंधा हो गया है और माया के फंदे की गति में डूब गया है। राम का ज्ञान राम ही कर सकते हैं, अन्य के लिए वह रहस्यमयी है। उन अंधों के बीच (जो रामचरित्र का रहस्य नहीं जानते) मिलकर मैंने राम का गान किया और उनको इस प्रकार रामचरित्र सुनाया। सारे संसार ने कहा, तब मैंने 'राम रस' का वर्णन किया और राम के बिना मैंने अपने लिए कोई अन्य इष्ट देवता नहीं चुना। तब मैं तुलसीदास उस समय (पूर्व जन्म में) राम का उपासक बना—और इस रूप में सारा संसार मेरी हँसी उड़ा रहा है। सारे अंधों के बीच मैं ही चोर बना हुआ था—कैसे-कैसे बताऊँ कि यह सारा संसार खोटा है।

राम काल जग खाइ बढ़ाया। मैं दयाल पद औरै गाया॥
राम काल जग कारन भाखा। सो सूझा नहिं इनकी आँखा॥
राम जगत हम येहि बिधि गावा। नहिं देखा जग मोर निभावा॥
राम राम कछु इष्ट न मानी। जग अँधरे को कहा बखानी॥
रामचरित्र राम बिधि राखी। दसरत राम अजुध्या भाखी॥
ये नहिं अगम राह कर पंथा। अगुन सगुन जहँ नहिं तहँ संता॥
निरगुन सरगुन इष्ट न जाना। चौथा पद सत नाम बखाना॥
अगुन सगुन दोउ काल की फाँसी। जग में कहूँ जगत करै हाँसी॥
वो साहिब पद इन से न्यारा। तीन लोक निरगुन के पारा॥
निरगुन सरगुन दोउ न जाई। तेहि घर संत करै पासाही॥
तुलसी इष्ट संत को जाना। निरगुन सरगुन दोउ न माना॥
जो जो संत अगम गति गाई। निरगुन सरगुन नहिं ठहराई॥
जो कोइ बूझै तुम कस गावा। राम राम कहि ग्रंथ बनावा॥

हम कछु और भेद दरसावा। जब अबूझ अँधरा समझावा॥
जो ग्रंथन में गाइ सुनाई। जियत न मिलै मुए कस पाई॥
मैं मति ठीक ठीक कर गावा। पंडित भेष जगत नहिं पावा॥
राम राम कहि सब जगमरिया। आदि अंत मध कोउ न तरिया।।
राम जो कहै परै भौ खानी। राम मरम मन आप न जानी॥
जो कोइ करै नाम की टेका। सो भौ भरमै खानि अनेका॥
तुलसी सत्त सत्त कहि भाखी। जस जस सूझ जौन जेहि आँखी॥
फूलदास बिधि सुनहु बनाई। येहि बिधि तुलसी ग्रंथन गाई॥
और कबीर दादू रैदासा। दरिया नानक अगम तमासा॥
सूरदास नाभा अरु मीरा। औरौ संत अगम मति धीरा॥
अरु अस बिधि सब साखि बनाई। सो सो सभन अगम गति गाई॥
जस जस मैं पुनि भाखि सुनावा। संत कृपा रज महुँ पुनि गावा॥

अर्थ–राम को काल ने नष्ट करके अपने को आगे बढ़ाया और इस दयालु सन्त ने कुछ और कहा। राम का वर्णन मैंने काल और संसार को देखकर किया था किन्तु उन्हें यह बात समझ में नहीं आई। राम तथा इस संसार का वर्णन मैंने इस प्रकार गाया है–किन्तु इस संसार ने मेरे द्वारा गाए गए वर्णन को नहीं समझा। राम-राम जैसा कोई इष्ट न समझो–और ऐसा मैंने इस अंधे संसार को बताकर कहा था। राम के चरित्र को राम की ही तरह बनाकर मैंने रखा है, और मैंने अयोध्या के राम और दशरथ की कथा कही है। ये राम उस निर्गुण मत के अगम्य राह के लक्ष्य नहीं हैं–जहाँ न अगुण है, न सगुण है, और न वहां सन्त जन हैं। मैं तो निर्गुण एवं सगुण दोनों इष्टों को नहीं मानता–केवल 'सतनाम' के चौथे पद का ही वर्णन करता हूँ। निर्गुण एवं सगुण दोनों काल के फंदे हैं। वह हमारा अनादि स्वामी, इन दोनों से भिन्न है और वह तीनों लोक में स्थित निर्गुण ब्रह्म से विलक्षण है। तुलसी साहब कहते हैं कि मेरे लिए संत अभीष्ट हैं–और मैं निर्गुण-सगुण दोनों को नहीं जानता। जिसने-जिसने अगम्य गति का वर्णन किया है, वे निर्गुण तथा सगुण को नहीं स्वीकार करते। जो कोई मुझसे पूछता है कि आपने यह क्या किया, मैं उनसे कहता हूँ कि केवल राम-राम कहते हुए मैंने 'रामायण ग्रंथ' बना दिया। हमने अन्य और रहस्यों को उसमें समझाया है–और उन ना समझ अंधों को समझा दिया। और जिसको मैंने अपने ग्रन्थ में कहकर सुना दिया है कि वहजीवित रहने पर भी नहीं मिलता, वह मरने पर कैसे मिलेगा॥ मैंने तो अपनी मति के अनुसार उसे ठीक-ठीक रूप में सुनाया है–किन्तु पंडितों ने भेष का रहस्य नहीं समझा। सारा-संसार राम-राम कहकर मृत्यु प्राप्त करता है–किन्तु आदि, मध्य एवं अन्त तक वह कभी भी नहीं उद्धार प्राप्त करता है। जो राम कहता है, वह भवसागर की खानि में पड़ता है और स्वयं राम भी राम का रहस्य नहीं जानते। जो कोई राम के नाम की टेक करता है, वह भवसागर की अनेक खानियों में भटकता है। तुलसी साहब कहते हैं कि मुझे जैसा-जैसा और जो आँख से सूझ पड़ा मैं सब सच-सच कहकर बतला रहा हूँ।

हे फूलदास! उस बनाई हुई विधि को सुनो जिसे तुलसीदास ने ग्रन्थों में कहा है। वही नहीं, उन्हीं के साथ-कबीरदास, दादू, रैदास, दरिया साहब तथा नानक आदि ने उस अगम्य को तत्त्व का तमाशा बताया है। सूरदास, नाभादास, मीराबाई तथा अन्य अगम्य मति के धीरवान सन्त आदि ने इस प्रकार की सखियाँ बनाई हैं और उन्होंने ब्रह्म की अगम्य गति का गान किया है। मैंने उनके चिन्तन को उसी प्रकार से कहकर सुनाया है–और सन्तों की चरण कृपा धूलि से उसे प्राप्त किया है॥

॥ सोरठा ॥

फूलदास सुनु बैन, आदि सैन अंतै कही।
जो कबीर मत ऐन, संत सार लारै लई॥ १॥
ये संतन मत सार, जो अगार अंदर लखा।
चखा सुरति पद सार, आदि अंत बिधि सब लखी॥ २॥

अर्थ–हे फूलदास, मेरी बात सुनें, मैंने उसे आदि से अन्त तक बताया है। कबीर का मत इस चिन्तन का केन्द्र है, जहाँ पर सन्त के ज्ञानतत्त्व का निचोड़ अत्यन्त आलीयता से प्राप्त किया है॥ १॥

यह निचोड़, सन्त मत का सार तत्त्व है–जिसे आत्मभूत तत्त्व के अन्तर्गत देखा है। यहीं मैंने सुरति समाधि के निचोड़ तत्त्व का आस्वादन किया है और उसके आदि तथा अन्त में तत्त्वों को सभी प्रकार से देखा है॥ १२॥

॥ दोहा ॥

तोल बोल जेहि लखि परै, तुलसी निरखि निहार।
सार पार सूरति करै, तब लख लोक अगार॥

अर्थ–जहाँ किसी महत्त्वपूर्ण तत्त्व का चर्चा दिखाई पड़े, उसे अच्छी तरह से समझकर देखो। सुरति के सार तत्त्व को जब साधक पार करताहै तो उसे अगम्य लोक का यह गृह दिखाई पड़ता है।

॥ राग बिलावल ॥

तुलसी जग तरक तोल, बोल हेर हारा॥ टेक॥
देखौ दुर्ग काल जाल, माँगै स्वर्ग बास हाल॥
लिये मोह भरम जाल, ख्याल खोजि पारा॥
बूझै नहिं साध संत, खोजै नहिं आदि अंत॥
पावै कस पिया पंथ, बूड़ै भौ धारा॥
ऐसा भौ भरम माहिं, काम क्रोध लारा॥ १॥
राम प्रिये परन ठान, मन से सुत त्रिये मान॥
माया बस परत खानि, बूझ खोज पारा॥
येहि बिधि अज्ञान बास, बूझौ मृत अंत नास।
प्रीति मुक्ति कह अकास, स्वाँस नास न्यारा॥
ऐसी बुधि हीन चीन्हि, बूझि ले गवारा॥ २॥
चाहत पद राम बास, रामहिं पुनि होत नास।
वोहू पुनि काल फाँस, आस मौत मारा॥
वा से कोउ करौ न हेत, बूझौ नर अंध अचेत।
सूरति छबि नाम लेत, चौथे पद पारा॥
याही ब्रत बान ठान, संत पंथ न्यारा॥ ३॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि इस संसार को खूब समझ विचार कर तौलो और खूब समझ-बूझकर बोलो।

काल के जाल में ग्रस्त इस भयंकर दुर्ग को देखो, और उसको देख करके भी तुम स्वर्ग के निवास का समाचार जानना चाहते हो। तुम मोह का भ्रमजाल लिए हुए उस स्वर्ग के विचार में पड़े हो। इस मायिक तत्त्व को साधु सन्त भी नहीं समझ पा रहे हैं, उस आध्यात्मिक मूल के आदि अन्त को खोजते नहीं, फिर , उस प्रियतम ब्रह्म के मार्ग को कैसे प्राप्त करेंगे, वे तो भवसागर की धारा में डूबे हैं॥ १॥

तुमहारे मन में तो पत्नी और पुत्र का मोह है, किन्तु प्रण प्रिय राम के लिए है। माया के वशीभूत तुम भवसागर की खान में पड़े हो तो उसे खोज और समझ पाने में असमर्थ होगे। इस प्रकार, अज्ञान के निवास से तुम अपने मृत्यु के अन्तिम विनाश क्षण को समझो। तुम यह कहते हो कि हमारी प्रीति शून्याकाश से है किन्तु तुम्हारा विनाश श्वास त्याग में होता है॥ हे बुद्धि से हीन तथा गँवार जन? इस तत्त्व को पहचानो॥ २॥

तुम श्रीराम के चरणों में निवास चाहते हो और इधर-राम का नाश हो रहा है, और वह भी फिर काल के फँदे में पड़े हुए हैं और तुम श्रीराम की आशा की मौत में मारे जा रहे हो। हे अंधे तथा नासमझ व्यक्ति, समझो और उससे कोई आशा न रखो। दूसरी ओर सुरति स्थान का नाम लेते ही चौथे पद पर पहुंच जा रहे हो—और वही मत पूर्णरूपेण तुम्हारा साध्य (वान-ठान) है, वही सन्तों का भी विलक्षण मार्ग है॥ ३॥

देखौ कृत कर्म काग, या से पुनि निकस भाग।
साधौ सत सुरति लाग, लखि अकास पारा॥
ऐसी लख मान सीख, नाहीं भौ खानि नीक।
ऐसी अज अमर लीक, तुलसी तन छारा॥
याही घट खोज रोज, चौज मौज मारा॥ ४॥
भाखा सत मत पसार, ता का भौ भिन अपार।
चाखा पद मूर सार, जाहिर जग सारा॥
पावै सत मत्त सार, देखै अगमन बिचार।
उतरौ भौ सिंध पार, नौका भौ वारा॥
तुलसी घर घोर सोर, निरतौ चित्त चारा॥ ५॥
तुलसी तन माहिं पैठि, छाँड़ौ नर सकल टेक।
आदि और अंत देखि, टेक एक सारा॥
कहनी मन में बिचार, तेरा कोउ ना निहार।
निरखो नैना पसार, वाहि को अधारा॥
तुलसी ये खूब अजूब, पावै मन मारा॥ ६॥

अर्थ—अपने द्वारा किए गए कर्म रूपी कौवे को देखो, उससे तुम पुनः अपने को पृथक् करके हट जाओ-सत् सुरति में लगकर उसे साधो और उस शून्याकाश को देखो। इस प्रकार की मेरी शिक्षा को देखो और समझो अन्यथा तुम्हें यह भवसागर की खानि ही अच्छी रहेगी और तुलसी साहब कहते हैं कि इसी मृत्यु की अजर-अमर लीक पर यह शरीर क्षार हो उठेगा तथा प्रतिदिन लौकिक आनन्द की खोज तथा भोग में ही यह शरीर विनष्ट हो उठेगा॥ ४॥

मैंने सत्य मत के रहस्य को खोलकर वर्णित किया है और उससे लोकमत भिन्न है। सारा संसार को ज्ञात है कि मैंने अपने इस सत्यमत से मूलतत्व के सार का आनन्द चखा है। सत्यमत के सार तत्त्व को प्राप्त कर लिया और मैंने पुनः मृत्यु लोक में न आने ये मर्म को देख लिया और भवसागर रूपी

समुद्र के उस पार उतरा और मेरा सत् तत्त्व ही नौका बना। तुलसी साहब कहते हैं कि इस भौतिक जगत के भयंकर शोर तथा उत्पाद से चित्त मुक्त होकर शान्त हो उठा॥ ५॥

तुलसी साहब कहते हैं कि मनुष्य की माया के सम्पूर्ण हठ को छोड़कर शरीर में प्रवेश करो। मेरे कथन (कहनी) का मन में विचार कर लो–देखो, भलीभांति देखो, यहां तुम्हारा कोई नहीं है और अब जो सबका आधार स्वरूप है–उसी को नेत्रों को पसार कर (फैलाकर) देखो। तुलसी साहब कहते हैं कि यह तत्त्व बड़ा विलक्षण है और इसे लौकिक संसक्ति में फँसे मन को मार कर देखो॥ ६॥

मो को सब जगत कहत, तुलसी के राम टेक।
जाना निज एक अलेख, संतन के लारा॥
जा के नहिं रूप रेख, देखा जो जाइ अदेख॥
ऐसा पद पार पेख, कोटि राम चेरा॥
तुलसी तत करि बिचार, राम खानि घेरा॥ ७॥
तुलसी सतगुरु की दृष्टि, ता से निरखा अदृष्ट।
सत्त लोक पुरुष इष्ट, बे दयाल न्यारा॥
मोरी लौ चरन लार, छिन छिन निरखत निहार।
कीन्हा पद पूर पार, काल जाल मारा।
तुलसी ये जगत भ्रष्ट, देख मैं दिदारा॥ ८॥
तुलसी ये अंड खंड, निरखा सगरा ब्रह्मंड।
मारा मन काल डंड, छाँड़ छूट न्यारा॥
धरती और चंद सूर, निरखा सगरा जहूर।
लीन्हा रन खेत सूर, संतन मत सारा॥
तुलसी दीदा निहार, भागौ बटपारा॥ ९॥

अर्थ–मुझसे तो यह सारा संसार कहता है कि हे तुलसी! तुम्हारे लिए आधार केवल राम ही हैं किन्तु सन्तों की आत्मीयता से मैंने अपने अलक्ष्य तत्त्व को समझा है। उस अलक्ष्य तत्त्व का न रूप है, न लक्षण है और जिसने देखा है, उसके लिए भी वह अलक्ष्य है–ऐसे ब्रह्म को उस पार देखो–अनेकानेक राम उसके दास हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि मेरी बातों पर विचार करो–वह राम तो भवसागर की खानि में घेरा हुआ है॥ १७॥

तुलसी साहब कहते हैं कि यह सतगुरु की दृष्टिदान है, जिससे मैंने उस दर्शनीय को देखा है। उस सत् लोक के वे ही हमारे अभीष्ट पुरुष या स्वामी हैं, वे दयालु तथा विलक्षण है उनके चरणों में मेरी संसक्तिलगी है और मैं उन्हें क्षण-क्षण निहार-निहार कर देखता रहता हूँ। मैंने उनकी भरपूर आराधना की। फलस्वरूप मैंने उस काल ज्ञान को विनष्ट कर डाला। तुलसीसाहब कहते हैं कि यह संसार भ्रष्ट है, मैं तो उन्हीं का दर्शन कर रहा हूँ॥

तुलसी साहब कहते हैं कि अंडखण्ड के रूप में मैंने सम्पूर्ण ब्रह्मांड को देखा, मन को वश में करके कालदण्ड को मारा है और यह विलक्षण संसक्ति छूट गई है। पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य और सारे संसार को देखा फिर एक पराक्रमी की भाँति संतों के समस्त मतों के साथ एक योद्धा की भांति रण क्षेत्र के रूप में लिया (सांसारिक मायाजाल से युद्ध किया) और अन्त में कहते है कि उस प्रभु के ध्यान का वास्तविक रूप देखकर समस्त ठग भाग गए।

।। सोरठा ।।

फूलदास सुन बात, जगत मूल बिधि यों कही।
राम रहे भौ खानि, जा की आसा जग महीं।।

अर्थ–हे फूलदास मेरी बातें सुनो, इस संसार के मूल तत्त्व के विषय में इस प्रकार कहा गया है। जिसकी आशा सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है, वही वही राम, भवसागर की खानि से जा पड़े।

।। चौपाई ।।

फूलदास सब बिधी बताई। जगत राम हम यहि बिधि गाई।।
हम संतन मत अगम बखाना। हम तो इष्ट संत को जाना।।
संत इष्ट लखि बार अरु पारा। उन चरनन सूझा सत सारा।।
उन सम और इष्ट नहिं भाई। राम करम सब भौ के माई।।
सत अगम घर कीन्ह पयाना। सो घर राम न सुपने जाना।।
राम करम बस भौ के माईं। संत अगम घर नित प्रति जाई।।
संत जाइ निरगुन के पारा। राम रहै निरगुन भौ वारा।।
संत जाइ निरगुन जहँ नाहीं। सरगुन की कहौ कौन चलाई।।
सरगुन निरगुन दोउ से न्यारा। वा घर संत करै दरबारा।।
निरगुन राम भौ जग में आई। संत अगम घर अपने जाई।।
राम रहा तिहुँ लोक समाई। कर्म भोग भौ खानि रहाई।।

अर्थ–फूलदास को इस प्रकार, तुलसी साहब के सम्पूर्ण रहस्य बताया कि संसार में राम को हम इस प्रकार कहते हैं। हमने सन्तों की अगम्य गति को बताया है क्योंकि हम सन्त को ही अपना इष्ट समझते हैं। अभीष्ट सन्तों को देखकर ज्ञान का (बार-बार) रहस्य समझ में आ जाता है–और उन्हीं सन्तों के चरणों में सब का सार तत्त्व सूझ पड़ा था। उन सन्तों के अतिरिक्त इस भवसागर में और कोई इष्टदेव नहीं हैं। राम के समस्त कार्य तो इस भवसागर के कार्य हैं। साधक सन्त के जिस अगम्य ज्ञान क्षेत्र में प्रवेश करता है, उस घर को तो राम ने स्वप्न में भी न समझा होगा।

कर्मवश राम इस भवसागर के स्वामी हैं–और हम लोग सन्तों के अगम्य घर में निरन्तर जाते रहते हैं। सन्तजन तो निगुण तत्त्व के उस पार जाते हैं और श्रीराम गुणविहीन भवसागर डूबते रहते हैं। सन्तजन निर्गुण तत्त्व से भी विलक्षण हैं–सगुण की बात कौन कहे? हमारा ब्रह्म सगुण एवं निर्गुण दोनों से विलक्षण है और सन्तजन निरन्तर उस कर में दरबार करते रहते हैं। राम निर्गुण से सगुण बनकर इस संसार में आए और सन्तजन इस संसार को छोड़कर अपने अज्ञेय घर में चले जाते हैं। राम तीनों लोकों में समाकर कर्म योग के भवसागर की खान में रहे।

तीन लोक के चौथे पारा। वा से परे संत घर न्यारा।।
राम काँच सम की मत जाना। सत गती हीरा परमाना।।
वो पैसे में जग ले आवै। राम काँच मन जग को भावै।।
संत अगम हीरागति न्यारी। केहि बिधि पावै जगत भिखारी।।
ये मत बिरले खोज कोउ कीन्हा। संत कृपा से हीरा चीन्हा।।
जो जेहि संत लखावै भाई। जब वह हीरा हाथै आई।।

वों हीरा पत्थर मत जानौं। हीरा नाम अगम घर मानौ॥
वो हीरा चौथे पद पारा। राम जगत जौहरी निहारा॥
राम जगत जौहरी पै नाहीं। हीरा अगम संत पै पाई॥
संत कृपा कोई दास निहारा। संत चरन लागे सोइ लारा॥
राम काँच चूरी जग माहीं। तिरिया पहिरि हाथ में जाई॥
फूटै बिनसै बहुरि बनाई। धक्क लगे फूट जिमि जाई॥
टूक टूक चूरीगर लीन्हा। घरिय कपूर आँच पुनि दीन्हा॥

अर्थ–इन तीनों लोकों के पार चौथे लोक के भी बाद सन्तों का विलक्षण गृह है। राम विषयक मत को शीशे की भाँति समझो और सत् पुरुष का ज्ञान हीरा जैसे अलभ्य प्रमाण है। उस हीरे को पैसे द्वारा लोग खरीदकर ले आते हैं, किन्तु राम रूपी शीशा ऊपर से ही संसार के लोगों के मन को अच्छा लगता है। सन्तों की अगम्य गति हीरे जैसी विलक्षण है, उसे यह भिखारी संसार कैसे प्राप्त कर सकता है।

इस मत की खोज किसी बिरले ने की है और सन्तों से ही उसने उसे हीरा के रूप में पहचाना है। जब कोई सन्त किसी व्यक्ति का मार्ग दर्शन करेगा, तभी वह हीरा हाथ आएगा, अन्यथा नहीं। जब वह हीरा हाथ में आ जाए तो समझ लें कि उसे सन्त ने लक्षित किया है–या दिखाया है। उस हीरा को पत्थर मत समझो–हीरा को ही सतनाम का अगम्य घर समझो। संसार में राम है किन्तु इतना सामान्य है कि उसका कोई जौहरी नहीं है किन्तु अमूल्य हीरा सन्त रूपी जौहरियों के पास हैं। सन्तों की कृपा से कोई उनका सेवक ही उसे पा सकता है। सन्तों की कृपा से कोई सेवक ही उसे देख सकता है, और वह अत्यन्त संसक्तिपूर्वक सन्तों के चरणों में अनुरक्त हो उठता है।

राम रूपी शीशे से संसार में चूड़ियाँ बनती है और नारियाँ उसे हाथ में पहन कर आती जाती रहती हैं। वह टूटती या विनष्ट होती है तो पुनः बनाई जा सकती है और साधारण धक्के से वह पुनः टूट जाती है।

घरिया करम माहिं पुनि डारा। चूरी मनिया बहुहि संवारा॥
ले बजार गलियन के माईं। करि खरीद ले तिरिया जाई॥
पुनि कमनीगर कहत पुकारे। नीच बुद्धि तिरिया के लारे॥
ऐसी नीच जगत मति जानी। राम काँच जेहि अगम बखानी॥
राम राम बिधि ऐसी जाना। चूरी फूट कमनीगर आना॥
तोड़ फोड़ भट्टी औटाई। ये बिधि राम कर्म भौं माहीं॥
तन भट्टी कमनीगर काला। ये जग खान राम बेहाला॥
ता को जाय जगत मन लाई। ता की कहो कौन गति गाई॥
राम आप कर्मन बस परिया। कहौ तासे जग कस कस तरिया॥

अर्थ–फिर, कारीगर उसके-टुकड़े-टुकड़े को खरीद लेता है और वह घरिया में उसे पुनः कपूर की आँच देता है। फिर वह उस घरिया को करम में डालकर चूड़ी को वह बनाने वाला मनिया बहुत संवारता है। वह फिर, उस चूड़ी को बाजार की गलियों में लेकर जाता है और स्त्रियाँ भी जाकर उनका क्रय करती हैं। इसके बाद वह कमनीगर (चूड़ी बनाने और बेचने वाला) पुकार कर कहता है और स्त्रियाँ भी नीच बुद्धि से जुड़ी उसी की कामना करती है।

ठीक इसी प्रकार की कुत्सित गति संसार की भी समझें–जिसने राम रूपी शीशे को अगम्य बता रखा है। राम की गति कुछ ऐसी ही समझो कि वह टूटी हुई चूड़ी है–जिसको (टूटी हुई चूड़ी के)

बराबर वह चूड़ी बनाने वाला ही ले आता है। उस टूटी चूड़ी को तोड़-फोड़कर अपनी भट्ठी में पिघलाता है—ठीक इसी प्रकार राम भी कर्म के कारण ऐसा ही स्थान प्राप्त करते हैं। यह शरीर भट्ठी है और काल चूड़ी बनाने एवं बेचनेवाला कमनीगर है और उस भवसागर की खान में राम बेहाल हैं। इस संसार की संसक्ति में रखकर उन तक जाता है, हे भाई बताओ, उसकी क्या दशा होगी। स्वयं राम कर्मवशात् उसी में पड़े (फँसे) हैं तो यह बताइये कि उनसे यह संसार किस-किस भाँति उद्धार पाएगा॥

राम राम मन बूझौ भाई। मन को राम संत गोहराई॥
देखौ सब संतन की साखी। बूझि ज्ञान जब खुलिहै आँखी॥
मन जो राम को जपै बनाई। मनहिं राम को गारी लाई॥
मन से कहत बहुत यह खोटा। राम जपे केहि बिधि ह्वै मोटा॥
मुख से मन को खोट लगावै। वही राम मन इष्ट बतावै॥
राम इष्ट मन गारी दइया। तुम्हरा ज्ञान आहि कस भइया॥
राम राम जपिया दिन राती। मन कौ खोट कहौ केहि भाँती॥
मन को खोट देउ तुम गारी। इष्ट राम पर परिहै सारी॥
अपने मन में ज्ञान बिचारा। बूझ करौ सतसंगति लारा॥
जग सब मूल मूल के माहीं। बुद्धि कर्मबस बूझ न आई॥
भेष पंथ सब झारि बिचारा। बहु पुनि परे राम की लारा॥
राम राम पुनि आपुहि गावै। जो कोई बूझि ताहि बतलावै॥
उनसे बूझि राम कहँ होई। कह सब माहीं रहा समोई॥
राम राम सब माहि बताई। चारि खानि चर अचर समाई॥

अर्थ—राम-राम को ही मन समझो और सन्तगण मन को ही राम पुकारते हैं। समस्त सन्तों की साखियों को पढ़ो और उनमें निहित ज्ञान को बूझो, तब तुम्हारी आँखें खुलेंगी। जो व्यक्ति मन को राम बनाकर जपेगा, मन ही राम के प्रति उपेक्षा का भाव पैदा करेगा। मैं मन के ज्ञान से ही कहता हूँ कि राम शब्द बहुत खोट है। राम का जप करने से व्यक्ति किस प्रकार आध्यात्मिक दृष्टि से समृद्ध होगा। मुख द्वारा मन पर खोट लगाते है और वही राम रूपी मन को अपने इष्टदेव बतलाते हो—(कैसे सम्भव है)। हे भाई! तुम्हारा ज्ञान कैसा है, तुम राम मन रूपी इष्ट देव को गाली देते हो। तुम राम-राम रात-दिन जपते रहते हो—फिर मन को किस तरह से खोटा कहते हो। मन को खोट कहकर तुम उसे गाली देते हो—यह सारी तुम्हारी गालियाँ तुम्हारे इष्टदेव राम पर ही पड़ेंगी। तुम अपने मन द्वारा ही इसे समझो और सत् ज्ञान प्राप्ति के लिए सत्संगति में रमो। बुद्धि के अन्तर्गत कर्मवश यह बात समझ में नहीं आ रही है कि सारा संसार भूल है और सभी इसी भ्रम (भूल) में ही फँसे हुए हैं। वेष रचना, धर्ममार्ग इन सब पर विचार करो कि बहुत सारे लोग राम की संसक्ति में पड़े हुए हैं।

स्वयं तो राम राम का गान करते रहते हैं और जो कोई उनसे पूछता है, उसको भी वे यही बतलाते हैं। उनसे पूछा जाता है कि राम कहाँ है, वे कहते हैं कि वह सबमें समाया हुआ है। वे सब में राम हैं—यह बताते रहते है और यह भी बताते हैं कि वह सचराचर के चारों लोकों में समाया हुआ है।

येहि बिधि मुख से बोलै बात। नर पसु पंछी सब के साथा॥
पूछौ नर में राम बतावै। कंठी बाँधि चेला ठहरावै॥
राय राम बिधि सब में गावै। पुनि चेला कस कस ठहरावै॥

मुख से राम कहै सब माहीं। पुनि पूछै सेवक बतलाई॥
सेवक मन से ता को जानै। फिर कस राम को स्वामी मानै॥
स्वामी सब के माहिं समावा। पुनि सेवक कस कस बतलावा।।
राम बसा सब जग के माहीं। ये तो जग स्वामी भया भाई॥
सब घट माहीं राम बिराजा। घट में रामहिं करै अवाजा॥
चेला करि तुम नाम पुकारी। बोलै को लख दृष्टि पसारी॥
को अवाज चेला में दीन्हा। को बोलै केहि चेला कीन्हा॥
बोलनहार राम बतलावौ। सिष्य करौ सेवक ठहरावौ॥
कस कस बुद्धि तुम्हारी भाई। बुद्धि गई मति ज्ञान हिराई॥
राम राम करि मुक्ति तुम्हारी। बोलै चेला राम बिचारी॥

अर्थ–वे इस तरह से अपने मुख से बातें बोलते रहते हैं कि वे मनुष्य, पशु, पक्षी सभी के साथ हैं। पूछने पर वे प्रत्येक मनुष्य में राम बताते हैं और लोगों के गले में कंठी बाँधकर उन्हें चेला बनाते हैं। जब सबमें राम-राम होना कहकर बताते हैं तब मनुष्यों को चेला क्यों बनाते हैं (क्या उनमें राम नहीं है)। वे मुख से कहते हैं कि राम सबमें हैं और फिर शिष्यों के विषय में पूछने पर उन्हें 'सेवकदास' कहते हैं– क्यों? जब वे मन से एक व्यक्ति को सेवक मानते हैं, फिर राम को स्वामी क्यों मानते हैं। यदि स्वामी सभी लोगों के हृदय में समाया हुआ है तो फिर उसे सेवक क्यों बतलाते हैं। जब राम सम्पूर्ण संसार में निवास करते हैं तो हे भाई? सम्पूर्ण संसार तो स्वामी हो गया (सेवक क्यों)।

सभी घटों (मनुष्यों) में जब राम विराजमान हैं और घट के अन्दर राम की ध्वनि उत्पन्न होती है और तुम शिष्य बनाकर उनका नाम रखकर पुकारते हो तो देखो कि वह कौन बोल रहा है–(चेला कि राम)। चेला के हृदय में आवाज कौन दे रहा है, वह कौन बोल रहा है क्या तुमने उसे (राम को जो हृदय में बोल रहा है) चेला बना लिया है।

बोलने वाले को तुम राम कहकर बतलाते हो और व्यवहार में उन्हें शिष्य बनाकर दास सिद्ध करते हो। हे भाई! यह तुम्हारी बुद्धि कैसी है। लगता है, बुद्धि नष्ट हो गई है, ज्ञान खो चुका है। राम-राम कहकर तुम अपनी मुक्ति चाहते हो और राम पर विचार करते हुए तुम मनुष्य राम को चेला कहते हो।

बोल राम तुम चेला कीन्हा। चेला मुक्ति कौन बिधि दीन्हा॥
बोल राम रित चेला थापा। बुद्धि गई तुम बूड़े आपा॥
बूझौ खूब खूब कर देखौ। तुलसी बचन हृदै में पेखौ॥
तुलसी बूझ अबूझ बिचारा। साँच झूठ परखौ निरधारा॥
मन गुन ज्ञान बुद्धि सँग बूझी। तुलसी नहिं कछु कही अबूझी॥
निदा भाव कीन्ह कछु नाहीं। निंदा संत न करिहैं भाई॥
निदा भाव नर्क की खानी। ता को संत न करैं बखानी॥
ये अबूझ अपने से जानौ। ता से निदा कहि कर मानौ॥
तुम निंदा कर बूझा भाई। संत मता सतसंग न पाई॥
संत मता सतसंगति जानौ। सार असार सबै पहिचानौ॥
बिन सतसंग बूझ नहिं आवै। ता से निंदा करि ठहरावै॥

संत सरन से उतरै पारा। सो तो तुम निंदा कर डारा॥
मुख से कहौ संत मत न्यारा। संत बिना नहिं होय उबारा॥
पंत मता न्यारी तुम भाखौ। न्यारी कहि पुनि ताहि न ताकौ॥
संत का भेद बेद से न्यारा। अस अपने मुख कहौ बिचारा॥
संत साध कहौ सब से न्यारा। पुनि सुनि कै नहि मानौ लबारा॥
न्यारी कहैं सत्त सत जाना। न्यारी सुनै देर नहिं काना॥
न्यारी को न्यारी कर बूझै। न्यारी गुनै सुनै नहिं सूझै॥
कहै न्यारी मुख मीठा लागै। न्यारी सुनै तभी उठि भागै॥
अपने मुख से न्यारी भाखै। न्यारी सुनि उठि कै कस भागै॥
न्यारी सुनि बूझै नहिं भाई। ता से कछू हाथ नहिं आई॥
ये अद्भुद सुनियौ अज्ञाना। न्यारी कहै सुनै नहिं काना॥
भेष जगत की ऐसी रीती। ज्यों भेड़ी जग बहै अनीती॥
या बिधि से जग बेद भुलाना। संत मता ता से नहिं जाना॥
फूलदास ये येहि बिधि लेखा। परघट नहीं संत गति पेखा।
जो कोइ परघट कहत बुझाई। तो झगरा करने को धाई॥
गुप्त मता संतन ने भाखी। कागद में मिलि है नहि साखी॥
साखी सब्द ग्रन्थ जो गावै। बिन सतसंग समझ नहिं आवै॥
ये झूठे कागद के माहीं। ढूँढ़ ढूँढ़ सब जनम सिराई॥
ज्यों बाजीगर डंका मारा। ठगन जगत इंद्रजाल पसारा॥
ऐसी सब ग्रंथन की बानी। ता में ढूँढ़ै भेष अजानी॥
या से इनके हाथ न आवै। गुप्त संत बिधि कैसे पावै॥
फूलदास मति बूझौ भाई। अस जग अंध कहा कहौं गाई॥
सब सब बिधि बिधि गाइ बताई। फूलदास बिधि भूल सुनाई॥

अर्थ–बताओ कि क्या तुमने राम को ही चेला बना लिया और इस शिष्य को मुक्ति किस प्रकार से दी। राम बोलकर चेला की स्थापना करते हो, तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो चुकी है–तुम स्वयं नष्ट हो गए हो। समझो और इसे भलीभाँति आचरण में उतार कर देखो और तुलसी साहब के बचनों को हृदय में रखकर देखो। तुलसी के विचार समझने योग्य हैं या नहीं, इसकी सत्यता एवं असत्यता को सही-सही परखो। मन के गुण ज्ञान तथा बुद्धि द्वारा इसे समझो। तुलसी ने कोई न समझ सकी जाने वाली बात नहीं की है। उन्होंने इसे निन्दाभाव से भी कुछ नहीं कहा है। हे भाई! सन्त किसी भी निन्दा नहीं करते हैं। निन्दाभाव नरक की खानि है–इसका सन्तगण उसका वर्णन नहीं करते। यह रहस्यमय तत्त्व है जो व्यक्ति स्वयं से जानता है तो उससे निन्दा कहकर शान्त रहो। तुमने तो निन्दा करके उसे समझा है, किन्तु संत मत को सतसंग से भी कभी-कभी नहीं किया जा सकता। संतों के मत को ही सत्संगति समझो और उसके द्वारा-सार तथा असार मत सभी की पहचान करो। यह परमार्थ तत्त्व बिना सत्संग के समझ में नहीं आता और तुम उससे निन्दा करके बात सिद्ध करते हो। तुमने उसकी निन्दा करके उसे समझा है

लेकिन बिना संत मत के सत्संग नहीं मिलता। संतमत को सत्संगति से ही समझो और उससे क्या सार तत्त्व है—क्या असार तत्त्व है, उसे समझो। बिना सत्संगति के मूल तत्त्व समझ में नहीं आता और उसे निन्दा से अलग रहकर बताया जा सकता है।

सन्तों की शरणागति में हो इस संसार से पार उतर सकते हो और उसकी तो तुमने निंदा कर डाली है। मुख से बोलो कि संत मत विलक्षण है क्योंकि संत के बिना उद्धार सम्भव नहीं है। तुम संत मत को विलक्षण बताते हो, और उसे विलक्षण कहकर भी उस ओर नहीं देखते हो। सन्तों का रहस्य वेद से भी विलक्षण है, ऐसा अपने मुख से ही विचार करो। सन्त और साधु सबसे विलक्षण हैं और इसे सुनकर इसे लबारपन नहीं मानते हो। विलक्षण ही कहता है कि सन्त मत को जान लिया है, और ऐसे लोग भी विलक्षण है, जो इसे कान से भी नहीं सुनने देते। विलक्षण को विलक्षण मानकर ही समझता है—विलक्षण के लिए व्यक्ति गुनता है और सुनता है किन्तु वह उसे सूझता नहीं। वह विलक्षण कहता है और उसके मुख को वह भला भी लगता है किन्तु जब वह विलक्षण बातों को सुनता है तो अरूचिवश उठकर भाग चलता है। अपने मुख से तो तुम विलक्षण तत्त्व कहते हो किन्तु अन्य की विलक्षण बातें सुनकर तुरन्त उठकर भागते हो। विलक्षण अध्यात्म तत्त्व सुनकर तुम समझ नहीं पाते—अतः इस प्रकार तुम्हारे हाथ में कुछ नहीं लगेगा। यह अद्‌भुत वर्णन है किन्तु तुम्हारे अज्ञान सुनाई पड़ता है—और जो व्यक्ति विलक्षण बातें कहते हैं, तुम उसे कान से नहीं सुनना चाहते। संसार का यही रहस्य है, यही रीति है—यह भेड़ियाधसान संसार है—जहाँ अनीति ही बहती है। इसलिए यह संसार वेदों में भूला हुआ है इस कारण वह सन्त मत को नहीं जानता।।

फूलदास कहते हैं कि इसका यही स्वरूप है—संतों के ज्ञान को किसी ने प्रगट रूप में नहीं देखा है। जो कोई इस सन्त मत को प्रगट रूप से कहना चाहता है, उससे लोग झगड़ा करने के लिए दौड़ते हैं। सन्तों ने अपने सिद्धान्तों को गुप्त रूप से बताया है और कागजों पर लिखा हुआ उनका साक्ष्य नहीं मिलेगा। जो ग्रन्थ साखी एवं सबद का गान करता है, वह गान बिना सत्संगति के समझ में नहीं आता। ये कागज में लिखे हुए शब्द झूँठे हैं और खोजते-खोजते आदमी का सम्पूर्ण जीवन समाप्त हो उठता है। जैसे कोई बाजीगर सबसे पहले डंका पीटता है, फिर संसार को ठगने के लिए अपने इन्द्रजाल को फैलाता है। सम्पूर्ण ग्रन्थों की वाणियाँ कुछ इसी प्रकार की है और उसमें अज्ञानी जन बेष रचना में खोजा करते है। इसीलिए वह अध्यात्म तत्त्व इनके हाथ नहीं लगता-गुप्त सन्त मत को इन पोथियों में कैसे प्राप्त करें, सम्भव नहीं है। हे फूलदास। इस रहस्य को तुम समझो—सारा संसार इस प्रकार अंधा है, मैं कहाँ तक समझा कर कहूँ। सारी-की-सारी बातें अनेक विधियों से मैंने कहकर बता दी हैं और हे फूलदास! मैंने तुम्हें विधिपूर्वक सबका निचोड़ सुना दिया है।

सम्बाद साथ गुनुवाँ बेटा हिरदे अहीर के

॥ तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

इतने में हिरदे चलि आये। संगहिं सुत दरसन को लाये॥
दोऊ दरस दंडवत कीन्हा। चरन धाइ पुनि हमरे लीन्हा॥
हम पूछी हिरदे से बाता। आज कों लाये अपने साथा॥
हिरदे पुत्र सामने कीन्हा। हम पूछी केहि नाम से चीन्हा॥
हिरदे कहै यह जग्त बिधाना। गुनुवाँ नाम से पुत्र कहाना॥
पूछी तुलसी कौन ठिकाना। कहँ से आये कहौ बिधाना॥
हिरदे कहै सुनो हों स्वामी। मोसे जुदा रहै यह जानी॥
रह लखनऊ मोर यह बेटा। बहुत दिनन पर मो से भेंटा॥

मोरे मिलन काज वह आवा। सो स्वामी के दरसन पावा॥
स्वामी चरचा सुनी बिख्याता। फूलदास साध के साथा॥
इन सब वह चरचा सुनि पावा। या के मन में भर्म समावा॥
ये स्वामी जस ज्ञान बखाना। या की समझ बूझ नहिं माना॥
राम राम तम कछू न गाई। राम से और कोऊ बतलाई॥
राम से और कोऊ नहि दूजा। यह या के मन आई बूझा॥
कह तुलसी गुनुवाँ सुन बाता। रह दो चार रोज यहिं राता॥

अर्थ–इतना सब होने के बाद हिरदै चलकर आये और साथ में अपने पुत्र को उनके दर्शनार्थ लाये। दोनों ने दर्शन करके दण्डवत् किया और दौड़कर पुनः हमारे चरण को पकड़ा। मैंने हिरदै से समाचार पूछा कि आज किसको अपने साथ लाए हो। हिरदै ने बताया कि यह जगत का विधान है, यह 'गुनुवाँ' नाम से मेरे पुत्र के रूप में पुकारा जाता है? तुलसी साहब ने गुनुवाँ से पूछा कि तुम्हारा रहना कहाँ होता है और कहाँ से आए हो और अपना समाचार सुनाओ। हिरदै ने उत्तर दिया, हे स्वामी सुनें, आप यह समझों कि यह मुझसे अलग रहता है। मेरा यह बेटा–लखनऊ रहता है और बहुत दिनों पर इससे हमारी भेंट हो रही है। यह मुझसे मिलने के लिए आया था, इसलिए और इसी संयोग से उसने आपका दर्शन प्राप्त किया। स्वामी तुलसी साहब के विख्यात होने की चर्चा फूलदास साधु के साथ होने की इसने सुनी। इन सब बातों की उसने चर्चा सुनी और तबसे उसके मन में यह भ्रम समा गया है कि इन स्वामी ने जो रूप वर्णित किया है–उसकी समझ बूझ मेरे मन में नहीं समा रही है। इन्होंने ने तो राम-राम के यश का तो कुछ भी गान नहीं किया है, और राम से भिन्न अन्य किसी का दर्शन किया है। राम से बढ़कर अन्य कोई दूसरा नहीं है–इस मेरे पुत्र के मन में यह समझ उत्पन्न हुई है। तुलसी साहब ने (इसे सुनकर बोले) हे गुनुवाँ! मेरी बात सुनो और यहाँ दो-चार दिन लगकर रहो।

प्रश्न गुनुवाँ॥ चौपाई॥

माथ नवाई जोरि जुग पानी। स्वामी से बूझौं इक बानी॥
राम राम जग बिरत बिराजा। जिनने किये अनेकन काजा॥
जक्त भेष सब साध बतावा। तुम ताको कछु नहिं ठहरावा॥
सब मिलि के ये बिधी बखानी। महुँ पुनि सुनीं कहौं यह बानी॥
राम ने सिंध पखान तरावा। जल पर सिला राखि उतरावा॥
और प्रहलाद भक्त को तारा। ता कारन हरनाकुस मारा॥
गुजरी एक बिन्द्राबन माहीं। तिन पुनि कथा सुनी इक ठाहीं॥
कथा माहि इक सुना प्रसंगा। राम राम नौका चित चंगा॥
उन सुनि साँच मान मन धारी। वो उतरी जमुना के पारी॥

अर्थ–मैं सिर झुकाकर और दोनों हाथों को जोड़कर स्वामी जी से एक बात पूछना चाहता हूँ। संसार से विरत राम सम्पूर्णतः व्याप्त हैं–और जिन्होंने अनेकों कार्य किए हैं और इस संसार में भेष धारण की चर्चा तो सारे साधुगण बताते रहते हैं और उसको आप कुछ भी नहीं मानते। सारे साधुओं ने राम का इस प्रकार से वर्णन किया है–और उसे मैंने भी सुनी है और आपसे भी कह रहा हूँ।

राम ने समुद्र में पत्थर तैरा दिया–जल के ऊपर उतरायी हुई शिलाओं को स्थापित किया। उन्होंने प्रह्लाद भक्त का उद्धार किया और उनके लिए हिरण्य कश्यप का बध किया। वृन्दावन में एक अहीरिन थी और उस स्थान पर मैंने एक कथा सुनी। उस कथा में एक प्रसंग सुना कि भक्त जिसका मन निर्मल (चंगा) है, उसके लिए राम शब्द भवसागर से तारने के लिए नौका की भाँति है। उसने इसे सुनकर मन में इसे सही ठहराया और राम का नाम लेती हुई यमुना के पार उतर गई।

अजामील अस पातकि होई। ता सुन नाम नरायन सोई॥
मरत बार सुन नाम पुकारा। सो पहुँचा मुक्ती के द्वारा॥
गनिका सुवा पढ़ावत तारी। राम राम कहि उतरी पारी॥
ध्रू ने अटल तपस्या कीन्हा। पदवी राम अटल तेहि दीन्हा॥
और गज अर्ध नाम गोहरावा। ता को तुरत स्वर्ग पहुँचावा॥
बालीमीक जपि उलटा नामा। राम राम कहि मुक्ति समाना॥
महादेव दुइ अच्छर बासी। राम राम कहि भये अबिनासी॥
अस परचे जो राम के गावै। तुलसी पत्र लिखा इक ठाँवै॥
राम राम इक पत्र लिखाया। या की बिधि सब साखि सुनाया॥
पत्र एक पर राम लिखाना। पलरा माहिं धरा तेहि जाना॥
इक पलरा पर द्रब्य चढ़ावा। दूजा पलरा पत्र धरावा॥
पलरा पत्र उठा नहिं भाई। राम राम की ऐसी बड़ाई॥
महिमा राम राम अस गाई। नाम देव पुनि गाइ जियाई॥

अर्थ–अजामिल नाम का एक निकृष्ट पातकी था और उसके पुत्र का नाम नारायण था। मरते समय उसने अपने पुत्र 'नारायण' का नाम पुकारा और वह मुक्ति के द्वार पर जा पहुँचा। तोते का 'राम-राम' पढ़ाते हुए गणिका का उद्धार हो गया और वह राम राम कहती हुई भवसागर पार हो गई। ध्रुव ने अपनी अटल तपस्या की और राम ने उसके नाम की उपाधि को अटल बना दिया और गज ने राम का आधा ही नाम पुकारा और 'राम-नाम' ने उन्हें तुरन्त ही स्वर्ग पहुंचा दिया। स्वयं वाल्मीकि उनके नाम का उल्टा जप करते हुए–राम-राम कहते हुए मुक्ति में समाविष्ट हो उठे। 'राम' के इन दो अक्षरों में विश्राम करने वाले शिव राम-राम कहते हुए अविनष्ट तत्त्व हो गए। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इन राम के विषय में एक पत्र लिखा। राम के लिए उन्होंने एक पत्र भी लिखा है और उन्होंने उसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया कहकर सुनाई है।

एक पत्र पर राम लिखकर उसे दूसरे पलड़े पर रख दिया। पहले पलड़े पर द्रव्यों को रख दिया और दूसरे पलड़े पर पत्र रखा दिया–पत्र वाला पड़ा इतना भारी था कि उस द्रव्य वाले पड़े के क्रम में वह उठा ही नहीं–यह सब शब्द का बड़प्पन है। राम की महिमा का ऐसा गान किया गया है। नामदेवता ने पुनः गाकर संसार को जीवित कर रखा है।

येहि बिधि साखी बेद पुकारै। सास्त्र कहै राम ही तारै॥
ऐसी बिधि मिलि राम की साखा। सोई राम तुमने नहिं राखा॥
राम राम बिधि तुमहूँ गावा। तुमहूँ राम राम समझावा॥
या का भरम बहुत मोहिं आई। याकी बिधी समझाई॥
पहिले तुमहुँ राम कहि गावा। राम राम कहि भाखि सुनावा॥

अब तो मोड़ तोड़ तुम डारा। राम राम कहो झूठ पसारा॥
याकी बिधी भेद समझावौ। राम छाँड़ि तुम केहि को ध्यावौ॥
सब जग साखि तुम्हारी गावै। तुलसी राम राम समझावै॥
या की स्वामी साखि सुनैये। मेरे मन का भर्म मिटैये॥
सो स्वामी मो को समझावौ। मोरे मन का भर्म छुड़ावौ॥

अर्थ–इसी प्रकार वेद भी नाम के लिए साक्ष्य देकर पुकारता है और शास्त्रगण भी यही कहते हैं कि राम ही सबका तरण-तारण करते हैं। इस प्रकार राम के विषय में अनेक प्रमाण मिलते हैं और उस राम को आपने कोई स्वीकृति नहीं दी है। आपने भी राम-राम के रहस्यों का गान किया है और मैंने भी जो सुना है, उस राम के विषय में बताया है। इस बात का भ्रम मुझे अधिक है, अतः इसका रहस्य मुझे समझाएँ। पहले आपने भी राम कहकर उनका वर्णन किया है और राम राम कहकर उनके विषय में बताया है और राम राम कहकर इनके विषय में विवेचन करके सुनाया है। इस समय को तो आपने तोड़मोड़ कर सारे विचारों को रखा है–और कहा है कि राम-राम का प्रकरण मिथ्या है। इसलिए इसके रहस्य को मुझे स्पष्ट किया जाए। सारा संसार आपकी साखी गा रहा है और तुलसी राम-राम' के ही विषय में समझाते हैं। हे स्वामी? आप इसका रहस्य समझाएं और मेरे मन का उत्पन्न भ्रम दूर करें?

॥ दोहा॥

स्वामी कहौ बुझाइ, भर्म भाव मो को भयो।
मन में संक समाइ, राम राम कछु ना कह्यो॥

अर्थ–हे स्वामी! मैं आपको समझाकर कहता हूँ कि मुझमें भ्रम का भाव आ चुका है। मोटेमन में यह संदेह समा गया है क्योंकि आपने 'राम राम' कुछ भी नहीं कहा है॥

॥ उत्तर तुलसी साहिब ॥ चौपाई

सुनु गुनुवा तो को समझाऊँ। आदि अंत या की बतलाऊँ॥
सत्तलोक इक पुरुष अपारा। चौथे पद के पार बिचारा॥
तापु अंत जिव पुरुष नियारा। जा का पद चौथे के पारा॥
ता के पुत्र भये पुनि भाई। सोला निरगुन तिन कर नाईं॥
सो निरगुन जो पुरुष से भैया। जा में लघू निरंजन कहिया॥
ता को संत काल गोहरावै। सोई राम रमतीत कहावै॥
सोई निरंजन कहिये काला। आदहि जोति बिछाई जाला।
पुरुष निरंजन जोती नारी। ये दोऊ मिलि सृष्टि रचा री॥
तिन के पुत्र तीनि जो जाना। ब्रह्मा बिष्नु ताहि कर नामा॥
तीजे संभू छोटे भाई। तीन पुत्र या बिधि उपजाई॥
निरंजन पिता जोति है माता। ये तीनों इन से उतपाता।।
रमतीता सोइ बुझौ काला। जोती काल रचा जंजाला॥
ता के भये दसौ औतारा। काल अंस जग राम पसारा॥
रमता राम कर्म के माहीं। रमतीत राम काल की छाहीं॥

अर्थ–हे गुनुवाँ! तुझे मैं समझाता हूँ और इस रहस्य का आदि-अन्त भी बतलाता हूँ। एकअनन्त पुरुष है–उसका नाम 'सत्तलोक' है और वह चौथे पद के उस पार कहा जाता है। उसके अन्तिम स्वरूप को वहीं 'जीव पुरुष' निर्णीत करता है, जिसका स्थान इस चौथे पद के उस पार हो। हे भाई! फिर उनके भी पुत्र उत्पन्न हुए:वे सोलह थे, और वे उसी की भाँति थे। उस पुण्य से जो निर्गुण हुआ–उसमें से सबसे छोटे पुत्र को निरंजन कहा गया है। संत जन उसी को काल के नाम से पुकारते हैं–वही रमण करने वाला राम कहलाता है। उसी को निरंजन या काल भी कहते हैं और उसने सबसे पहले ज्योति की जाल बिछा दी है। उस निरंजन पुरुष तथा ज्योति नारी–इन दोनों ने मिलकर सृष्टि रचना का विस्तार किया। इनके तीन पुत्र जो इस रूप में जाने हैं–'ब्रह्मा' एवं 'विष्णु' उनका नाम है, तीसरे 'शिव' उनके छोटे भाई हैं–और इस प्रकार उन्होंने तीन पुत्र उत्पन्न किये।

निरंजन इनके पिता हैं, ज्योति इनकी माता हैं–और ये तीनों इनसे उत्पन्न हुए हैं। जो स्मरण कर रहा है, उसे काल समझो, इस ज्योति ने इस काल का जंजाल रचा है। इस काल के दस अवतार हुए हैं। इस काल ने अपने अंश के रूप में राम को फैलाया है। राम के मध्य ही रमण करते हैं। राम तो केवल काल की छाया में रमण करते हैं॥

रमतीत काल ने जाल पसारा। रमता रहा राम भौ जारी॥
राम कहौ सोइ मन है भाई। मनहिं राम जिन जक्त बुड़ाई॥
राम काल सब संत पुकारा। जा को जपै यह जक्त लबारा॥
ब्रह्मा बिष्नु महेसर जाना। बेद कहे सोह झूठ पुराना॥
ये तीनों ने जाल पसारा। राम काल ने सब जग मारा॥
राम काल को जपै बनाई। चर और अचर सभी चरखाई॥
राम काल को जपिहै भाई। जम बंधन भौ खान समाई॥
रमतीत काल जोति है ठगनी। तीन पुत्र उपजाये अपनी॥
सास्त्र बेद और दस औतारा। ये सब जानी काल पसारा॥
या के मत में परिहै प्रानी। काल जाल ये जम की खानी॥
तीनि लोक जम जाल पसारा। वो दयालपद इन से न्यारा॥
वो दयाल समरथ है दाता। सो पद को कोउ संत समाता॥
वा की राह संत से जानै। भेष जक्त दोउ नहि पहिचानै॥

अर्थ–रमण करने वाले काल ने अपना जाल फैला रखा है किन्तु दूसरी ओर सम्पूर्ण संसार राम में रहता रहा। जो मन में आए उसी को राम कहो, मन ही राम है–जिसके सम्पूर्ण संसार को उसी में संसक्त कर दिया। सारे सन्तों ने कहा है कि राम ही काल है, जिसको यह लबार संसार ब्रह्म के रूप में जपता रहता है। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव ईश्वर हैं, ऐसा वेद तथा पुराणों ने कहा है, यह सब असत्य है। इन तीनों ने अपनी माया पसार रखी है किन्तु किन्तु राम रूपी काल ने सम्पूर्ण जगत को नष्ट कर दिया। जो राम रूपी काल को ईश्वर मानकर जपता है, वह चर तथा अचर सभी को धोखा देता है। हे भाई, यदि राम रूपी काल का जप करेंगे तो यम के बन्धन में बंधकर इस संसार की माया की खानि में पड़ोगे। काल रमण करने वाला है और वह उसकी पत्नी ज्योति ठगिनी है। इन्होंने अपने तीन पुत्रों को उत्पन्न किया है। शास्त्र, वेद और दसों अवतार इन सबको काल के जाल के अन्तर्गत समझो। इनके मतों के अनुसार समस्त प्राणी काल जाल एवं भ्रम के फंदे में पड़ेंगे। यमराज ने तीनों लोकों में अपना जाल फैला रखा है–और वह दयालु ईश्वर इन सबसे भिन्न है। वह दयालु ईश्वर एक समर्थ दाता है–उनके

लोक में कोई ही विरला संत प्रवेश करता है। उस दयालु ईश्वर का मार्ग कोई भक्त ही समझता है–वेष रचना और सांसरिक जन दोनों ही उसे नहीं पहचानते॥

संत मता कोई भेद न जाना। सूरति संत चढ़ै असमाना॥
पहुँचै सूरति अगम ठिकाने। अपना आदि अंत घर जानै॥
सूरति मिलै पुरुष को जाई। तिन को नाम संत है भाई॥
संत राह सूरति को पावै। और सब भेष खानि में आवै॥
आदि पुरुष को देखै नैना। तब अदृष्ट की बूझै सैना॥
पतिबरता सो पुरुष पिछानै। वा को इष्ट संत सब मानै॥
और इष्ट नहिं जानै भाई। राम इष्ट ये काल कहाई॥
जो कोइ राम पतिब्रत कीन्हा। सो सब परे कर्म आधीना॥
जिन दयाल से सुरति लगाई। सो पहुँचे वा पद के माईं॥
येहि बिधि संत कहैं गोहराई। अस अस संत सभी समझाई॥
राम काल जो जपै बनाई। संत बचन निंदा ठहराई॥
संत बचन निंदा कर माना। ता ते परे नर्क की खाना॥
या का कोई भर्म लै आवै। बार बार चौरासी पावै॥

अर्थ–सन्त मत का रहस्य कोई नहीं जानता। सुरति ध्यान से ही सन्त जन शून्याकाश तक चढ़ते हैं। सुरति द्वारा साधक उस अगम्य ब्रह्म के ठिकाने तक पहुँच जाते हैं और फिर वे अपना मूल स्थान (आदि अन्त ठिकाना) या घर जान जाते हैं। सुरति समाधि द्वारा जो सन्त उस परम पुरुष से मिलता है–उसी का नाम, सन्त है। अन्य व्यक्ति सन्तों की राह पर चलकर ही सुरति को जान सकता है, शेष सभी इस भवसागर में आकर समा जाते हैं। जो आदि पुरुष को इन नेत्रों से देख लेता है, सभी अदृष्ट को अपनी आँखों का इशारा समझता है। वही सन्त पतिव्रता है, जो उस पुरुष को पहचानता है, और सभी संतजन उसी को अपना इष्ट मानते हैं। हे भाई! वह अन्य इष्टों को नहीं जानता तथा और राम नाम के ये इष्ट तो काल के नाम से पुकारे जाते हैं। जिसने राम से अपना पातिब्रत सम्बन्ध स्थापित किया है, वे सभी कर्म के अधीन हैं। जिन्होंने उस दयालु में सुरति समाधि लगा रखी है, हे भाई! वही उस स्थान पर पहुँचते हैं। ऐसा-सन्तों ने बुला-बुलाकर बताया है--और ऐसा-ऐसा ही सभी सन्तों ने समझाकर बताया है। जो काल रूपी नाम को ईश्वर बनाकर उपासना करता है, सन्तों द्वारा वही निन्दित ठहराए जाते हैं। सन्त की वाणी की जो निन्दा करते हैं, इसी कारण वे नरक की खानि में पड़ते हैं। यदि इसमें कोई भ्रम उत्पन्न करता है तो वह बार-बार चौरासी लाख योनियों में पड़ता है।

आप अबूझ बूझि नहिं लावै। संतन को नास्तिक ठहरावै॥
यह सब भेष अंध भये भाई। संतन को निन्दक ठहराई॥
संतन की बूझै कोई बानी। तौ छूटै चौरासी खानी॥
राम काल को दूर बहावै। निस दिन संत चरन लौ लावै॥
वो दयाल कहुँ राह बतावैं। तब जिव अपने घर को जावै॥
संत चरन पावै निरबारा। राम काल जरा फाँसी डारा॥
जो कोइ गहै राम की सरना। छूटै न जनम नरन का धरना॥

कहै राम के होइ गये बेटा। ता को परिहै जम को सोंटा॥
जो कोइ भये राम के प्यारे। खानि गये जम लातन मारे॥
तुलसी सत सत यहि मत भाखा। या में पच्छपात नहिं राखा॥
संतबचन जेहि सत्त न भासी। जा की होइ जनम की नासी॥

अर्थ–स्वयं के लिए जो अबूझ है, वे उसे समझते नहीं और संतों को नास्तिक सिद्ध करते हैं। ये सभी साधुओं की वेष रचना में अंधे हो गए हैं और सन्तों को निन्दक सिद्ध करते हैं। जो कोई सन्तों की वाणी बूझ लेता है, उसकी चौरासी कोटि योनियों से मुक्ति हो जाती है। जो राम रूपी काल को दूर बहा देता है और रात-दिन अपना ध्यान सन्तों के चरणों में लगाए रखता है। वह उस दयालु परमेश्वर का मार्ग बतलाता है और उसी का अनुगमन करके जीव अपने गृह के लिए प्रस्थान करता है। वह सन्तों के चरणों में ही अन्तिम फल प्राप्त करता है किन्तु राम रूपी काल उसे वृद्धावस्था जैसी अवस्था की फाँसी लगा देता है। जो कोई व्यक्ति राम की शरण स्वीकार करता है उससे जन्म-मरण का बन्धन छूटता नहीं। जो यह कहता है कि मैं राम का पुत्र हो गया उसके ऊपर यम के सोंटे की मार पड़ती है। जो कोई राम के प्यार बन गए हैं, वे नरक की खानि में जाते हैं और यम के पैरों की मार सहते हैं। तुलसी ने यह मत सही-सही बताया है और इसमें कोई पक्षपात नहीं किया है। जिसे सन्तों की वाणी में सत्य का अनुभव नहीं हुआ, उसकी जन्म की नष्टता अवश्य होगी।

॥ सोरठा॥

तुलसी कहै बुझाइ, गुनुवाँ बूझौ बात यह।
राम भर्म भौ खानि, सब कहै संत पुकारि कै॥

अर्थ–तुलसी साहब समझाकर कहते है कि हे गुनुवाँ! यह बात समझो, इस संसार में राम भ्रम की खानि है, सारे सन्त इस बात को पुकार कर कहते हैं॥

॥ प्रश्न गुनुवाँ॥ चौपाई॥

पुनि स्वामी इक पूछौं बाता। केहि बिधि ये जिव होइ सनाथा॥
धू प्रहलाद जो गनिका भइया। सेसनाग गज नाम देव कहिया॥
बालमीक अरु सबहि बखानी। अजामील सिव गुजरी जानी॥
तुलसी पत्र राम लिखवाई। और पखान जल माहिं तराई॥
ये स्वामी कहौ कैसी भैया। कहै गुनुवां मो को समझैया॥

अर्थ–हे स्वामी! मैं पुनः एक बात पूछना चाहता हूँ: किस प्रकार से ये जीव आश्रय से भरेपूरे होंगे। ध्रुव, प्रह्लाद और जो गणिका थी तथा शेषनाग, गज आदि अन्य देवों के नाम जो कहे गए हैं, सभी वाल्मीकि का वर्णन करते हैं और जो अजामिल तथा शिव पर बीती उसे सभी जानते हैं? स्वयं तुलसीदास जी ने राम शब्द पत्रों पर लिखवाया उसे पाषाण पर रखकर तैरा दिया। हे स्वामी, बतलाइये, ये कैसे घटित हुए। गुनुवाँ ने कहा–हे गुरुदेव मुझे समझाएँ।

॥ उत्तर तुलसी साहिब॥ चौपाई।

सुन गुनुवाँ मैं बूझ बताई। मन ठहराइ सुनौ चित लाई॥
राम अनादि चारि जुग भैया। ग्यारह जीव ताहि में तरिया॥
ता में सात जीव की चरचा। और चारि बतलावौ परचा॥
गिरे परे दस पाँच अरु होई। ये सब साखि बतावौ सोई॥

पोढ़ पोढ़ तौ सातै भैया। चारि बिधी परचे की कहिया॥
चारौ जुग जिव भये अनेका। सतजुग द्वापर त्रेता देखा॥
कलजुग सुधाँ चार जुग पेखा। चार जुगन कौ पूछौं लेखा॥

अर्थ–हे गुनुवाँ! तू समझ! मैं इसे बतला रहा हूँ। मन स्थिर करके तथा चित्त लगाकर मेरी बात सुनो। राम चारों युगों में अनादि तत्त्व हैं और उनसे ग्यारह जीवों का उद्धार हुआ है। उन ग्यारह जीवों में केवल सात जीवों की चर्चा है–और शेष चार का परिचय मैं बतला रहा हूँ. उनमें से भूले भटके दस-पाँच और हो सकते हैं–मैं उनका सबका प्रमाण देकर वर्णन कर रहा हूँ। सातों तो बड़े ही प्रौढ़ थे और शेष चार के परिचय की बातें कह रहा हूँ। चारों युगों में अनेक जीव हुए और आपने सतयुग, त्रेता तथा द्वापर को देखा होगा और कलियुग के साथ ही चारों युगों को भी समझा होगा।

ता में सात जीव सब तरिया। और जीव गये कहाँ जो मरिया॥
राम राम चारो जुगआवा। चारो जुग सबहिन मिल गावा॥
निरमल सतजुग जीव अनेका। राम राम जपि बाँधी टेका॥
सो तरे जीव अनेकन होइ। तुम ने सात जीव कहे सोई॥
और जीव का भाखौ लेखा। तरि गये होइहैं जीव अनेका॥
और नहीं थोरे पुनि कहिये। सतजुग क्रोड़ जीव तो चहिये॥
सतजुग उजली बुधि मन होई। राम जपा निस्चय से सोई॥
ता में क्रोड़ जीव तौ चाही। ये तो सात नाम भये भाई॥
और अनेक राम जपि जानी। सात तरे की हम नहि मानी॥
क्रोड़ जीव का नाम बतावै। तब हमरे मन साँची आवै॥
उजला सतजुग सात बखाना। मैला कलि का कौन ठिकाना॥
सतजुग सात निष्ट से गैया। कलजुग एक तरे नहिं भैया॥
सतजुग में तुम सात बतावा। कलजुग कर्म नष्ट लपटावा॥
जो कोइ कहै राम से तरिहै। झूठ समझि मन में नहिं धरिये॥
राम रमा जुग चारो खानी। तरिहै या से कस कस मानी॥

अर्थ–इनमें केवल सात जीव ही तरे और शेष जीव मर कर कहाँ गए? राम चारों युगों में रहे और चारों युगों के सभी व्यक्तियों ने मिलकर राम-राम कहा कहा। सत्युग में जीव निर्मल प्रवृत्ति के थे और राम-राम जपने की निरन्तर प्रतिज्ञा किए रहते थे। इस प्रकार, वे अनेक जीव तरे होंगे और उनमें तुम केवल सात जीवों की बात कही है। मैं अन्य जीवों का समाचार बता रहा हूँ कि वे भी अनेक जीव तर गए होंगे। सत्युगमें भी तो करोड़ों जीव होंगे और उन जीवों में थोड़े तो तरे होंगे। सत्युग में मन तथा बुद्धि पवित्र होती थी और सभी ने निश्चयपूर्वक राम का जप किया होगा। इनमें से तो कम-से-कम करोड़ जीव का उद्धार होना चाहिए–ये तो केवल सात के ही नाम है और अनेक जीवों ने जपकर मुक्ति प्राप्त की होगी। अतः केवल सात के तरने की बात हम नहीं मानते। यदि कोई इन करोड़ जीवों का नाम बताए तभी हमारे मन को सत्यता पर विश्वास होगा। उज्ज्वल (पवित्र) सत्युग में केवल सात की बात कहते हैं, फिर इस मलग्रस्त कलियुग का कौन-सा स्थान होगा? सत्युग में तुमने सात की चर्चा की और तुम कलियुग में सभी को कर्मावष्ट होकर नष्टधर्मी बता रहे हो। जो कोई कहता है कि राम से उद्धार

होगा—तो उसे असत्य समझो और इस बात को मन में न रखो। तुमने बताया कि राम चारों युग में रहे हैं—तो उनसे किस-किस प्रकार तरेंगे।

तुमको कहते सरम न आई। या को मन में बूझो भाई॥
येहि बिधि तुम मन अपने बूझा। करि बिचार तब परिहै सूझा॥
क्रोड़ो ऋषि मुनि जपि पुनि होई। क्रोड़ों तपसी जानौ सोई॥
क्रोड़ों इष्ट नेम पुनि करिया। कइ इक राम पतिब्रत धरिया॥
राम राम कहि सब जग तरते। भौसागर में कोइ न परते।
जो तुम कहौ करै परतीता। सतजुग में थी सत की रीता॥
साँचा जुग परतीत न आई। झूठ कलि की कौन चलाई॥
काल राम मन उतपति माहीं। राम न तारा होइहै भाई॥
सतजुग राम कहे नहिं तरिया। भौसागर में सब जिव परिया॥
तुम तो कहो राम सब माहीं। चार खान में रहा समाई।
राम खान में रहा बिराजा। कस कस भयौ तुम्हारो काजा॥
राम खान बस रहिया भाई। तुमको कस मुक्ती पठवाई॥
ये सब जानौ झूठी बाता। या में खैहौ जम की लाता॥
सत सत लोक राह चढ़ि जाई। तब यह जीव मुक्ति को पाई॥
राम राम की झूठी आसा। गये राम कहे जम की फाँसा॥

अर्थ—तुमको यह कहते शर्म नहीं आई है, इसे अपने ही मन से पूछो! इस प्रकार, इसे तुम अपने ही मन से समझो और भलीभांति विचार करो तभी बात समझ में आएगी। करोड़ो ऋषि-मुनि उन्हें जपते हैं और करोड़ों तपस्वी उन्हें जानते हैं करोड़ों ने उन्हें अपना इष्टदेव बनाया है—एक राम के लिए सभी ने संकल्प धारण किया है किन्तु यदि राम-राम कहकर सारा संसार तरता तो पुनः भवसागर में कोई न पड़ता। जो तुम कहते हो, उस पर मुझे विश्वास है कि सत्युग में सत्य की प्रतिष्ठा थी। जब उस सच्चे युग का विश्वास नहीं कर रहे हो तो कलियुग की झूठी बातें कौन कहे। काल रूप राम की उत्पत्ति मन में है—इस राम (काल) ने किसी को भी नहीं तारा होगा। जब सत्युग में राम कहने पर कोई नहीं उद्धार पा सका तो लगता है—सारे जीव भवसागर में पड़े हैं। तुम तो कहते हो कि राम सभी में हैं और वह चारों युगों में समाविष्ट रहा है। यदि राम इन युगों में विराजमान था तो देखो, तुम्हारा कार्य कैसे-कैसे सम्पन्न हुआ। राम तो युगों की खान में रहा फिर तुम्हारे लिए मुक्ति कैसे भेजी।

इन सारी बातों को तुम असत्य समझो—इसी में तुम यमराज के लातों से मारे जाओगे। जब सत्य के सत्य लोक की राह पर यह जीव चढ़कर जाएगा तो उसे मुक्ति मिलेगी। राम की आशा मिथ्या है और राम की आशा लगने वाले सभी यमराज के रास्ते पर गए हैं।

॥ प्रश्न गुनुवाँ ॥ चौपाई॥

तुम पुनि राम राम कस कहिया। सब ग्रंथन में साखि सुनैया॥

अर्थ—(यदि यह सत्य है तो) आप स्वयं राम राम क्यों कहते रहते हैं और फिर सारे ग्रन्थों का भी प्रमाण देते रहते हैं।

॥ उत्तर तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

जग अबूझ कारन हम गाई। जो करै इष्ट राम से भाई॥
जो हम न्यारा भेद सुनावैं। जो जग माहिं रहन नहिं पावैं॥
ता से न्यारा भेद न भाखा। संत भेद हम गुप्तै राखा॥
भेद ग्रंथ में गुप्त लखावा। पुनि काहू की दृष्टि न आवा॥
हमने भाखा अगम अलेखा। जा कौ मरम न जानै भेषा॥
हम सतपुरुष अलख लखवावा। बेद न भेद भेष नहिं पावा॥

अर्थ–इस अज्ञात सृष्टि के कारणों को मैं बताता हूँ कि जो राम से इष्ट का सम्बन्ध बनाता है–उसका हम विलक्षण भेद बताते हैं, वह इस संसार में रहने नहीं पाएगा। इससे हमने उसके विलक्षण भेद का वर्णन नहीं किया है और हमने सन्तों का भेद गुप्त रखा है। ग्रंथों में उनका भेद गुप्त है और उन पर फिर किसी की दृष्टि नहीं जाती। हमने अगम्य और अलक्ष्य का वर्णन किया है, उसका रहस्य के बेष रचना वाले नहीं समझते। हमने अलक्ष्य सत्पुरुष को दिखाया है किन्तु उसका रहस्य न वेद, न वेष रचनावले जानते हैं, ऐसा धर्मज्ञ समझते हैं।

॥ प्रश्न गुनुवाँ ॥ चौपाई ॥

स्वामी एक मोहिं समझाई। गुजरी सिला को कहौ बुझाई॥
सब भाखैं जल में जो तरिया। या बिधि कहौ मोर मन भरिया॥

अर्थ–हे स्वामी! एक बात मुझे समझाइये-जल में तैरती हुई शिला के विषय में समझाइए। सभी कहते हैं कि वह जल पर तैरती थी। इसे इस प्रकार बताएँ कि मेरे मन को विश्वास हो उठे॥

॥ उत्तर तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

या की मैं परतच्छ बताई। देखौ जाइ नजर से भाई॥
या की बिधि मैं तुरत बताऊँ। ज्यों बजार सौदा समझाऊँ॥
जस बजार में सौदा लीन्हा। परख तोल दाम तेहिं दीन्हा॥
अपने मन में साँची आई। पैसा दीन्ह गाँठि बँधवाई॥
ऐसा परचा ततत्र पेखौ। अपने नैन नजर से देखौ॥

अर्थ–हे भाई! मैंने इसकी प्रत्यक्षविधि बताई है और उसे जाकर अपनी दृष्टि से देखो, मैं सभी विधि तुरन्त बताता हूँ–जैसे बाजार में खरीददारी के लिए सौदे की तालिका। जैसे बाजार में कोई सौदा खरीदता है तो तौल को परखकर उसका मूल्य देता है। जब अपने मन में विश्वास हो उठता है तो पैसा देकर खरीदे गए सामान को बाँधवाकर गठरी बँधवा लेता है। ऐसा ही, ठीक परिचय उस परम तत्त्व का प्राप्त करो और अपने नेत्रों से उसे यथार्थ रूप में देखो॥

वोहि पानी वोहि पत्थर होई। वोहि पुनि राम लिखावौ सोई॥
राम लिखौ पत्थर के माईं। पानी डारि देखि लो भाई॥
जो पत्थर पानी नहिं बूड़ा। तौ तुम जानौ राम अगूढ़ा॥
पत्थर डूबै राम लिखे से। तौ तुम बुड़िहौ राम कहे से॥
ततवर करौ नजर से पेखौ। ये तो आज आँख से देखौ॥

संसय सोग सब झारि निकारौ। ले पत्थर पानी में डारौ॥
जो जल पत्थर रहि उतरानी। सिल गुजरी की साँची मानी॥
बूड़ै पत्थर राम लिखाना। अपने बूड़न की अस जाना॥
एक बिधी मैं और बताई। ता से देखौ सत्त बनाई॥
राम राम जेहि तुमहिं दृढ़ाओ। ले पत्थर वोहि हाथ लिखाओ॥
सोइ पथ्थर वोहि हाथ डरावै। जो बूड़ै झूठे कर गावै॥
नहिं तो और बिधी इक भांखौं। जैसी बिधी जुगत करि ताकौ॥
राम राम जग कहै अनेका। राम इष्ट जेहि जेहि करि देखा॥
सोइ सोइ हाथ सभन लिखवावौ। पत्थर लिखि पानी सोइ नावौ॥
एक एक बिधि बिधि से डारी। ये परचा सब देखौ झारी॥

अर्थ–वही पानी और वही पत्थर आज भी है और उस पत्थर पर वही राम शब्द आज भी लिखवा दो। पत्थर के ऊपर राम लिखकर उसे पानी में डालकर आज तुम देख लो। आज वह पत्थर यदि पानी में नहीं डूबता तो समझ लो कि राम अज्ञेय ब्रह्म तत्त्व है। यदि पत्थर पर राम लिखने से पत्थर डूब जाता है तो तुम भी राम कहने से भवसागर में डूब मरोगे। उस परमतत्त्व को दृष्टि का विषय बनाकर उसे तुम आँखों से देखो। जो भी तुम्हारे अन्त:करण में संशययोग है, उसे झाड़ कर निकाल दो और पत्थर को लेकर उसे पानी में डाल दो। यदि पत्थर जल के ऊपर उतराया रहा तो तैरने वाले पत्थर की बात सच समझो। राम लिखा हुआ पत्थर का डूबना तुम अपने को भवसागर में डूबना जैसे समझो।

मैं अब एक दूसरी विधि बतलाता हूँ, उससे तुम सत्य को वैसा करके देखो। जिस राम को तुम स्थिर तत्त्व के रूप में बताते हो उस पत्थर को लेकर आपने ही हाथ से लिखो। उसी पत्थर को उसी हाथ से डालो और यदि डूबता है तो स्वीकार करो कि यह कथन झूँठा है। यदि इस पर भी विश्वास नहीं है तो मैं एक अन्य विधि बतला रहा हूँ। यह जैसी विधि है, उसी प्रकार उसके लिए युक्ति करो। संसार में अनेकानेक व्यक्ति राम राम कहते हैं–और जिस भी व्यक्ति के इष्टदेवता राम हैं उन्हें देखो, उन सभी को हाथों से पत्थर पर 'राम-राम' लिखवा लो और उन्हें पानी में डाल दो। क्रम-शः एक एक करके उन्हें पानी में डालो और यह कार्य करके उनके परिणाम को देखो॥

या मै कोई परतीती होई। सब का परचा भिन भिन जोई॥
या मैं रहै भरम इक साथा। ये लिखि देखौ अपने हाथा॥
तुलसी पत्र की बिधी बताई। सोई बृच्छ बहुत जग माई॥
पत्र तोड़िकै परचा पेखौ। लिखि वोहि राम पत्र धरि देखौ॥
पत्र तोल में हलुक उठाना। तौ यहि बिधि झूठी करि जाना॥

अर्थ–सबके जो भिन्न-भिन्न पत्थर हैं, उनमें भी कोई विश्वास उत्पन्न होना चाहिए और इनमें भ्रम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है–चाहे उन्हें अपने ही हाथों से लिखकर ही तुम देख लो। तुलसीदास कहते हैं, वह पत्र की विधि भी बतलाते हैं और पत्रों के लिए तो बहुत-सारी विधियाँ हैं। वृक्ष के पत्रों को तोड़कर देखो और उस पत्र पर राम लिख करके उसे देखो। यदि पत्र पत्थर की तौल में हल्का पड़े तो समझ लो कि राम नाम शब्द में कोई गुरुता नहीं है और इस प्रकार राम नाम के इस रूप को झूँठा समझो।

॥ गुनुवाँ उवाच ॥ चौपाई ॥

तुलसी स्वामी सुनु बिख्याता। ये सब वाहि समय की बाता॥
वाहि समय में यह बिधि होती। आज कलू नहिं होइ यह भोती॥
रामराम जपि सिव अबिनासी। ये भी वाहि समय की बाती॥

अर्थ–हे स्वामी तुलसी साहब! इस विख्यात बातें उस समय की हैं। उस समय में यही विधि थी। आज कलियुग में, यह काम कहाँ सम्भव है। शिव भी राम नाम जप कर अविनाशी हो गए, ये सब उस समय की बातें हैं।

॥ प्रश्न तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

राम राम कौने बिधि कहिया। जा से सिव अबिनासी भैया॥
मुख से जप कीन्हा कछु औरी। ये गुनुवाँ बिधि कहौ बहोरी॥

अर्थ–उन्होंने राम राम किस विधि से कहा था, जिसके कारण शिव अविनाशी हो गए। उन्होंने अपने मुख से अन्य प्रकार का जप किया था, हे गुनवाँ मैं उसका वर्णन पुनः कहता हूँ॥

॥ गुनुवाँ उवाच ॥ चौपाई ॥

गुनुवाँ कहै सुनो हो स्वामी। मुख से जपि जपि राम बखानी॥
महादेव ने मुख जप कीन्हा। ये भया वाहि समय का चीन्हा॥

अर्थ– गुनुवाँ ने पुनः कहा कि हे स्वामी सुनें। मुख से राम-राम का जप करके उनका वर्णन किया। महादेव शिव ने राम का मुख से जप किया–यह तो उस समय के प्रमाण की बात है॥

॥ बचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

या में राम बड़ा नहिं होई। ये तो समय बड़ा भया सोई॥
राम कहे सिव नहिं अबिनासी। वे भये समय भाव बिधि बासी॥
ये तो समय बड़ा बिधि भाखी। राम बड़ा कहो केहि बिधि राखी॥
राम बड़ा जब जानै भाई। जल में पत्थर आज तराई॥
उनको बड़ा जबै हम जानें। आज लिखै पत्थर उतराने॥
समय भाव पत्थर उतराई। कहौ राम की कौन बड़ाई॥
कहौ राम से मुक्ति बताई। पुनि फिरि ले समया ठहराई॥
कभी राम को बड़ा बतावौ। कभी लेइ समया ठहरावौ॥
एकहि बात सत्त ठहरावै। तब सत हमरे मन में आवै॥

अर्थ–इस संदर्भ में राम बड़े नहीं होते और तुम्हारे कहने से यहाँ समय बड़ा है। राम कहने से शिव अविनाशी नहीं हुए, वे उस समय के प्रभाव से उस प्रकार के हुए हैं। मैं तो राम को तभी बड़ा मान सकता हूँ–जब आज की वे जल में पत्थर तैरा दें। उनको आज मैं तभी बड़ा समझूँगा जब पत्थर पर राम लिखने से वह आज भी उतरा चले। यदि समय के कारण पत्थर जल में उतराता है तो बताओ राम का क्या बड़प्पन है (यह तो समय का बड़प्पन है)। अभी तुमने राम से जोड़कर मुक्ति की बात कही है और फिर उसके बाद समय की बात करने लगे। तुम कभी राम को बड़ा कहते हो और कभी समय को बड़ा ठहराते हो। दो में से किसी एक बात में सत्य की स्थापना करो, तब मेरे मन में सत्य के प्रति निष्ठा उत्पन्न होगी।

॥ दोहा ॥

एक कहै दूजी कहै, दो दो कहै बनाय।
ये दो मुख का बोलना, घने तमाचे खाइ॥

अर्थ–पहले एक की बात कहते हो, फिर दूसरी बात बनाकर कहते हो और इस प्रकार एक सत्य के लिए दो-दो बातें करने वाला तमाचों के गहरी चोटें खाता है॥

॥ चौपाई ॥

॥ संवाद साथ गुनुवाँ बेटा हिरदै अहीर के॥

कहै तुलसी सुन गुनुवाँ भाई। समय बड़ा कै राम बड़ाई॥
या में एक सत्त करि भाखौ। एक बात झूठी करि राखौ॥
जो तुम कहौ राम सब तारा। परचा देखि न कहै लबारा॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे गुनुवाँ भाई! सुनो, समय बड़ा है कि राम बड़े हैं–इन दोनों में एक ही बात को सत्य समझो और दूसरी बात को झूँठी समझो। यह जो तुम कह रहे हो कि राम ने सबका उद्धार किया। परिचित तथ्यों को देखकर लबार भी ऐसी बातें नहीं कहते।

ऐसी बड़ी राम गति जेही। समया झूठ ताहि कर देई॥
राम से समय बड़ा है भाई। कहौ राम की कौन बड़ाई॥
समया झूठ राम करि डारै। ऐसी कहौ तो साँच बिचारै॥
समय राम की कला उड़ाई। तुम जपि मुक्ति कौन बिधि पाई॥
अपनी मुक्ति खोज नहिं पावौ। राम राम कहि जगत दृढ़ावौ।।
जो सच्चा तुम राम सुनावौ। तौ पत्थर पानी में नावौ॥
जब जानैं वोहि सच्चा रामा। पानी पत्थर आज तिराना॥
अपनी देखी कहौ न भाई। मुए गये की बिधी बताई॥
साँचा सोई मिलै जो आजी। मूए मुक्ति बतावै पाजी॥
जीवत मिलै सोई मत पूरा। मूए कहै समझ सोइ धूरा॥
अब सुन आगे बिधी बताऊँ। महादेव की बिधि समझाऊँ॥
महादेव राम नहिं जपिया। ये साखी झूठी तुम कहिया॥

अर्थ–इसका प्रमाण देखो, इसे लबार ही कहा है, यदि ऐसी ही बड़ी गति राम ने की है तो समय को तुम क्यों बड़ा कह रहे हो। हे भाई! यदि राम से समय बड़ा है तो बताओ की राम की श्रेष्ठता कैसी है? समय ने राम को भी झूँठा बना डाला है, यदि ऐसी बात है तो पंच लोग इस पर विचार करेंगे। समय ने राम की सम्पूर्ण आध्यात्मिक कलाओं को गायब कर दिया है फिर राम को जपकर तुम किस प्रकार मुक्ति प्राप्त करोगे। जब तुम अपनी मुक्ति नहीं खोज पा रहे हो फिर क्यों राम-राम कह कर उसमें संसार को फँसा रहे हो। यदि तुम राम को सत्य कहते हो तो उनका नाम पत्थर पर लिखकर उसे पानी में डालो। आज जब पानी के ऊपर पत्थर तैर जाए तो समझो कि उनका नाम सत्य है। उन राम के नाम तो तब सत्य जानो, जब पत्थर आज पानी के ऊपर तैर जाए।

हे भाई! अपनी स्थिति देखकर बातें न कहो, तुम तो बीते हुए समय और मृत्यु कवलित की बात कहते हो। सत्य वह है, जो आज प्राप्त हो और जो दुष्टजन हैं, वे मरने के बाद मुक्ति की बात कहते हैं।

जीवत-मुक्ति यदि मिले तो वही सत्य मत है, और कोई धूर्त ही मृत्यु के बाद उसे बताता है।

अब तुम ध्यान देकर सुनो, मैं उसकी विधि बतलाता हूँ और शिव के रहस्य को भी समझा रहा हूँ। महादेव शिव ने राम का जप नहीं किया था और यह बात तुम असत्य ही कह रहे हो।

महादेव तो जोग कमाया। राम राम जोगी नहिं गाया॥
उन अपनी इंद्री मन जीता। मुद्रा साधी पाँच पुनीता॥
स्वांसा साधि गगन मन धावा। उन साधि कै गगन लगावा॥
चाचरि भूचरि भावक जानी। खेचरि मिलियों पाँच बखानी॥
आगे अगोचरि साखी सुनाऊँ। ऐसे जोगी जोग जनाऊ॥
जोग किया जब भये अबिनासी। राम राम कहे काल की फाँसी॥
करि के जोग उन जोति समाने। जोति दृष्टि मुक्ती पद जाने॥
मुक्त भोग भोग भया भाई। पुनि फिरि फिरि चौरासी पाई॥
संत मते की राह न जानी। या से भरमे चारो खानी॥

अर्थ–महादेव ने योग की साधना की और कोई योगी राम-राम नहीं कहता। वे अपने मन तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करते हैं और अपनी पाँच पवित्र मुद्राओं को साधते हैं। श्वास को साध कर मन को शून्याकाश में दौड़ाते हैं और उसे साधकर मन को आकाश में रमा देते हैं। उनकी मुद्राएँ चाँचरि, भूचरि, भावक, खेचरि तथा सबका समन्वय में पाँच रूपों में समझो। आगे में, उनकी अगोचर मुद्रा का साक्ष्य सुना रहा हूँ–और इनके द्वारा मैं योगियों के योग की चर्चा कर रहा हूँ। शिव ने जब योग साधना की तो वे अविनाशी बन गए। इसलिए राम-राम कहना गले में काल का फंदा डालना है। योग करके वे ज्योति में समाविष्ट हो उठे। इसलिए ज्योति स्वरूप की मुक्ति समझो।

यदि योग से युक्त व्यक्ति पुनः भोग में प्रवृत्त होता है, वह पुनः पुनः चौरासी योनियों को प्राप्त करता है। संत के मत का मार्ग इन्होंने नहीं जाना है, इसलिए ये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की चारों स्थितियों में भकटते रहते हैं।

॥ प्रश्न गुनुवाँ ॥ चौपाई ॥

हे स्वामी तुम सत्त बताई। सब मोरे मन में आई॥
एक बिधी मोहि बरनि सुनावौ। बालमीकि बिधि साखी बतावौ॥
अजामील गति कैसी भैया। सो बिधि मो को बरनि सुनैया॥

अर्थ–हे स्वामी! आपने सच कहा है, यह बात मेरे मन में उतरी है। यह एक विधि उन्हें वर्णित करके सुनाएँ। वाल्मीकि के रहस्य का साक्ष्य बतायें। अजामिल की मुक्ति गति कैसे हुई और यह भी प्रक्रिया मुझे समस्या कर बताएँ॥

॥ उत्तर तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

कहै तुलसी सुन गुनुवाँ बाता। बालमीक की सुन बिख्याता॥
बालमीक जप उलटा कहिया। उलटा जपत मुक्ति नहिं भैया॥
सूधा जपि जपि जन्म सिराना। मुक्ती को सुपने नहिं जाना॥
उलटा जपत मुक्ति जो होती। सुलटे मिलन जपा जप थोथी॥
जीवत मुए मुक्ति नहिं पाई। ये जग झूठी जाल बिछाई।

अजामील का भाखौं लेखा। सुन गुनुवाँ अपने मन पेखा॥
नारायन जेहि सुत का नामा। ता कौ मोहँ बंध बस जामा॥
अपने सुत से मोह जो कीन्हा। मरते नाम नरायन लीन्हा॥
मुक्ति भी अस कहैं बुझाई। या की बिधि कहूँ समझाई॥
जग में पुत्र सभन के होई। राम कृष्ण नारायन सोई॥
गोबिंद नाम गोपाल मुरारी। येहि बिधि पुत्र नाम जुग चारी॥
मोह बंध बस नाम पुँकारी। नाम पुत्र जग होत उबारी॥
येहि बिधि मुक्ति होत जो भाई। तौ भौ में जिव एक न जाई॥
ये सब जानौ झूठी बाता। राम काल जिव कीन्हा घाता॥
और तुमने ध्रू मुक्ति बतवा। सो तै गगन दृष्टि में आवा॥
ध्रू तारे की मुक्ति बतावौ। सब तारे की विधि समझाओ॥
तारा गगन मुक्ति जो होती। तारा टूट गिरै भुँइ जोती॥
जो तुम ध्रू को अटल बताया। गगन फूटि ध्रू कहाँ समाया॥
पाँच तत्त को होइहै नासा। कहौ ध्रू ने कहँ कीन्हा बासा॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि हे गुनुवाँ मेरी बातें सुनो। वाल्मीकि की प्रसिद्ध बात मुझसे सुनो। वाल्मीकि ने उलटा जप किया। उस उलटा जप से उन्हें मुक्ति नहीं मिली थी। सीधा जपते-जपते उनका सारा जन्म बीत गया और इस मुक्ति को स्वप्न में भी नहीं समझा। यदि उलटे नाम के जपने से किसी की मुक्ति होती तो सीधे जप से मुक्ति मिलने की बात थोंथी अर्थात् झूँठी है। जीवित रहने पर तो वाल्मीकि को मुक्ति नहीं मिली और उनके विषय में कही गई थे बातें असत्य हैं।

अब मैं अजामिल की बात कहता हूँ और हे गुनुवाँ? तू अपने मन में विचार करके देखो। उसके पुत्र का नाम नारायण था। उसके मोह में उसका समय बँधा था। उसने अपने पुत्र से जो मोह कर रखा था, इसीलिए मृत्यु के अन्तिम क्षण में उसके नारायण का नाम लिया। सभी यही समझ कर बताया गया है।

संसार में सभी के पुत्र होते हैं और उनके नाम भी राम, कृष्ण तथा नारायण रखे जाते हैं। गोविन्द, गोपाल, मुरारी आदि नाम चारों युगों में हमें मिलते हैं। मोह से बँधा हुआ व्यक्ति जब नाम की पुकार करता है तो क्या पुत्र का नाम लेने से संसार से उद्धार हो उठता है और हे भाई! यदि इस प्रकार से मुक्ति होती एक भी जीव भवसागर में न जाता॥

इन सारी बातों को तुम झूँठ ही समझो राम रूपी काल हमेशा जीव की मृत्यु का कारण बनता है। इसके अतिरिक्त तुमने ध्रुव की मुक्ति का वर्णन किया है और उसी से वह आकाश में 'ध्रुवतारा' बनकर लोगों की दृष्टि में आता है। तुमने ध्रुवतारे की मुक्ति बतलाई है, अन्य तारों का भी रहस्य समझाओ। यदि आकाश में तारे के रूप में किसी की मुक्ति होती तो तारा टूटता है और उसका प्रकाश पृथ्वी पर गिर पड़ता है। यदि तु ध्रुव को अटल बताते हो तो आकाश से टूटने पर वह पृथ्वी में कहाँ समा जाता है। जब पाँचों तत्त्वों का विनाश अनिवार्य है तो बताओ, ध्रुव ने स्वामी निवास कहाँ कर रखा है?

॥ दोहा ॥

चंद्र मरै सूरज मरै, मरिहैं जमीं अकास॥
ध्रू पहलाद भभीषना, परे काल की फाँस॥

अर्थ–चन्द्रमा मृत्यु को प्राप्त होगा, सूर्य नष्ट होगा, पृथ्वी और आकाश भी मरणधर्मा हैं और इन्हीं की भाँति ध्रुव, प्रह्लाद तथा विभीषण भी मृत्यु के फंदे में फँसें थे॥

॥ चौपाई॥

सुन गुनुवँ सब बिधी बताई। ये सब की तोहि भाखि लखाई॥
अब पहलाद का भाखौं लेखा। सो तुम सुनकर करौ बिबेका॥

अर्थ–हे गुनुवाँ! सुनों, मैंने सारी बातें बता दी है–और सारी बातों को कहकर दिखा दिया है। अब मैं प्रह्लाद की बात कह रहा हूँ और उसे सुनकर तुम उस पर विचार करो।

दस औतार काल के भाई। तामे नरसिंघ है दस माहीं॥
हरनाकुस का उदर बिदारा। य जानौ सब काल पसारा॥
वे दयाल एक सब माहीं। वो कहौ केहि का मारन जाई॥
हरनाकुस कौ मारि बिदारा। पुनि पहलाद राज बैठारा॥
राजभोग जिन कीन्हा भाई। सो तेहि पुत्र बिलोचन गई॥
वे लोचन केवलि भयौ सोई। जा को बावन बाँधे जोई॥
जो मुक्ती वा की होइ जाते। बली छुड़ावन केहि विधि आते॥
आवांगवन मुक्ति नहिं भाई। बली छुड़ावन कस कस आई॥
भागवत में देखौ यह साखी। बली काज आये अस भाखी॥
जो प्रहलाद मुक्ति को जाता। आवागवन केहि कारन आता॥
सहाय करी नरसिंघ बतावा। पिता मारि राज जिन पावा॥
राज करै सो नरकै जाई। कस कस ता की मुक्ति बताई॥

अर्थ–काल के दस अवतार हैं और इन दसों में एक नरसिंह हैं इन्होंने हिरणाकश्यप का हृदय विदीर्ण किया था–जिसे समझो कि यह सब काल का प्रसार था। सब में एक भाव से रहने वाले परमात्मा अत्यन्त उदार हैं और बताओ वह किसी को क्यों मारने जाएँगे। हिरणाकश्यप को मार कर विदीर्ण कर दिया और पुनः प्रह्लादको राजगद्दी पर बैठाया। हे भाई जिन प्रह्लाद ने राजभोग किया और उनके पुत्र विलोचन हुए। वह तो बिना आँख (बुद्धि) के हुए और जिसको बावन ने बाँध लिया। यदि उसकी भी मुक्ति हो जाती तो राजा बलि उसे बन्धनमुक्त करने क्यों जाते? उनकी आवागमन (जन्म-मृत्यु) से मुक्ति नहीं हुई और यदि हो जाती तो बलि उन्हें बन्धन मुक्त करने के लिए क्यों जाते। भागवत पुराण में इस साक्ष्य को देखो, वहाँ कहा गया है कि मुक्ति दिलाने के लिए बलि आए थे। यदि प्रह्लाद की मुक्ति हो जाती तो यह आवागमन क्यों बना रहता। कहा गया है कि नरसिंह ने प्रह्लाद की सहायता की और उनके पिता हिरण्यकश्यप मारे गए तथा उन्होंने राज्य प्राप्त किया। जो राजभोग करता है, वह नरक में जाता है– फिर उसकी मुक्ति कैसी! यह गलत है।

जो नरसिंघ जिवत ले जाता। तौ ता की हम मानैं बाता॥
राज थापि तेहि भोग करावा। भोग भोग भौ खानैं आवा॥
ता की मुक्ति साखि बतलावौ। कहि झूठी झूठी समझावौ॥
सुवा पढ़ावत गनिका तारी। सहजै होत जक्त सब मुक्ती॥
सुवा सुवा घर घर में होते। तौ मुक्ती का सोच न करते॥

धू तप की तुम साखि बताई। गोपीचंद भरथरी भाई॥
पढ़ पढ़ सुवा मुक्ति जो होते। तौ पुनि राज काहे को तजते॥
धू को तप की बिधी बताया। राजछाँड़ि तन खाक मिलाया॥
गनिका मुक्ति सहज बतलावौ। धू जी राज गये किमि गावौ॥
कभि सुवा पढ़ते सहज बतावा। कभि कभि कष्ट तपस्या गावा॥
ये तौ बिधी मिली नहिं भाई। ये सब झूठ झूठ सी गाई॥

अर्थ–यह नरसिंह उन्हें 'जीते जी ले जाते' तब हम उनकी बातें मान लेते। नरसिंह ने उन्हें राज्य देकर भोग कराया और भोग से तो व्यक्ति भवसागर के खानि में प्रवेश करता है। तुम उनकी मुक्ति की साक्षी दो और अपनी झूठी-झूठी बातें कह कर समझाओ जो अविश्वासनी हैं।

ईश्वर ने यदि तोते को पढ़ाती हुई गणिका का उद्धार किया तब तो संसार के लोगों की सहज की मुक्ति हो जाती। सारे तोते घर-घर में पाले जाते और कोई व्यक्ति मुक्ति की चिन्ता न करता। तुमने ध्रुव के तपस्या की साक्षी दी है, इसी तरह गोपीचन्द और भरथरी भी थे क्या? यदि तोते के रामनाम पढ़ते ही सुनते वालों की मुक्ति होती–तो (भरथरी तथा गोपीचंद आदि) राज्य को क्यों त्यागते (तोता ही पाले रहते)। तुमने ध्रुव की तपस्या विधि का एक ओर वर्णन किया और बताया कि राज्य छोड़कर शरीर को मिट्टी बना डाला। दूसरी ओर, बिना श्रम के सहज ही गणिका की मुक्ति की बात करते हो और दूसरी ओर कहते हो ध्रुव राज्य छोड़कर जंगल में गए। कभी-कहते हो मुक्ति तोता के रामनाम कहने मात्र से सहज हो जाती है और कभी-कभी तपस्या के कष्टों का गान करते हो। ये दोनों विधियाँ मेल नहीं खातीं, लगता है, ये बाते झूठमूठ की ही कही गई हैं।

॥ सोरठा ॥

सुन गुनुवाँ ये बात, राम काल जग में फँसा॥
बसा करम के माहिं, लसा खानि चारौ भरी॥

अर्थ–गुनुवाँ मेरी यह बात सुनो, राम काल के रूप में ये संसार में फँसा है, वह कर्मों के मध्य में निवास कर रहा है, और सभी कर्मों के भवसागर की खानि में स्थित है।

॥ गुनुवाँ उवाच ॥ चौपाई ॥

हे स्वामी सत सत तुम भाखी। समझि परा बूझी सब साखी॥
ये सब काल जाल कर लेखा। अपने मन में किया बिबेका॥
पुनि गुनुवाँ बोला अस बानी। महूँ आप चरनन लपटानी॥
चरन दास जानौ मोहि चेरा। किरपा दृष्टि मोहिं तन हेरा॥
मैं पुनि रहौं चरन के लारा। जीव काज मम करौ सुधारा॥
अब मैं सरन आपु की लीन्हा। राम काल धोखा यह चीन्हा॥

अर्थ–हे स्वामी! आपने सही-सही कहा है, आपके सारे साक्ष्यों को समझ लिया है। ये सब काल के जाल के संदर्भ हैं, ऐसा अपने मन द्वारा मैंने समझ लिया है। फिर, गुनुवाँ इस प्रकार से कहा कि मैं भी के चरणों में पढ़ रहा हूँ। मुझे भी आप अपने चरणों का दास और किंकर समझें और मेरी ओर कृपा-दृष्टि करके देखें। मैं अब तो आपके चरणों में ही संसक्त रहूँगा। मेरी जीवात्मा के सुधार के लिए कोई उपाय करें। अब मैंने आपकी शरण ले ली है और यह पहचान लिया है कि राम काल हैं और और संसार के लिए भ्रम उत्पन्न करने वाले भी।

॥ बचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

अब तुलसी अस करी बखानो। हिरदे की संगत पहिचानो॥
निस दिन हिरदे संग निहारौ। हिरदे से होइहै निरबारौ॥
मन को थिर कर बूझौ बाता। मन थिर बिना न आवै हाथा॥

अर्थ–उसे सुनकर तुलसी साहब ने यह कहा कि अपने पिता हिरदै की सत्संगति समझो। प्रतिदिन हिरदै के साथ रहकर उन्हें देखो और पिता हिरदै द्वारा ही आपको हल प्राप्त होगा। मन को स्थिर करके बातें समझो। बिना मन को स्थिर किये, कोई बात समझ में नहीं आएगा।

इन्द्री मन थिर सूरति हेरो। तब भौजल से होइ निबेरो॥
ये हिरदे रहै हमरे पासा। तन मन बिधी रहो येहि दासा॥
ये सत संगत सगरी जानी। या से प्रीति करौ पहिचानी॥
हिरदे का तुम भेद न पाई। सूरति पाइ चरन चित लाई॥
या से पिता भाव नहिं मानौ। सूरति सैल चरन में आनौ॥

अर्थ–इन्द्रिय एवं मन को स्थिर करके सुरति समाधि को खोजो, तभी इस भवसागर से निवृत्ति होगी। यह हिरदै हमारे पास रहेंगे और शरीर, मन से विधिपूर्वक तुम इनके दास बने रहो। इन्होंने सत्संगति द्वारा सब कुछ समझ लिया है, इसलिए इन्हें भलीभाँति पहचान करके इनसे प्रेम करो। अपने पिता हिरदै का रहस्य तुम समझ नहीं पाये, इनसे सुरति समाधि तत्त्व पाकर इनके चरणों में चित्त लगाना। इन्हें अब पिताभाव से न स्वीकार करें और इनके चरणों में ही सुरति समाधि के दुर्गम शिखर को ले आओ।

॥ हिरदे उवाच ॥ चौपाई ॥

तब हिरदे बोला अस बानी। अब चालन घर कहूँ बखानी॥
ये गुनुवाँ परसाद कराऊँ। पुनि सिर नाइ चरन में धाऊँ॥
अस कहि दीन डंडवत कीन्हा। चरन पाइ मारग को लीन्हा॥

अर्थ–तब हिरदै ने ऐसी बात कही कि अब घर चलने के लिए आज्ञा दें। इस गुनुवाँ से प्रसाद आदि करा कर पुनः सिर झुकाकर इसे चरणों में ध्यान करने के लिए कहूँ। ऐसा कहकर उस गरीब ने दण्डवत् किया और चरण स्पर्श करके अपना मार्ग थाम्हा॥

॥ प्रश्न गुनुवाँ ॥ चौपाई ॥

तुलसी स्वामी अरज हमारी। किरपा करौ कहौ निरवारी॥
हिरदे की मोहिं बिधी बताई। हिरदै पार समझ मोहिं आई॥
अस बिस्वास मोर मन आवा। या की गती कहौ परभावा॥
मैं स्वामी निज दास तुम्हारा। ये कहिये बूझौं निज सारा॥

अर्थ–हे स्वामी! तुलसी साहब! मेरी एक प्रार्थना है, आप कृपा करके इसका निराकरण करें। आपने हिरदै की विधि मुझे समझा दी और वह हिरदै के आगे है, ऐसा मेरी समझ में आया है। इस प्रकार का विश्वास भाव मेरे मन में उत्पन्न हुआ है, उसके ज्ञान और प्रभाव का वर्णन करें। हे स्वामी मैं आपका दास हूँ–मुझे उसे बताएँ–जिससे मैं इसके सार तत्त्व को समझूँ॥

॥ उत्तर तुलसी साहिब चौपाई ॥

तब तुलसी बोले यहि भाँता। हिरदे भेद सुनाऊँ बाता॥
इन सतसंगति बहु बिधि कीन्हा। संत चरन में रहे अधीना॥
दीन बिधी और गुरुमत लीन्हा। संत चरन घट अंतर चीन्हा॥
सूरति लीन अधर रस माती। का पूछौ हिरदे की बाती॥
सतसंगति बिधि सगरी जाना। सूरति सैल फोड़ि असमाना॥
दस दिस पार सार सब जाना। नौलख कँवलपार पहिचाना॥
मानसरोवर बेनी तीरा। जल प्रयाग बहै निरमल नीरा॥
ता में न्हाई चढ़े असमाना। सतगुरु चौथे पार ठिकाना॥
निसि दिन सैल सुरति से लेखा। सुरति नाम करे निस दिन मेला॥
अष्ट कँवल दल गगन समाई। सहस कँवल पर तेहि की राही॥
ता के परे चार दल लीन्हा। द्वै दल जाइ दोइ में कीन्हा॥

अर्थ–इसे सुनकर तुलसीसाहब इस प्रकार बोले कि मैं हिरदै को रहस्य की से सुनाता हूँ। इन्होंने अनेक प्रकार से सत्संगति की है और अनेक सन्तों के चरणों के अधीन रहे हैं। दैन्य विधि से इन्होंने गुरुमंत्र लिया है और सन्त चरणों को अपने हृदय में धारण कर रखा है। ये सदा सुरति ध्यान में लीन और अन्तरात्मा के रस में मस्त रहे हैं–तुम हिरदे की क्या बातें पूछ रहे हो। सत्संगति द्वारा इन्होंने सम्पूर्ण रहस्यों को समझ लिया है सुरति के शिखर को तोड़कर इन्होंने शून्याकाश में समाधि ली है। इन्होंने वहाँ दसों दिशाओं का सार तत्त्व और उसके पार के रहस्य को समझ लिया है और उस पर स्थित नौ लक्ष्य दल वाले कमल को पहचान रखा है। मानसरोवर के पार त्रिवेणी के तट पर प्रयाग भूमि में निर्मल जल बहता है, उसमें स्नान करके शून्याकाश में इन्होंने प्रवेश किया है–जहाँ चौथे पद के पार सत्गुरु का स्थान है? ये रात-दिन सुरति शैल पर क्रीड़ा करते रहते हैं और प्रतिदिन नाम और सुरति के बीच मेल मिलाप करते रहते हैं। ये शून्याकाश के अष्टदल कमल में प्रवेश करते हैं–और सहस्त्रदल कमल का मार्ग उसी पर है। उसके पार चार दलों का कमल है।

यहि बिधि रहै दिवस अरुराती। जानै कोइ न इनकी बाती॥
कोउ न भेद जान घर माईं। यह रहै सूरति अधर लगाई॥
ऐसे कई दिवस गये बीती। ता पाछे भइ ऐसी रीती॥
चलि हिरदे पुनि घर को जाई। घर में तिरिया पुत्र रहाई॥
रात बास घर अपने कीन्हा। भोजन कर पुनि कीन्हा सैना॥
पुनि पुनि निसा गई अधराती। चढ़ि गई सुरति सैल रसमाती॥
ता समय तिरिया कीन्ह उपावा। रोग सोग अपना दुख गावा॥
जब हिरदे मन कीन्ह बिचारा। ये गृह साल जाल है न्यारा॥
अस मन में कुछ भई उदासी। पुनि तब से रहे हमारे पासी॥

अर्थ–और फिर उसमें से दो दलों में प्रवेश का मार्ग है, जहाँ ये जाते हैं। इसी प्रकार वे रात दिन रहते हैं और कोई भी व्यक्ति इनकी बातें नहीं समझ पाता था। इनके घर का कोई भी व्यक्ति इनका रहस्य नहीं समझता था और ये हिरदै अपना मन सुरति समाधि में लगाए रहते थे। इसी प्रकार, कई दिन बीत गए–

उसके बाद कुछ ऐसी घटना घटी। हिरदे वहँ से चलकर घर में गए जहाँ इनकी पत्नी तथा पुत्र थे। रात्रि में इन्होंने अपने घर में निवास किया और भोजन करके विश्राम किया। धीरे-धीरे अर्धरात्रि बीत गई और उनका मन आनन्द से परिपूर्ण सुरति शैल पर चढ़ गया। उसी समय उनकी पत्नी ने कुछ उपाय करके अपने रोग-शोक का वर्णन किया–तब हिरदै ने यह विचार किया कि यह गृह कष्ट का भारी जाल है। ऐसा सोचकर उनके मन में थोड़ी उदासीनता आई और तबसे ये हमारे पास आकर रहने लगे।

॥ गुनुवाँ उवाच ॥ चौपाई ॥

तुलसी स्वामी बिधी बताई। हिरदे की कछु अगम सुनाई॥
हिरदे पार सार गति पाई। तुलसी स्वामी अगम लखाई॥

अर्थ–हे तुलसी साहब! आपने आध्यात्मिक विधि समझाई और अपने हृदय में स्थित अगम्य ज्ञान के विषय में सुनाया। मैंने आपके उपदेश से हृदय के पार स्थित सार तत्त्व को प्राप्त कर लिया और तुलसी साहब आपने तो अगम्य तत्त्व दिखा दिया।

हाल अभ्यास तीनों पंडितों का

॥ नैनू उवाच ॥ चौपाई ॥

इतने में पंडित चलि आई। करो डंडवत परसे पाँई॥
स्यामा नैनू माना नामा। तीनों मिलि बैठे वोहि ठामा॥
पुनि नैनू ने अरज बिचारी। स्वामी तुम चरनन बलिहारी॥
बाम्हन जाति मान मद भारी। स्वामी तुमने लीन्ह उबारी॥
अब मैं अपनी बिधी बताऊँ। स्वामी सुनिये चित कर भाऊ॥
चमकै बीज अरु गगन दिखाई। अंदर स्वामी फैलत जाई॥
पाँच तत्त रंग भिन भिन देखा। कारा पीरा सुरख सपेंदा॥
और जंगाल रंग तेहि माईं। तेहि बिधी पाँचौ तत दरसाई॥
ता से सुरति भिन्न होइ खेली। तेहि के आगे चली अकेली॥
सहस कँवल से न्यारी जाई। सेत दीप द्वारे के माईं॥
ता से चली निकर होइ न्यारी। देखा सब ब्रह्मंड पसारी॥
नैनू यह बिधि बिधी बताई। तुलसी सन्मुख जाइ सुनाई॥
तुम्हारी कृपा और कछु पैहौं। पुनि चरनन में आनि सुनैहौं॥
हम जड़ जीव बिद्या के माते। बाम्हन जाति बुद्धि में राते॥
पढ़ि पढ़ि कै हम जनम गँवावा। संतन सन्मुख राखि दुरावा॥
मैली बुद्धि ज्ञान मति छोटा। संतन से मन राखा मोटा॥
ता से बिधी भेद नहिं पाई। अब स्वामी तुम सब दरसाई॥
तुम्हरी कृपा नजरि बिधि सारी। बिधि बिधि देख परी गतिन्यारी॥

अर्थ–इसी बीच पंडितगण आ गए और उन्होंने दण्डवत् करके उनके पाँवों का स्पर्श किया। उनके नाम श्यामा, नैनू तथा माना थे और तीनों मिलकर उस स्थान पर बैठ गए। उसके बाद नैनू ने यह निवेदन किया कि हे स्वामी! मैं आपके चरणों की बलि जाता हूँ। मैं जाति का ब्राह्मण हूँ, इसीलिए मेरे मन में

अत्यधिक मान का मद भरा हुआ है—हे स्वामी! आपने उससे मेरा उद्धार कर लिया। अब मैं अपनी दशा आपको बताता हूँ। हे स्वामी! आप ध्यान देकर मेरी भावनाओं को सुनें।

चित्त के आकाश में बिजली चमकती है और शून्याकाश दिखाई पड़ता है और वह अन्दर-ही-अन्दर फैलता जाता है। मैंने पांच तत्त्वों को भिन्न-भिन्न रंगों में देखा है—काला, पीला, सुर्ख, सफेद और एक का रंग हरा (जंगाल) है और इस प्रकार के पाँचों तत्त्व दिखलाई पड़ते हैं। सुरति समाधि में इनसे भिन्न होकर क्रीड़ा की ओर उसके आगे मेरा आत्मचेतना आगे चल पड़ी। फिर वह, सहस्त्रदल कमल से अलग गई और श्वेत दीप के द्वार पर पहुँच गई। फिर उससे भी अलग होकर वह निकल चली और फिर मैंने देखा कि वह सम्पूर्ण ब्रह्मांड में पसरी हुई है। नैनू पंडित ने मुझे इस प्रकार की विधि बताई थी और कहा था कि इसे जाकर तुलसी साहब को सुनाओ।

आपकी कृपा से मैं और कुछ पाऊँगा और आगे का अनुभव आपके चरणों में आकर सुनाऊँगा। हम लौकिक विद्या के घमण्ड में भूले जड़ जीव हैं और जाति के ब्राह्मण है और बुद्धि से पागल हो उठे हैं।

अध्ययन कर-करके ही इसने अपना सम्पूर्ण जन्म गँवा दिया और सन्तों के सामने अपने को छुपाए रहा। मेरी बुद्धि मैली है, ज्ञान तथा मति छुद्र है क्योंकि सन्तों के साथ मैं मोटे मन (दुर्भावपूर्व) रहा। इसके कारण इस रहस्य का निवारण नहीं हुआ और हे स्वामी! अब तो आपने सब कुछ दिखा दिया। आपकी ही कृपादृष्टि मैंने सारा रहस्य समझ लिया और यह ज्ञान नानाभेदों तथा नाना रूपों में मुझे दिखाई पड़ा है॥

॥ स्यामा उवाच ॥ चौपाई ॥

तब स्यामा बोला अति दीना। मन बुधि चित चरनन में लीन्हा॥
तुलसी स्वामी मैं बलिहारी। तुम्हरे चरनन में सुख भारी॥
जिन जिन तुम्हरे चरन निहारा। सो सो उतरे भौजल पारा॥
जो जो चरन और कोउ धरिहैं। भौ के माहिं कभी नहिं परिहै॥
ये मोरे मन सत कर भापा। तुम्हरे चरन छूटि जम फाँसा॥
हे दयाल तुम किरपा कीन्हा। मेरी सुरति करी लौ लीना॥
होत उजास जोति हिये माईं। छिनछिन सुरति ताहि में लाईं॥
जोति फाड़ सूरति गइ आगे। मानौ सुरति द्वार पर लागे॥
द्वार बैठि देखा हिये माईं। चंद और सुरज गगन सब ठाईं॥
घट में देखा अगम बिलासा। सो सब भाखूँ तुम्हरे पासा॥
अब आगे जो परचा पाऊँ। पुनि चरनन में आनि सुनाऊँ॥

अर्थ—इनके पश्चात् श्याम पंडित अत्यन्त दीन होकर बोले, और मन, बुद्धि तथा चित्तपूर्वक उन्हें उनके चरणों में लगाया—हे स्वामी! जिन-जिन लोगों ने आपके चरणों को देखा वे सब भवसागर के पार उतर गए हैं। यह मेरे मन ने सही-सही निश्चित किया है कि आपके चरणों में रहने पर यह यमफाँस, छूट जाएगा। हे दयालुः आपने कृपा की—मेरी सुरति दशा को समाधि में लीन कर दी। हृदय के मध्य ज्ञान ज्योति से प्रकाश हो उठा है और क्षण-क्षण सुरति में उसी मन को लगाकर रहता हूँ ज्योति सुरति समाधि को फाड़कर आगे चली गई मानों वह सुरति शून्याकाश के द्वार पर लग गई है। उस द्वार पर बैठकर हृदय के मध्य यह देखा है कि चन्द्रमा, सूर्य तथा शून्याकाश सभी के सभी अपने स्थानों पर हैं। इस घटाकाश में मैंने अगम्य तत्त्व (निर्गुण तत्तव) की लीला देखी और अब आपके पास आकर उनका वर्णन कर रहा हूँ।

अब इसके बाद की आध्यात्मिक प्रक्रिया का परिचय आपसे प्राप्त करके उससे सम्बद्ध अनुभव को आपके पास आकर सुनाऊंगा।

स्वामी हमें दया नित कीजै। निस दिन चरन सरन रखि लीजै।।
स्वामी हमने अपत्ति बिचारी। तुम दयाल कछुमन नहिं धारी॥
हमने टहल कछू नहिं कीन्ही। तुमने बस्तु अमोलक दीन्ही॥
सास्तर नाहिं न बेदन माहीं। और पुरान येहि जानत नाहीं॥
ब्रह्मा या को अंक न चीन्हा। येहि बिधि औतारन से भिन्ना॥
आतम ब्रह्म से यह गति न्यारी। चीन्है कोई कोइ संत सँवारी॥
संत चरन जोई जिव जाना। ता का आवागमन नसाना॥
संत चरन जो जो चीन्है नाईं। पुनि पुनि चौरासी भरमाई॥
अस अस समझि परायह स्वामी। सो दयाल किरपा से जानी॥
संतन की गति अगम अपारा। हम पंडित लघु पावैं न पारा॥

अर्थ–हे स्वामी! आप मेंरे ऊपर नित्य दया करें और रात दिन के लिए आप मुझे अपने चरणों में रख लें। हे स्वामी! आप हमारी आपदाओं पर विचार करें–आप दयालु है, मन के अन्तर्गत कोई दुर्भाव नहीं रखते। हमने तो आपकी कोई सेवा भी नहीं की है–किन्तु आपने (अनायास ही) अमूल्य वस्तु का दान किया है। जो कुछ ज्ञान आपने दिया है, वह न शास्त्रों में है और न वेदों में तथा पुराण भी इस ज्ञान को नहीं जानते। ज्ञान के इन अर्थों को ब्रह्मा भी नहीं पहचानते और इस प्रकार यह अवतारों के ज्ञान से भिन्न है। आत्मा एवं ब्रह्म से यह गति विलक्षण है। जिसे कोई-कोई ही संत अच्छी तरह से पहचानता है। सन्तों के चरणों में रहकर जो भी व्यक्ति इसे पहचानते हैं उसके जन्म-मृत्यु का आवागमन समाप्त हो उठता है। संतों के चरणों में रहकर भी जो इस ज्ञान को नहीं पहचानता, वह पुनः पुनः चौरासी योनियों में भटकता रहता है। हे स्वामी जी! यह जिस प्रकार से हमने समझा है, वह आपकी कृपा का ही फल है। सन्तों की गति अगम्य एवं अपार है--और मुझ जैसे तुच्छ पंडित उसका पार नहीं पा सकते।

॥ माना उवाच ॥ चौपाई ॥

माना कहै जोर दोउ हाथा। चरनन माहिं डारि कै माथा॥
स्वामी हम कीन्ही अजगूती। मारन काज कीन्ह मजबूती॥
तुम दयाल कछु ख्याल न भाखा। मन से द्रोह कछू नहिं राखा॥
हम औगुन कहि कर कर भाखा। तुम स्वामी चित कछू न राखा॥
लड़का कपूत बाप देइ गारी। पितु औगुन तेहि नाहिं बिचारी॥
तेहि समझाइ मिठाई दीन्हा। पुनि पुनि ताहि,बोंधकर लीन्हा॥
येहि बिधि भाँति भई गति मोरी। स्वामी से कीन्ही बरजोरी॥

अर्थ--माना पंडित दोनों हाथों को जोड़कर और उनके चरणों में अपना सिर डालकर कहते हैं। हे स्वामी! हम लोगों ने आपके विरुद्ध षडयंत्र (अजगूती) किया था और आपको मारने के लिए शक्ति बना ली थी। हे स्वामी! आप परम दयालु हैं, इस प्रकार का किसी तरह का प्रश्न नहीं रखा और अपने मन में किसी प्रकार का द्रोह भी नहीं रखा। हमने आपके अवगुणों का कह कहकर वर्णन किया किन्तु हे स्वामी! आपने अपने चित्त में कुछ भी नहीं रखा।

वह पुत्र कपूत है, जो अपने पिता को गाली देता है, किन्तु पिता उसके उस अवगुण के प्रति विचार

नहीं करता। वह उसे गाली के बदले समझाकर मिठाई देता है और पुनः पुन) उसे समझाता रहता है। इस प्रकार की मेरी भी दशा हुई है कि मैंने स्वामी जी से बरजोरी की।

॥ वचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

तुलसी माना मनहि बिचारी। ये बिधि होति आइ जुग चारी॥
संत जगत दोऊ के माईं। येहि बिधि आदि अंत चलि आई॥
अब या का बरतंत सुनाऊँ। बिधि दृष्टांत बहुरि दरसाऊँ॥
संत जगत तारन बतलावैं। सब जग पुनि उनको मारन धावै॥
परमारथ की राह बतावैं। सब जग उनकी निंदा लावै॥
साधू जीव करैं उपकारा। जिव मत हीन उन्हीं को मारा॥
जस बालक फुड़िया दुख माईं। माता चहै नीक होइ जाई॥
पकि फुड़िया बालक दुख पावै। माता फोड़न ता को चावै॥
बालक माता मारन धाई। वो जानै मो को दुखदाई॥
माता कहै नीक होइ जावै। तब मोर हिरदा माहि जुड़ावै॥

अर्थ–तुलसी एवं माना दोनों विचार करो कि इस तरह की बातें, तो चारों युगों में होती चली आई हैं। संतों ने दोनों स्थितियों का गान कर रखा है। अब मैं इसका वृत्तान्त सुनाता हूँ और विधिपूर्वक पुनः उनके दृष्टान्तों को भी रखता हूँ।

संतजन संसार से उद्धार की विधि बतलाते हैं और उसके बाद सारा संसार उन्हें मारने के लिए दौड़ता है। वे परमार्थ की राह बताते हैं और सारा संसार उनकी निंदा करता रहता है। साधुजन जीवों का उपकार करते कहते हैं--और यह मतिहीन जीव उन्हीं को मारता रहता है। जैसे किसी बालक की फुड़िया (फोड़ा) का दुःख-माता तो चाहती है कि वह जल्दी ही ठीक हो जाए। फुड़िया के पकने पर बालक दुःख प्राप्त करने लगता है किन्तु माता उसे फोड़ना चाहती है। दूसरी ओर, बालक माता को मारने दौड़ता है–और वह समझता है, यह माता मेरे लिए दुखदायी है। माता कहती है, फोड़ने से फोड़ा अच्छा हो जाता है और तब मेरे मन को शान्ति मिलेगी।

माता सुख उपकार बतावै। बालक के मन में नाहिं आवै॥
बालक बुधि जग रीती जाना। माता अस मत संत बखाना॥
ये दुख का उपकार बतावैं। वे पुनि उनको मारन धावैं॥
ऐसी संत जगत की रीती। या में तुम का करी अनीती॥
ता का इक दृष्टांत बताऊँ। हाथी ऊपर नकल दिखाऊँ॥
हाथी की बिधि बरनि सुनाई। माना सुनियो मन चित लाई॥
हाथी का इक बन रहै भाई। तहँवा हथिनी अनेक रहाई॥
ता में गज मकरंद रहाई। ताकी बिधी सुनौ तुम भाई॥
गज मकरंद की बिधी बताई। सब हथिनी सँग रहै बनाई॥
दूजा हाथी रहै न लारै। दूजा देखि प्रान से मारै॥
सब हथिनी सँग आप रहाई। दूजा बन में रहन न पाई॥

हथिनी ब्याई तेहि को देखै। नर बच्चा होइ मारै जे कै॥
बच्चा नारी जों कोइ होई। ता को नहिं मारै पुनि सोई॥
नर को देखि प्रान हरि लेई। मादी देखि बोल नहिं तेही॥
नर बच्चा जह रहन न पाई। यह बिधि आपु रहै बन माई॥
सब हथिनी में आप रहाई। दूजा हाथी रहन न पाई॥

अर्थ—माता को पुत्र के सुख के लिए उपकार कर रही है, और उनके पुत्र उन्हें मारने दौड़ते हैं। ठीक यही दशा संत-संसार की है और इस प्रसंग में तुम अनीति क्या करोगे। इसका मैं एक उदाहरण बताता हूँ और उसे हाथी से जोड़कर कहता हूँ।

हाथी की कथा को मैं वर्णित करके सुनाता हूँ हे माना! तुम मन तथा चित्त लगाकर सुनो। हाथियों का एक जंगल था और उसमें अनेक हथिनियाँ रहती थीं। उस वन में मकरंद नामक हाथी रहता था—उसका विवरण, हे भाई! तुम सुनो! मैं मकरंद नामक हाथी की बात बताता हूँ जो सारी हथिनियों के साथ झुंड बनाकर रहता था। दूसरा अन्य हाथी उनके पास नहीं रह सकता था और दूसरे हाथी को देखकर वह उसको प्राण से मार डालता था। सारी हथिनियों के साथ वह अकेले रहता था—और दूसरा उसके साथ रहने नहीं पाता था।

जब हथिनी ब्याती थी तो वह उन्हें देखता था और यदि नर हाथी-पुत्र पैदा होता था तो उसे वह मार डालता था। यदि नारी बच्चा पैदा होता था तो वह उसे नहीं मारता था। नर हाथी बच्चे को देखकर वह उनका प्राण हरण कर लेता था और मादा बच्चे को वह बोलता नहीं था। जिस वन में नर-बच्चे नहीं रह पाते थे, उसमें वह अकेला हाथी रहता था। वह समस्त हथिनियों के साथ अकेला रहता था और अन्य किसी हाथी को साथ नहीं रहने देता था।

सब हथिनी मिल कीन्ह बिचारा। ये तौ बूढ़ भया तन सारा।।
हाथी बच्चा रहन न पावै। जो उपजै तेहि मारि गिरावै॥
बूढ़ा भया येहि छूटै प्राना। पुनि फिर अपना कौन ठिकाना॥
सब हथिनी मिल कीन्ह बिचारा। ये बिधि बच्चा होइ उबारा॥
वा बन में इक साध रहाई। बच्चा ले राखौ तहँ जाई॥
साधू दयाहीन नहिं होई। वो पालै पुनि वा कौ सोई॥
यह कहि हथिनी कीन्ही आसा। बच्चा ढारि कुटी के पासा॥
साधू देखि दया अति आई। बच्चा लीन्ह कुटी के माई॥
दया जानि तेहि पालन कीन्हा। मोटा भया जाति को चीन्हा॥
चल्यौ जहाँ सब हथिनी ठाहीं। गज मकरंद देखितेहि भाई॥
सनमुख जुद्ध भया तेहि जाई। ये जवान वो बूढ़ा भाई॥
गज मकरंद को मारि गिराई। पुनि हथिनी में आप रहाई॥
पुनि बच्चा ये कीन्ह बिचारा। वोहि साधू ने मोहि उबारा॥
साधू मारि मिटाऊँ ख्यालै। सो सरिखा दूजा नहि पालै॥
सो पुनि मोरा बैरी होई। ता से साधू मारौं सोई॥
यह बिचारि साधू को मारा। ये बिधि माना यह संसारा॥

अर्थ–सारी हथिनियों ने एक बार मिलकर विचार विमर्श किया कि यह तो पूरी तरह से बूढ़ा हो चुका है। अन्य हाथी बच्चे रहने नहीं पाते और जो पैदा होते हैं, उन्हें यह मार कर नष्ट कर देता है। यह तो बूढ़ा हो चुका है और इसके प्रान छूटने वाल है और उसके बाद हम लोगों का क्या ठिकाना। सारी हथिनियों ने मिलकर यह विचार किया कि इस प्रकार से बच्चे के प्राण बच सकते हैं। उस वन में एक साधु रहते हैं, बच्चा ले जाकर वहाँ रखो। साधु दयाहीन नहीं होते वही उसको पाल सकते हैं। यह कहकर हथिनी ने आशा की और उस बच्चे को कुटी के पास छोड़ दिया। उस बच्चे को देखकर साधु को अत्यन्त दया आई और उस बच्चे को कुटी के बीच रख लिया। दयापूर्वक साधु ने उसका पालन पोषण किया और जब बड़ा और मोटा हो गया तो उसने अपनी जाति पहचान ली। वह तब उस स्थान की ओर चला जहाँ सारी हथिनियां थीं और वहाँ उसको मकरंद नामक हाथी ने देखा। उस मकरंद हाथी के साथ आमने-सामने युद्ध हुआ–हे भाई। यह जवान हाथी था, वह बूढ़ा हाथी। उसने मकरंद हाथी को मारकर गिरा दिया और वह पुनः स्वयं हथिनियों के बीच रहने लगा।

फिर उस हाथी के बच्चे ने विचार किया कि उस साधू ने मेरी रक्षा की है, अब ऐसा करूँ कि उसे मार डालूँ ताकि मेरे सदृश वह किसी अन्य हाथी के बच्चे का पालन पोषण न करें। फिर आगे वह हाथी मेरा बैरी होगा। इसलिए उस साधु को मैं मार डालूँ। यह सोचकर उसने उस साधु को मार डाला। हे माना! यह संसार इसी प्रकार का है॥

वों साधू बच्चा को पाला। सो पुनि भया ताहि का काला॥
दया जानि उन किया उबारा। वे बच्चा साधू को मारा॥
साधू जग को ये बिधि जाना। येहि बिधि चारौ जुग परमाना॥
काल बुद्धि सब जग के माहीं। संत दया बिधि मानै नाहीं॥
ये दयाल बिधि दया बिचारा। कोइ कोइ जीव होइ उपकारा॥
सब जग जीव काल मुख माईं। कोइ कोइ जीव निकस पुनि जाईं॥
सुनु माना जग का ब्यौहारा। आदि अंत अस रचा पसारा॥
या में तुम को दोस न भाई। आदि अंत ऐसै चलि आई॥

अर्थ–जिस साधु ने उसके बच्चे का पालन पोषण किया और हाथी का बच्चा उसी के लिए काल बन गया। उन्होंने उसको असहाय समझकर उसकी रक्षा की किन्तु उस बच्चे ने साधु को मार डाला। साधु जन संसार को इसी प्रकार से समझते है। सम्पूर्ण संसार के पास कालबुद्धि है किन्तु इसको जानते हुए भी सन्त जन दयाभाव के कारण इसे नहीं मानते।

वे दयालु होते हैं और अनेक रूपों में दया के विषय में सोचते रहते हैं और सोचते रहते है कि हमारे द्वारा किसी-न-किसीजीव का उपकार होता रहता है। सारे-के-सारे जीव काल के मुख के मध्य हैं–और कोई-कोई जीव कभी कभी उससे निकल जाता है। हे माना पंडित! इस संसार के व्यवहार के विषय में सुनें–उसका फैलाव आदि से अन्त तक अनेक रूपों में हुआ है। अतः इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है–प्रारम्भ से आज तक यह इसी प्रकार चला आ रहा है।

।। माना उबाच चौपाई॥

तुम दयाल पूरे हौ स्वामी। जीव काल बस तुम्हैं न जानी॥
तुम परमारथ राह बताई। जग कर्मी स्वारथ को धाई॥
अब स्वामी इक अरज बिचारी। मैं तुम चरनन की बलिहारी॥
जो कछु बस्तु आप न दीन्हा। ता बिधि भाखि सुनाऊँ चीन्हा॥

नील सिखर होइ सूरति जाई। स्याम सिखर के पार समाई॥
सातौ दीप सेत के पारा। जहँ होइ पहुँचे गगन अधारा॥
तहँ पुनि सैल सुरति से कीन्हा। आतम निरखि भिन्न लख लीन्हा॥
घट घट देखा सब्द पसारा। सूरति चढ़ी सब्द की लारा॥
सूरति सब्द में जाइ समानी। जस जस भई सो भाखि बखानी॥
अब स्वामी तुम दाया कीन्हा। वस्तु अगम की हाथै दीन्हा॥
अनेक जन्म ये देह सिराती। पुनि मरते कहुँ हाथ न आती॥
मैं पुनि सतगुरु तुमको जाना। तुलसी सत सतगुरु कर माना॥
जस जस सतगुरु की जस रीती। तस तस मोरे भइ परतीती॥

अर्थ–हे स्वामी! आप पूरी तरह से दयालु हैं–किन्तु काल के वशीभूत ये प्राणी आपको नहीं समझते। आपने तो परमार्थ राह बताई है किन्तु यह संसार स्वार्थ कर्मी है और उसी राह पर चलता है। हे स्वामी! अब आप मेरी एक प्रार्थना पर विचार करें, मैं आपके चरणों पर बलि जाता हूँ। जो कुछ वस्तुएँ आपने दी हैं, उनका मैं उसी रूप में वर्णन कर रहा हूँ, जिस प्रकार उन्हें पहचाना है। नील शिखर से होकर सुरति जाकर श्याम शिखर के उस पार समा जाती है।

सातों द्वीप श्वेत दीप के उस पार हैं–जहाँ पहुँचने पर शून्याकाश आधार (आत्मबन) बन जाता है। उसके पश्चात् शैल सुरति से सम्बन्ध होता है और वहाँ इस आत्मा से भिन्न रूप स्थित आत्मा को आपने देख लिया। सम्पूर्ण घटों में मैंने 'शब्द' का प्रसार ही देखा और इस सबद के साथ सुरति भी आगे चढ़ गई। यह सुरति 'सब्द' में जाकर समाविष्ट हो गई और वहाँ जो-जो स्थितियाँ गठित हुई, मैंने उनका कहकर वर्णन किया है। हे स्वामी! आपने दया करके उस अगम्य वस्तु को मेरे हाथों पर दे दिया। यह देह तो अनेक जन्मों में यह देह बीतती और मृत्यु के समय कुछ हाथ न लगता? मैंने तो सतगुरु आपको ही समझा है। हे तुलसी साहब! आप ही को सतगुरु स्वीकार किया है। इस प्रकार, सतगुरु की जो परम्परा-व्यवस्था है, उसे देखकर मुझे विश्वास हो गया है।

॥ श्लोक ॥

मूक करोति बाचालं, पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत् कृपालमह बंदे, परमानंद माधवः॥ १॥
द्वै द्वै लोचन सर्वानां, बिद्या त्रय लोचनं।
सप्त लोचन ज्ञानीनां, भगवान अनंत लोचनं॥ २॥

अर्थ–सतगुरु मूक को वाचाल बना देता है और उसकी कृपा से पंगु व्यक्ति पर्वतों को लांघ जाता है। वह जो कृपालु सतगुरु है, मैं उसकी वन्दना करता हूँ। वह साक्षात् परमानन्द माधव रूप है॥

सभी प्राणियों के दो-दो नेत्र हैं, विद्या का संचय त्रितीय नेत्र है, ज्ञानियों के सात नेत्र होते हैं किन्तु ईश्वर तो अनन्त-अनन्त लोचनों से संयुक्त है॥

॥ सोरठा ॥

तुलसी परम दयाल, काल कँवल स्त्रुति भिनि भये।
माना मरम निहाल, को कृपा तुलसी बिना॥

अर्थ–हे तुलसी साहब! आप दयालु हैं, काल द्वारा कवलित परम्परा से आप मुक्त (अजर-अमर) हैं। मैं अत्यधिक कृतज्ञ हूँ, माना पंडित कहते हैं कि तुलसी साहब के बिना कौन और कृपालु है॥

॥ चौपाई ॥

माना के मन होस निकारो। तुलसी चरन सरन गति सारी॥
स्वामी तुलसी सतगुरु दाता। अगम निगम का किया बिख्याता॥
सतगुरु सत्त सत्त हम जाना। सतगुरु बिना न मिलै ठिकाना॥
बिन सतगुरु पावै नहिं कोई। बिन सतगुरु सब गये डुबोई॥
तुम सतगुरु मोहिं राह लखाई। आदि गुरु अंत नजर में आई॥

अर्थ–माना के भ्रम को शान्त करें और मेरी सम्पूर्ण शरणागति आपके ही चरणों में है। हे स्वामी तुलसी साहब! आप ही सद्गुरु हैं, आप ही ज्ञानताता है, और आपने वैदिक और श्रुत परम्पराओं दोनों को प्रसिद्धि प्रदान की है। मैंने सही-सही समझ लिया है कि आपही सतगुरु हैं–क्योंकि सत्गुरु के बिना आध्यात्मिक ठाँव नहीं मिलता। बिना सत्गुरु के कोई ज्ञान नहीं प्राप्त करता और सत्गुरु के बिना सभी डूब जाते है। आप सत्गुरु है, हमें आपने मार्ग दिखाया है और हमें अन्त में आपके रूप में आदिगुरू के रूप में ही दृष्टिगत हुए हैं।

॥ सोरठा ॥

तुलसी परम दयाल, तुम स्वामी दाया करी।
छूटा भ्रम दुख जाल, कहि दयाल बिधि सब लखी॥

अर्थ–हे तुलसी साहब! आप परम दयालु हैं, आप स्वामी है और हम लोगों पर दया की है। मेरा भ्रम का दुःखमय फंदा टूट गया है हे कृपाल! आपने सम्पूर्णतः विधिपूर्वक बताया है और उसे हमने समझा है॥

॥ चौपाई ॥

अस कहि माना सीख जो मंगी। नैनू स्यामा तीनों संगी।
सीस टेक डंडवत कीन्हा। चरन छुए पुनि मारग लीन्हा॥
तीनों पंडित मारग जाही। कीन्हा गवन भवन की राही॥
पुनि गुनुवाँ आया तहि बारा। किया प्रनाम डंडवत सारा॥

अर्थ–ऐसा कह जब माना पंडित ने अपना सिर चरणों पर रखा तो नैनू एवं स्यामा अर्थात् तीनों साथियों ने सिर टेककर उन्हें दम्डवत् किया और उनका चरण स्पर्श करके घर के लिए मार्ग पकड़ा। इस प्रकार तीनों पंडित मार्ग पर चल पड़े और अपने-अपने घरों की राह पर गमन किया। उसके बाद मुनुवाँ उनके पास आया, दण्डत् करके उनको प्रमाण किया।

॥ गुनुवाँ उबाच ॥ चौपाई ॥

गुनुवाँ पूछै तुलसी स्वामी। एक बिधी मैं कहूँ बखानी॥
जीव राह की जुगत बताही। ता से छूटै जम की राही॥
तुम दयाल सतगुरु हौ स्वामी। जा से होइ जीव कल्या..ी॥
ये भौजाल जगत ब्यौहारा। ता में जीव कर्म बस डारा॥

अर्थ–गुनुवाँ पूछता है कि हे तुलसी साहब! मैं एक विधि वर्णित करके कह रहा हूँ। आपके जीव के लिए मुक्ति का कार्य मार्ग बताया है और इससे यम को मार्ग उसका छूट जाता है। हे स्वामी! तुम

सत्गुरु हो, दयालु हो—और जिससे जीवों का कल्याण हो, आप उसी की चर्चा करते हैं। यह सम्पूर्ण संसार का व्यवहार भवजाल है और उसमें अपने कर्मों के कारण जीव डाला गया है।

॥ बचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

सुनु गुनुवाँ यह जम की बाजी। जग संसार यही में राजी॥
पंडित और समझै नहिं फाजी। ये सब झूठ काल से राजी॥
इनकी बात न चित पर दीजे। ये सब पाप पुन्य में भीजे॥
संत चरन की आसा कीजे। संत सरन मुक्ती करि लीजे॥
ये जग में कछु नाहिन भाई। सुप्न जगत जिव भौ भरमाई॥
राम कृष्न दोऊ बटमारा। सिव ब्रह्मा मिलि फाँसी डारा॥
या से संत राह धरि लीजै। उन कि कहनि चित से नहि दीजै॥

अर्थ—हे गुनुवाँ! सुनों, यह संसार यम की बाजीगरी है—और यह जगमय संसार इसी में सहमत है। पंक्ति और काजी इसे समझ नहीं पाते और इनके सारे कार्य झूठे है, यम की स्वीकृति है। इनकी बातों पर जरा भी विश्वास न करें—ये सभी पाप पुण्य में भीगे हुए हैं। केवल सन्तों के चरणों की आशा करें और सन्तों की सरण में जाकर मुक्ति प्राप्त कर लें। इस संसार में कुछ भी नहीं है—और यह स्वप्न रूपी संसार जीवों का भ्रमित किये हुए है। राम और कृष्ण दोनों बटमार थे। शिव तथा ब्रह्म ने मिलकर तो जीवों की फाँसी लगा दी। इसीलिए इनकी वास्तविकताओं को समझकर सन्तों के मार्ग का अनुगमन कर ले और राम-कृष्णादि के उपदेशों को मन में स्थान भी न दें।

॥ गुनुवाँ उबाच ॥ चौपाई ॥

चरन बंदि तुम्हरी सरनाई। ये सब झूठ समझ में आई॥
मोरे चित्त का भर्म उठावा। जब से चरन सरन में आवा॥
हिरदे मोहि बिधी समझावा। मर्म भाव बिधि सबहि बतावा॥
अब प्रभु कृपा दृष्टि मोहिं कीजै। जीव सरन अपना करि लीजै॥
मैं तौ स्वामी तुम को पाये। तुम्हरे चरन सरन चित लाये॥
अब कोउ बात बिधी नहिं भावै। सूरति तुलसी चरन समावै॥
अब कछु राह मोहिं को दीजै। यह गुनुवाँ अपना करि लीजै॥

अर्थ—हे स्वामी! आपके चरणों की बन्दना करता हूँ, आपकी शरण में हूँ। आपने मेरे चित्त का भ्रम नष्ट कर दिया (और यह सबसे है) जबसे में आपके चरणों में आया हूँ। मेरे पिता; हिरदै ने मुझे यह अध्यात्म विधि सुझा दी है और उसके रहस्य भाव को हर प्रकार से बता दिया है। हे प्रभु आप मुझपर कृपा दृष्टि करें और इस जीव (मुझे) अपनी शरण में ले लें।

हे स्वामी! मैंने तो आपको प्राप्त कर लिया है और आपके चरणों की शरण में अपना चित्त लगा दिया है। अब मुझे अन्य कोई आध्यात्मिक चर्चाएँ और विधियाँ अच्छी नहीं लगतीं—और मेरी सुरति तो आपके चरणों में समा उठी है। हे स्वामी! अब कोई अन्य नई राह मुझे दें, और इस गुनुवाँ को अपना दास स्वीकार कर लें॥

॥ बचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

सुनु गुनुवाँ यह जम की बाजी। जग संसार यही में राजी॥
पंडित और समझै नहिं फाजी। ये सब झूठ काल से राजी॥

इनकी बात न चित पर दीजे। ये सब पाप पुन्य में भीजे॥
संत चरन की आसा कीजे। संत सरन मुक्ती करि लीजे॥
जे जग में कछु नाहिन भाई। सुप्न जगत जिव भौभरमाई॥
राम कृष्न दोऊ बटमारा। सिव ब्रह्मा मिलि फाँसी डारा॥
या से संत राह धरि लीजै। उन कि कहनि चित से नहि दीजै॥

अर्थ–हे गुनुवाँ! इसे भलीभाँति समझो! यह संसार यम की बाजीगरी है और यह सम्पूर्ण संसार इसी में खुश है। पंडित तथा काजी लोग इस बात को नहीं समझते। ये सब झूँठे और काल से ही सन्तुष्ठ हैं। इनकी बातों पर ध्यान न दो, ये सभी पाप तथा पुण्य में डूबे हुए हैं। सदैव, सन्त चरणों की आशा करें और उनकी शरण में जाकर मुक्ति प्राप्त कर लें। ये भाई! ये संसार में कुछ भी नहीं हैं। अज्ञान के स्वप्न में डूबे हुए संसार के जीवों को ये भरमाते रहते हैं। राम कृष्ण दे दोनों बटमार हैं–शिव ब्रह्मा ने इनसे मिलकर जीवों पर फाँसी लगा दी है। इन कारणों को समझकर सन्तों के द्वारा दिखाए गए मार्गों को स्वीकार कर लें और उन राम, कृष्ण आदि के कथनों पर मन न लगाएँ॥

॥ गुनुवाँ उबाच॥ चौपाई॥

चरण बंद तुम्हरी सरनाई। ये सब झूँठ समझ में आई।।
मोरे चित का भर्म उठावा। जब से चरन सरन में आवा॥
हिरदे मोहिं बिधी समझावा। भर्म भाव विधि सबहिं बतावा॥
अब प्रभु कृपा दृष्टि मोहिं कीजै। जीव सरन अपना करि लीजै॥
मै तो स्वामी तुमको पाये। तुम्हरे चरन सरन चित लीजै॥
अब कोउ बात विधो नहि भावै। सुरति तुलसी चरन समावै।।
अब कछु राह मोहिं को दीजै। यह गुनुवाँ अपना करि लीजै॥

अर्थ–मैं आपके चरणों की बन्दना करके आपकी शरण में हूँ–और आज यह सब असत्य समझ में आ गया है। आपने मेरे चित्त का भ्रम जबसे उठा दिया और मैं आपकी शरण में तभी से आया हुआ हूँ। इस बात को हिरदै ने अनेक विधियों से समझ गया है, इसके सभी गर्मों, तथा रहस्यों को भी बतलाया है। हे प्रभु! अब आप मुझे कृपा दृष्टि दें और इस जीव को आप अपनी शरण में कर लें। हे स्वामी मैंने तो तुम्हें प्राप्त कर लिया हैं। आपके चरणों में चित्त को लगा दिया है। आपकी बातों के अतिरिक्त मुझे न कोई बात अच्छी लगती है, न रहस्य। मेरी सुरति समाधि आपके चरणों में समाविष्ट हो चुकी है। अब मुझे कोई अच्छा सा मार्ग बताकर इस गुनुवाँ को अपने वश में कर लें॥

॥ बचन॥ तुलसी साहब॥ चौपाई॥

जब वहि को कछु राह बताई। गुनवाँ सीस चरन तर नाई॥
सुनु गुनुवाँ यह बिधी बताई। मन थिर करौ गुनौ मतभाई॥
सूरति सोध कँवल में राखौ। नित प्रति सुरति दृष्टि होइ ताकौ॥
येहि बिधि रहौ दिवस औ राती। गुनुवाँ गुनन करौ मन भाँती॥

अर्थ–जब उन्होंने किसी मार्ग का उसके लिए निर्देश किया तब गुनुवाँ ने अपने सिर को उनके चरणों में झुकाया। उन्होंने कहा, हे गुनुवाँ! मैंने यह विधि बता दी है। तुम मन को स्थिर करो और अपने मन में कोई अन्त चिन्तन न करो। सुरति समाधि की खोज करके उसे कमल दल में रखो और नित्य प्रति

अपनी अन्तर्दृष्टि से सुरति पथ को ही देखते रहो। इसी प्रकार इसमें रात-दिन मग्न रहो और हे गुनुवा! मन को रमाकर इसका ही चिन्तन करो।

॥ सोरठा ॥

सुनु गुनुवाँ यह बात, बिधि बिचार गुप्तै रहौ।
कहौ ना काहू साथ, येहि बिधि मन बसि रहौ॥

अर्थ–हे गुनवाँ! मेरी यह बात सुनो, इस मत की विधि को विचार करके उसके विषय में चुप ही रहो (और उसे गुप्त रखो)–उसे किसी से भी न कहो और इस प्रकार तुम अपने मन में अपने मन को बसाकर रहो॥

॥ चौपाई ॥

चरन लाग मारग कौ लीन्हा। घर को सुरति गवन जिन कीन्हा॥

अर्थ–गुनुवाँ ने चरणों में लगकर घर का रास्ता पकड़ा और सुरति निष्ठ होकर वह घर चला।

॥ फूलदास उवाच ॥ चौपाई ॥

स्वामी हमको नाहि बिसारी। नेक सुरति हमहूँ पर डारी॥
हम को अपना दास बिचारौ। अस जानि मोरी ओर निहारौ॥

अर्थ–हे स्वामी! आप हमें भूले नहीं और थोड़ा-सा ध्यान मुझ पर भी डाल दें। मुझे भी आप अपना दास ही समझें और ऐसा समझकर मेरी ओर देख लें।

॥ वचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई ॥

फूलदास बिधि करौ बिचारा। बिन चौके नाहीं निरबारा॥
चौके की बिधि करौ बनाई। जब सूरति अपना घर पाई॥
सूरति से नरियर को मोड़ौ। हाथै से नरियर नहि फोड़ौं॥
सुरति पान पर बीरा खावौ। बरई बीरा दूरि बहावौ॥
तीनि गुनन का तिनुका तोड़ौ। बासन पाँच इंद्री को मोड़ौ॥
और कहाँ लगि बिधी बताऊँ। ये चौका बिधि औरै गाऊँ॥
जग चौके को दूरि बहावौ। सत चौका हिरदे में लावौ॥
जग चौके झूठी बाता। सत चौका संतन रस माता॥
जो चौका संतन ने जाना। सोइ कबीरदास पहिचाना॥
सो चौका तुमको बतलैहौं। ता से राह अगम की पैहौ॥
जो कबीर ने राह बताई। सो चौके की कहौं बुझाई॥

अर्थ–तुलसी साहब बोले, हे फूलदास! इस विधि पर विचार करो–बिना चौका पूजन के कोई निराकरण नहीं है। सुरति ध्यान करके चित्त में स्थित नारियल को मोड़ दो और हाथ से नारियल मत फोड़ो। सुरति के ध्यान में पान का बीड़ा खालो और बाहर के बरई द्वारा लाए गए पान के बीड़े को फेंक दो। उस ध्यान में यह त्रिगुणात्मक संसक्ति के तिनके को तोड़ दो और पाँचों इन्द्रियों को बर्तन बनाकर मोड़ डालो। इन सारी साधना की विधियों का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ और तुम्हारी चौकाविधि का वर्णन मैं तुम्हारे तरीके से भिन्न प्रकार से करता हूँ।

इस सांसारिक चौके को दूर बहाकर सत चौके को मन में ले आओ। इस संसार के चौके की बात झूँठी है और सत चौके में ही सन्तों का मन रमा रहता है। जिस चौके को सन्तों ने समझा है—उसी को कबीर भी चौका के रूप में पहचानते थे। उस चौका का रहस्य में तुम्हें बतलाऊँगा और उसके द्वारा उस अगम्य पंथ को प्राप्त करोंगे। जिस मार्ग का उल्लेख कबीरदास जी ने किया है उस चौके का सही रूप मैं तुझे बतलाता हूँ।

जो कबीर राह बिधि गाईं। साँई राह सत बतलाई॥
संत कबीर ये अंतर नाईं। या बिधि से कोई भर्म न लाई॥
सूरति चढ़ै संघ जो पावै। सो कबीर सम चित में लावै॥
वा में भिन्न भाव कोहू लैहै। कर्म भाव बिधि नरकै जैहै॥
कहै कबीर ने अगम सुनाया। और संत नहि वहँ से आया॥
कहै कबीर अविगति से आये। और संत वो घर नहि पाये॥
ऐसी बिधि कोइ मन में आनै। तौ पुनि परै नर्क की खानै॥
भेषी पंथ संत ये नाईं। आदि अंत सो संत कहाई॥
आदि संत सब वहि से आये। भेष पंथ में वे नहिं पाये॥
भेष पंथ में ढूँढ़ौ भाई। या से तुमको नजर न आई॥
अंदर की आँखी से देखौ। तब पुनि संत नजर से पेखौ॥
तुमको नजर कहाँ से आई। चौका पंथ माहिं उरझाई॥

अर्थ—कबीरदास जी ने जिस विधि से उस मार्ग का वर्णन किया है, उन स्वामी की राह सन्त ही बतलाते हैं। सन्त तथा कबीरदास में कोई अन्तर नहीं है, इस प्रकार, दोनों के बीच किसी प्रकार का भ्रम न पैदा करो।

सुरति ध्यान में समाविष्ट होने पर जो समुद्र प्राप्त करना है, उसे कबीर की ही भाँति चित्त की साधना का विषय बनाओ। यदि उस चित्त साधना से कोई भिन्न भाव लेगा तो वह सीधे कर्मभाव द्वारा नरक में जाएगा। कबीर ने उस अगम्य का वर्णन कहकर सुनाया है और कोई सन्त उस दशा से वापस नहीं आया है। कबीरदास जी कहते है कि मैं निर्गुण ब्रह्म को जानकर लौटा हूँ और अन्य किसी सन्त ने निर्गुण के उस घर को नहीं प्राप्त किया है यदि इस प्रकार की भी बात किसी के मन में आती है तो वह भी नर्क की खान में गिरेगा। सन्त का पद बेषभूषा द्वारा नहीं बनता। सन्त वही है, जो आदि से अन्त का पद वेषभूषा द्वारा नहीं बनाता सन्त वही है, जो आदि से अन्त तक एक है। आदि सन्त सब इसी समत्व दशा से होकर आए हैं और उन्हें भी वेष रचना वाले मार्ग में नहीं पाया गया। तुम वाह्याडम्बर वाले मार्ग में उन्हें खोज रहे हो, इससे वे तुम्हारी दृष्टि में नहीं आ रहे हैं।

पहले उस परम तत्त्व को चित्त की आँखों से देखो, फिर उन्हें सन्त की दृष्ठि से देखकर पहचानों। तुम्हें यह सब दृष्टि में कहाँ आ सकती है, क्योंकि तुम्हारी दृष्टि तो चौका के आडम्बर में लगी हुई है।

चौका पथ की दूरि बहावै। तब वो राह नजर में आवै॥
चौका पट्टा हाट बजारा। या से परै कर्म की लारा॥
संतन का चौका बिधि न्यारा। ये सब जानौ हाट बजारा॥
संतन का चौका बिधि गाऊँ। संत कृपा से समझ बताऊँ॥
सुरति मोड़ नरियर को फोड़ौ। अगम पान चढ़ि धनुवाँ तोड़ौ॥

राह बिधी कोइ संत बतावै। जीवत अगम बस्तु को पावै॥
तुलसी कहि इक सब्द लखाऊँ। ता में सब चौका बिधि गाऊँ॥
फूलदास तुम सुनियौ काना। बिधि चौका का सब्द बखाना॥

अर्थ–लोक में प्रचलित चौका मार्ग को दूर फेंको, तब वह सही मार्ग तुम्हें दिखाई पड़ेगा। चौका, उससे लगी पट्टी, हाट-बाजार की शरण तो कर्म की गहरी संसक्ति है। मैं सन्तों द्वारा कही हुई चौका विधि का वर्णन कर रहा हूँ–मैं उसे सन्तों की कृपा से समझकर बता रहा हूँ। सुरति में नारियल को मोड़कर उसे फोड़ दो और अगम्य पान कर चढ़कर उस धनुष को तोड़ दो। यह मार्ग कोई सन्त ही बतलायेगा और जीवन में ही उस अगम्य वस्तु को प्राप्त कर लो। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं एक उपाय बताता हूँ–उसी में सभी चौका विधि वर्णित है। हे फूलदास! तुम ध्यान लगाकर सुनो। चौका विधि के लिए इस प्रकार का शब्द रहस्य बताया गया है॥

॥ जैजैवंती ॥

एरी लै आज तो अधर घर आई, तुलसी चढ़ि देखिया॥ टेक॥
सूरति दृग दौड़ अटारी, हिये हर लखा पिउ प्यारी॥
सारी तौ ले हेरि निहारी, प्यारा लै संग पेखिया॥ १॥
नरियर को मोड़ा जाई, प्रिये बास सुगंध उड़ाई।
बीरा पान पाये आई, सुगंधी महकाइया॥ २॥
मेंवा आठ पुरुष लखि जानी, स्रुति हेर हिये उड़ानी।
सब्दारस भई रंग रानी, हरखानी पिउ पाइ कै॥ ३॥

अर्थ–हे री सखी! समझ ले! मैं आज अन्तरात्मा के घर में आ गई, ऊपर आकर मैंने इस प्रकार से देख भी लिया है। सुरति ध्यान द्वारा दौड़कर तथा अटारी पर चढ़कर और हृदय में खोजकर, हे प्यारी! मैंने उस प्रिय को देखा है।

जब नारियल को मोड़ा तो हृदय में सुगंधि की महक उड़ी और पान का पीड़ा पाकर सुगंधि और बढ़ गई। मैंने पुरुषों को आठ मेवा की भाँति देखा और उन्हें देखकर सम्पूर्ण परम्परा का ज्ञान उड़-सा गया और मैं उस शब्द के रंगों में ही रंग कर खो गई और अपने प्रिय को पाकर पूरी तरह से हर्षित हो उठी॥ 1-3॥

पलँगा पर जाइ पौढ़ी, धन धन सुख की घड़ी।
अटारी महला चढ़ी, प्यारा पिउ लेखिया॥ ४॥
फूलदास दृग पर चौका, परवाना छाँड़ौ धोखा।
नरियर सुरति से मोड़ौ, तोड़ौ असमाना को॥ ५॥
तुलसी लसि सूरति जाई, चौका परवाना याही।
बसि तिल हिरदे बिच आई, चढ़ी द्वार पाइ के॥ ६॥
रेवतीदास को समझावा, फूलदास दोऊ लख पावा।
कँवला में सुरति लखाई, तुलसी बिधि पाइ के॥ ७॥
इंद्री पाँच बासन मोड़ा, गुन तीनि तिनुका तोड़ा।
पोढ़े तिनुका बासन छूटै, झूठे जग लूटिया॥ ८॥

तुलसी कबीर बखाना, सो चौका बिधि हम जाना।
पूछै कोइ चित ब्रत आई, ता को दरसाइया॥ ९॥
पत्र कदली छेदा जाई, जहँ सेत चदरवा तनाई।
तुलसी बिधि कहि समझाई, संत जनाइया॥ १०॥

अर्थ–मेरे सुख की वह धन्य घड़ी आई जब जाकर अपने पति के साथ पलँग पर जाकर लेट गई और मैं अपने प्रिय पति के लिए महलों तथा अटारियों पर जाकर चढ़ गई॥ ४॥

हे फूलदास! अन्तः दृष्टि में चौका है, इस धोखे से भरे लौकिक चौके का प्रमाण छोड़ो। उस नारियल को सुरति ध्यान से मोड़ो और उसे शून्याकांश में तोड़ो॥ ५॥

तुलसी साहब कहते हैं कि उसे सुरति में जाकर देखो, उसका प्रभाव वही है, दिल सदृश हृदय में निवास करके वह आगे के द्वार पर चढ़ गई॥ ६॥

मैंने इसे रेवती दास को समझाया। हे फूलदास! इसे कोई ही समझ पाता है। तुलसी की इस व्यवस्था को पाकर सुरति कमल में समा गई॥ १७॥

पाँचों इन्द्रियों की वासनाओं को मोड़ दिया और उसे देखकर तीन गुणों से उसने तिनका तोड़ दिया–तिनकों के त्याग के बाद वासनाओं से साथ छूट जाता है और संसार में लूटा जाना (ठगा जाना) झूँठा हो जाता है॥ ८॥

कबीर ने इसे कहा है, उनके कहने के कारण, इसे मैंने भी जाना है। जो कोई मुझसे पूछता है तो चित्त में यह व्रत आ जाता है, और उसे मैं बताता हूँ।

उस शून्याकाश में जाकर कदली पत्र में छेद करते हैं, वहाँ श्वेत-चद्दर तनी हुई है–तुलसीदास जी ने इस प्रकार समझाया है–इसे सन्तों ने बताया है।

॥ दोहा॥

फूलदास चौंका बिधी, सुरति नारियर मोड़।
पान अमर बीरा लखौं, चखौ अधर रस और॥
रेवतीदास तु महूँ लखै, नरियर निरत निहार।
निज अकास पर पान है, बीरा है निज सार॥

अर्थ–हे फूलदास! चौका की यह विधि है कि सूरति द्वारा सबसे प्रथम नारियल मोड़े और ध्यान में पान के अमर बीड़े को देखो तथा अन्तरात्मा के मूल रस का आस्वादन करो।

हे रेवतीदास तुम भी देखो और इस नारियल को निरन्तर निहारते रहो–अपने ही शून्याकाश में पान है और उसका बीड़ा अपने चिन्तन का सार तत्त्व है।

॥ चौपाई॥

फूलदास अस सुरति लगाई। नरियर माहिं पंथ सोइ राही॥
येही पंथ की राह जो पावै। पंथ कबीर ताहिकर नावै॥
येही पंथ सुरति से लावै। अगम अगोचर घर को पावै॥
सूरति सैल करै असमाना। निज घर पहुँचै जाइ ठिकाना॥
या बिधि पंथ संत दरसावै। तब सत सुरति समझ घर आवै॥
आदरू अंत पंथ पद जाना। भाखै सतगुरु संत बखाना॥

अर्थ--फूलदास ने इस प्रकार से सुरति पर ध्यान लगाओ और नारियल में ही वही अध्यात्म मार्ग है, ऐसा समझो। इस गन्तव्य के मार्ग को जो प्राप्त कर लेता है--उसी का नाम कबीरपंथ है। यह पंथ सुरति द्वारा लाया जाता है और इससे अगम्य तथा अगोचर केन्द्र मिल जाता है। वह शून्याकाश के सुरति केन्द्र में आनन्द करता है और अपने घर पहुँच कर अपने मूल निवास प्राप्त कर लेता हैं।

इस प्रकार से मार्ग का निर्देशन संत करते हैं। इसके बाद ही सुरति को सही-सही समझकर पार लौट आता है। इस प्रकार वह आदरपूर्वक सन्त द्वारा निर्दिष्ट अन्तिम पथ को प्राप्त कर लेता है। सत्गुरु उसे बताते हैं और सन्तगण इसका वर्णन करते हैं।

सतसँग करै बूझ जब आवै। सूझै मत सतसंगत पावै॥
जिन जिन चरन बिधी बिधि जानी। सो गुरुमत जानौ परमाना॥
पंथी राह रीत सब छूटै। मन की मान मनी सब टूटै॥
दीन होइ कर सेवै संता। जब लखि परै अगम पद पथा॥
जब कबीर ने भाखा चौका। सो बिधि करौ मिटै जम धोका॥
उन कहि बिधि जो बूझ बिचारै। सो घर पुनि पद पार निहारै॥
संत गूढ़ मत गुप्त पुकारै। बूझै सतगुरु शब्द सुधारै॥
जो कुछ कही उलट बिधि बानी। सो बिन समझ बूझना जारी॥
सब्द साखि सो भाखि सुनावै। बिन सतगुरु कछु हाथ न आवै॥
सतगुरु मिलैं बतावैं भेदा। जब जम जाल मिटै मन खेदा॥

अर्थ--सत्गुरु इस प्रकार का आचरण तब करता है, जब उसे सूझता है और उसकी यह सूझ सत्संगति से प्राप्त होती है। जिनके चरणों में शरणागति है, उन्हें इस विधि का ज्ञान होता है--उसी को गुरु मत का प्रमाण समझो। इसका ज्ञान होने पर निर्गुण मत के साधकों की भौतिक रीतियाँ छूट जाती हैं। मन में आने वाले अहंकार मनही मन छूट जाते हैं। दीन होकर जो सन्तों का सेवन करते हैं, तभी उसे अगम्य मार्ग दिखाई पड़ता है।

जिस प्रकार, कबीर ने चौके का वर्णन किया है, उस विधि से उसे करो, सारे संसार का भ्रम मिट जाएगा। उनके विषय में कहकर जो उन्हें बूझता और विचार करता है, वह व्यक्ति उस घर के पार उस पद को प्राप्त करता है, जो अलभ्य है। सन्तों का मत अत्यधिक गुप्त एवं गूढ़ पुकारा जाता है। केवल उसे सत्गुरु ही बूझता तथा वही सुधारक है। जो कुछ यहाँ उल्टवासी के रूप में वाणी कही गई है:जो बिना समझ के न बूझा जा सकता है और न जाना जा सकता है। सब्द तथा साखी को जो कहकर सुनाता है बिना सत्गुरु के उसका तात्पर्य समझ में नहीं आता। मिलने पर ही बिना सत्गुरु के उसका तात्पर्य समझ में नहीं आता। मिलने पर ही सत्सगुरु उसका रहस्य बतलाते हैं और यह तब होता है, जब इस भौतिक संसार के कर्म से उत्पन्न मन की ग्लानि दूर हो जाती है।

संत बाग बन अंड पुकारा। सोइ ब्रह्मंड बाग बन सारा॥
तन मन बृच्छ देखि दृग अंडा। चढ़कर सुरति निरखि नौखंडा॥
जो अंडे बिच बाग बखाना। देखा सुरति समझि असमाना॥
बाग बृच्छ बेली पर अंडा। सतगुरु सुरति बतावै डडा॥
ये मन खलक खान बिच डारा। पाँच पचीस तीनि तेहि लारा॥
अब या का सुन सब्द लखाऊँ। बृच्छ बेलि अंडा अरथाऊँ॥
उलटाबसी जो कही कबीरा। रमज रेखता में मत धीरा॥

अर्थ–संत जंगलों में (एकान्त) के बाग में अंड का स्मरण करते हैं–यही अंड ही सम्पूर्ण ब्रह्मांड का बाग-बन है। यह शरीर और मन को आँखें उस अंड (पिंड) में देखती हैं और उस पर चढ़कर सुरति के नवखंडों (भवन) को देखो। जो इस पिंड के बीच में बाग का वर्णन करता है–उसने सुरति को शून्याकाश में देखा और समझा है। बाग के वृक्षों तथा लताओं पर ही वह अंड दिखाई पड़ता है। सत्गुरु द्वारा निर्दिष्ट सुरति ही इस भेद को बता पाती है इस संसार में यह मन ही विष की शाखा है और वह संसक्तियो–पाँच (इन्द्रियों) पचीस (भौतिक तत्त्व) एवं तीन (गुणों) में बँधा है। हे फूलदास! सुनों–इनके बारे में 'सबद' का मैं वर्णन करता हूँ–वृक्ष क्या है, बेलि क्या है, अंडा क्या है, उसे अर्थापित (स्पष्ट) कर रहा हूँ। जिस उल्टवासी को कबीर ने कहा है–रेखता छन्दगीत में वह धैर्यवान श्रेष्ठ बुद्धिमानों के लिए अध्यात्म तत्त्व (रमज) है।

॥ रेखता ॥

अली इक बाग बन खंडा। लगे बृच्छ बेलि पर अंडा॥ १॥
अजब इक फूल पचरंगा। भँवर बसै बास के संगा॥ २॥
अगर सब लोग फल खावैं। स्वाद बस रैन रहि जावैं॥ ३॥
फले फूल दाख के पेड़ा। रहत जेहि भूमि पर भेड़ा॥ ४॥
भेड़ा रहै बाग में अली जा। काढ़ि नित खात कालेजा॥ ५॥
वोही मन बीच में राजै। गरज सब सूरमा भाजै॥ ६॥
कहूँ कोई रहन नहिं पावै। सकल बन जीव चरि जावै॥ ७॥
कहूँ उनमान बल केरा। बनी बिच जीव सब घेरा॥ ८॥
सुनौ अब तोल तन केरा। नहीं त्रय लोक में हेरा॥ ९॥

अर्थ–हे सखी! यह संसार एक बाग की भाँति है–जहाँ शून्य (वृक्ष-वेलियो) पर अंड (पिंड) दिखाई पड़ते हैं। इस संसार में एक अजीब फूल (शरीर) पाँच रंगों (तत्त्वों) का है और उसकी सुंगधि (वासनाओं) के साथ कामनाओं का एक भ्रमर (मन) निरन्तर निवास करता है। उस पुष्प से निकले फल का यदि सभी सेवन करते हैं तो वे उसी वासनाओं के स्वाद में डूब जाते हैं– उससे उत्पन्न अज्ञान के अंधकार की रात्रि कभी समाप्त नहीं होती। यह फल अंगूर के पेड़ के फूल से उत्पन्न होता है और वह वही रहता है–जहाँ मृत्यु रूपी भेंड़िया का निवास है। काल रूपी यह भेड़िया यहाँ निरन्तर सुखपूर्वक निवास करता है और प्रतिदिन पिंड के कलेजों को खाकर जीवन व्यतीत करता है। वह भेंड़िया (काल) मन के बीच में बैठा है और उसकी गरज से सारे पराक्रमी योद्धा भाग बैठते हैं। इस संसार में उस काल के कारण जीव रहने नहीं पाते और वह सब को चुन चुनकर खाता जाता है। मैं उसके बल का अनुमान कर रहा हूँ–उसने पृथ्वी के समस्त जीवों के बीच घेरा बना रखा है। अब इस शरीर की या वास्तविक मूल्यांकन समझो–उसका सादृश्य इस त्रयलोक में खोजा नहीं जा सकता।

अली एक बात अनतोली। सुनो सब संत की बोली॥ १०॥
कहै दस सीस वोही केरा। पाँउ पचबीस तन डेरा॥ ११॥
अली मुख तीति से खावै। अजब येहि बात में आवै॥ १२॥
तरंग तन बीच में भावै। समझ दस सीस पर लावै॥ १३॥
अरी थिर थोव नहि जाना। रहे भ्रम भाव रस खाना॥ १४॥
अली जिन अंड को फोड़ा। सुरति निज नैन से जोड़ा॥ १५॥

मुवा मन भाव का भेड़ा। चले सत नाम चढ़ि बेड़ा॥ १६॥
तुलसी तब बूझ में आई। अगम सब समझ दरसाई॥ १७॥
लिये सत संत के चरना। बिधी बरतंत सब बरना॥ १८॥

अर्थ–हे सखी! एक अमूल्य बात सुनो, सारे सन्तों की बोलियों को भी सुनो! उसी को दस सिरों का रावण (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ) भी कहते हैं, उसके पच्चीस पाँव हैं। शरीर के विविध पच्चीस तत्त्व) और वह काल उन्हीं के बीच अपना निवास (डेरा) बनाये हुए है। यह एक अजीब बात सुनने में आती है कि वह मुख की तिक्तता से उनका भोजन करता है। उस तिक्त (कसैला स्वाद) से भोजन के बाद उसके शरीर में आनन्द आता है और अपनी समझ इन दसों इन्द्रियों पर प्रकट करता है। यह संसार कामनाओं के ज्ञान रूपी भ्रम में समाया रहता है और उसमें निहित मूल तत्त्व को नहीं समझा।

हे सखी! मैंने जिस पिंड को फोड़कर संचित किया, वहाँ मैंने अपने आत्मा के नेत्रों को सुरति से सम्बद्ध किया–उस मृत भाव का मन रूपी भेड़िया सतनाम की नौका पर चढ़कर उस पार चला गया। तुलसी साहब कहते हैं कि इसके बाद ही बात समझ में आई कि जो कुछ अगम्य था, वह दिखाई पड़ने लगा। मैंने सन्तों के चरणों से यह सब कुछ ज्ञान प्राप्त करके सम्पूर्ण रहस्यों का विधिपूर्वक वर्णन किया है।

॥ चौपाई ॥

फूलदास दिल समझ बिचारो। अस असभेद कबीर पुकारो॥
मन पचबीस पाँच सँग मूला। गुन तन बृच्छ बसै सहि सूला॥
बेली सुरति अंड पर लागी। दिल दुरबीन चीन्ह सोइ भागी॥
मन कर भर्म मूल थिर थावै। थिर कर सुरति निरत तत तावै॥
नित नित ऐनक आँखि दिखावै। लिखि कागद पर अच्छर पावै॥
नि:अच्छर निरनै गति न्यारा। निरखि संत सो करै बिचारा॥
रेवतीदास रमज रस बूझा। जिन जिन को संतन मत सूझा॥

अर्थ–हे फूलदास! अपने हृदय में इस समझ कर विचार कर लो कि कबीरदास जी ने ऐसे-ऐसे रहस्यों का वर्णन किया है। मन के पच्चीस तत्त्व हैं और उनके मूल में पाँच ज्ञानेंद्रियां हैं और शरीर में तीन गुण (रज, तम एवं सत्त्व) अनेक संकटों को सहता हुआ निवास करता है। सुरति रूपी लता इस पिंड (शरीर) में लगी हुई है:वह परम सौभाग्यशाली है–जो हृदय रूपी दूरबीन द्वारा इसे पहचान लेता है। उसे जान लेने के बाद मन का भ्रम स्थिर हो उठता है–और सुरति उसे स्थिर करके उस संसक्ति तत्त्व से निरत कर देती है। यह सुरति आँखों में नये-नये ऐनक लगाकर नए नए दृश्यों को दिखाती रहती है और बाद में, कागज के ऊपर लिखकर ही उन अक्षरों (अनुभव प्रतीकों) को समझा जा सकता है।

वह परम तत्त्व अक्षरयुक्त है, और निर्णय शक्ति से विलक्षण भी है और सन्त जन उन्हें देखकर ही उन पर विचार करते हैं। इन रेवती दास ने भी उस आध्यात्मिक (रमज) रस को समझ लिया है–और उन्होंने भी समझा है–जिन्हें सन्त मत सुझाई पड़ा है (उनमें से वे भी एक हैं।)।

ये मन काल बड़ा बल भूता। पाँच पचीस संग मजबूता॥
तीनि गुनन तन मन बिचरागै। चलकर स्रुतिमन बिष रससाजै॥
तासे थिर करि सुरति लगावै। कंज कँवल बिधि बिच ठहरावै॥
पल पल सुरति सिखर निहारै। लीलगिरी पर समझि सिधारै॥

रबि रजकिरनि गगन के पारा। सूरति सतगुरु ऐन निहारा॥
सिखर निकर नभ द्वारे माईं। सेता सहर अटारी जाई॥
स्याम कंज स्रुति दूरि बहाई। द्वैदल कँवल केल हिये आई॥
सरवर गिरजा गुरुपद माईं। कंज कँवल तज पदम सुहाई॥
लघु दीरघ दल चारि बिराजै। सतगुरु सुरति मीन जहँ राजै॥

अर्थ—यह मन काल से भी बड़ा और मजबूत है। पाँच इन्द्रियों और पच्चीस तत्त्वों की संगति पाकर और भी शक्तिशाली हो उठा है। यह मन तीनों गुणों को लेकर शरीर में आनन्दित होता रहता है और यह मन निर्भव भाव से चलता हुआ विष रस (वासनाओं) से अपने को सज्जित कर लेता है। और यही मन, उनसे अपने को पृथक् और स्थिर करके सुरति के ध्यान समाता है और अपने को कमल दलों के बीच विधिपूर्वक स्थिर करता है। यही मन ही, प्रतिपल सुरति के शिखरों को देखा करता है और सारी सारी बातें समझते हुए उस नीलगिरि पर प्रस्थान करता है। सतगुरु इसी मन के द्वारा सुरति की एनक से सूर्य की रज किरणों (आत्म चैतन्य के तेज को) को शून्याकाश के उस पार देखते रहते हैं। आकाश के द्वार पर शिखर है और उसका सेवन करने वाला उस स्थल पर स्थित अट्टालिका तक पहुँच जाता है। इसके पश्चात् श्याम-कमल को दूर खिसकाकर दो दलवाले कमल पर आकर क्रीड़ा करता है। पर्वत पर उत्पन्न सरोवर ही गुरु पद है। उसके बाद कमल पंखुरियों के बाद वहाँ वह विशिष्ट कमल शोभित होता है। वहाँ लघु तथा दीर्घ चार कमल दल शोभित होते हैं—सतगुरु की सुरति वहाँ मछली (मत्स्य) की भाँति निवास करती हैं।

फूलदास ये लखि लखि बैना। सूरति द्वार पार की सैना॥
या से परें आदि घर न्यारा। या से अंत संत दरबारा॥
जिन सतगुरु की सैनबिचारी। सो गति बूझै अगम अपारी॥
ये मत संत पंथ नहि भेषा। खोज-खोज पचि मुए अनेका॥
सुरतवंत गुरु सैन लखावै। सो चेला सतगुरु से पावै॥
पदम मध्य सत सतगुरु धामी। सूरति सिमटि सब्द अलगानी॥
जिमि सागर बागर भया सिंधा। सरिता समुँद मिलै जिमिबुन्दा॥
अस सूरति सिषसतगुरु पासा। सब्द गुरुमिलि किया निवासा॥
गुरु सिष सार धार इक जानी। ज्यों जल मिलि जल धार समानी॥
अस अस खोजकरै कोई भाई। नित हित संत चरन लौ लाई॥
तन मन धन संतन पर वारै। नित नित सतसंगति की लारै॥
दास भाव सतसंगति लीना। दीन हीन मन होइ अधीना॥

अर्थ—हे फूलदास मेरी बातों को आँखों से देख-देखकर और सुरति के उस पार की स्थिति को समझो। उसके बाद, अगम्य ब्रह्म का विलक्षण घट है, यहीं से सन्तों के दरबार का अन्त हो उठता है। जिन सन्तों ने सतगुरु की इस दृष्टि (देना) पर विचार कर लिया है, उस अगम्य एवं अपार गति को वही समझ सकता है। सुरतिसिद्ध गुरु ही उस सेना दिखाई पड़ता है और उसका शिष्य ही उस सतगुरु से उसे प्राप्त कर सकता है। इसी पद्म के मध्य में वह सत्-सतगुरु निवासी है और यही सुरति में सिमट कर 'सबद' आगम हो उठता है। जैसे समुद्र जलराशियों (बागर) से मिलकर प्रबल सिन्धु हो उठता है और जिस प्रकार बूँदे नदी से मिलकर समुमय हो उठती हैं—ऐसा ही सुरति सिन्धु सतगुरु के पास है और बूंद

रूपी सब्द गुरु उसमें मिलकर वहाँ निवास करता है। गुरु की शिक्षा का सार तत्त्व उसकी एक धारा है और 'सबद गुरु' यहाँ मिलकर निवास करता है। हे भाई! यदि इस प्रकार की खोज कोई करता है तो तो वह लोक हित के लिए नित्य सन्तों के चरणों में तल्लीन हो सकता है--अन्य नहीं। सम्पूर्ण अपने तना, मन, धन को वह साधक सन्तों के चरणों पर बिछाकर करता है और नित्य सत्संगति के प्रति संसक्तभाव से रमे।

चित्तभाव दिल मारग चावै। सब साधन की टहल सुहावै॥
ये बिधि भाँति रहै रस लाई। तब सतगुरु सत दया लखाई॥
द्वारा दृग दुरबीन लखावै। कंज स्याम ता समझ सुनावै॥
ता में समुन्दर सोत अपारा। ता में लील पील सम द्वारा॥
सूरति समझि बूझि जहँ आवै। गज गिरजा तहँ आसन लावै॥
नित दिन रहै सुरति लौ लाई। पल पल राखै तिल ठहराई॥
या में सुरति नेक नहिं बिसरै। छिन छिन मन से न्यारी पसरै॥
येहि बिधि जतन करै कोई लाई। सूरति रहै द्वार पर छाई॥

अर्थ--दासभाव से वह सत्संगति में लीन हो और अत्यन्त दीन मन (गर्वरहित भाव से) उनके चरणों में लवलीन (समर्पित) हो। इस विधि से तथा इस भाव से सत्संगति में संसक्त रहे, तभी उसे सत्गुरु की सच्ची दया दिखाई पड़ेगी। अपनी अन्तर्दृष्टि की दूरबीन द्वारा वह देखे तब श्याम कमल की समझ उसके चित्त में आएगी। उस श्याम कमल के अन्तर्गत अनेक समुद्रों के जलस्रोत हैं और उसमें नीले-पीले तथा समतल द्वार हैं। सुरति समाधि भी जहां समझ-बूझकर आती है वहाँ गणेश एवं दुर्गा दोनों आसन प्राप्त करते हैं। नित्य-प्रति -नित्य सुरति में लवलीनता लगाए रहो और प्रतिपल तिल सदृश हृदय को स्थिर रखो। इन क्षणों में सुरति लेखमात्र भी विस्मृत न हो और वह क्षण-क्षण इस मन में विलक्षण होकर फैलती रहे। इस प्रकार का प्रयत्न कोई मन लगाकर करे तो सुरति (निरन्तर) उसके चित्त के दरवाजे पर बराबर स्थित मिलेगी।

॥ फूलदास उवाच ॥ चौपाई ॥

फूलदास कहै अन्तरजामीं। अगम बस्तु दीन्ही सहदानी॥
सुनी न भेष पंथ के माईं। अजर पंथ मो को दरसाई॥
मो को कीन्ह सनाथी स्वामी। आदि अलख की दीन्ह निसानी॥
अब तौ रहौं चरन लौ लाई। जो कबीर सो तुलसि गुसांई॥
जो कबीर बिधि भाखि बताई। सो सो सब तलसी पै पाई॥
तुलसि कबीर एक कर जाना। दूजा भाव न मन में आना॥

अर्थ--फूलदास (ये बातें सुनकर) बोले, हे अन्तर्यामी! आपने भेंट के रूप में मुझे यह दुर्लभ वस्तु दी है। पंथ के बीच भेष रचना की बात मैंने नहीं सुनी थी, आपने तो मुझे न नष्ट होने वाला सनातन तत्त्व दिखाया है। हे स्वामी! आपने तो मुझे सनाथ कर दिया है और आदि तथा उन लक्ष्य के तत्त्वों को भेंट के रूप में दिया है। अब तो मैं निरन्तर आपकी ही चरणों में समर्पित रहूँगा--मेरे लिए जैसे कबीरदास जी थे, अब तुलसी साहब हैं। जिस रहस्य को कबीरदास जी ने कहकर बताया है, उन सारे तत्त्वों को मैंने प्रत्यक्षत: तुलसी साहब से प्राप्त किया है। अब मैं कबीर तथा तुलसी साहब को समझ रहा हूँ और उन दोनों के प्रति दो प्रकार के भावों (अन्यथा भाव) को नहीं रखता।

॥ दोहा ॥

तुलसी कबीर ये एक गति, दूजा कहे अचेत।
दोनों स्वामी एक रस, मोर चरन से हेत॥

अर्थ–तुलसीदास तथा कबीरदास दोनों एक ही ज्ञानधारणा के हैं, इन्हें दो कहने वाले मूर्ख हैं। मेरे लिए आधार स्वरूप ये दोनों स्वामी एक ही आनन्द सागर हैं।

॥ वचन तुलसी साहिब ॥ चौपाई॥

तुलसी बिधि पहिचानि कै, दीन्हा पंथ लखाइ।
सुँरति बाँधि असमान पर, निज घर पहुँचें जाइ॥

अर्थ–तुलसी साहब ने साधनावधि पहचान कर उन्हें अपना पंथ दिखा दिया और फूलदास शून्याकाश में सुरति बाँधकर अपने आश्रम के आवास पर पहुँचे।

॥ छंद ॥

तुलसी बिधि गाई अगम लखाई। फूलदास बिधिराह लई॥ १ ॥
रेवती अतिदासा सुरति निवासा। तिल में बासा जुगति सही॥ २ ॥
राति और दिवसा छिन छिन बासा। सुरति अकासा निरतिरही॥ ३ ॥
मन सूरति लागी नेकन भागी। निस दिन जागी ठहरतहीं॥ ४ ॥
रेवती और फूलास्वामी अनुकूला। सूल बंध सब काटि दई।। ५ ॥
मनहीं बुधि पाई मूल नसाई। स्वामी सहाई बाँह गही॥ ६ ॥
मन के भ्रम भागे थिर होइ लागे। कुछ अभिलाषा नाहि रही॥ ७ ॥
मन की बृत चेती छाँड़ि अचेती। केतद्वार पर लागिरही॥ ८ ॥
तुलसी कहिकहिया अगम लखैया। चरन पाइ स्तुतिपागि रही॥ ९ ॥

अर्थ–तुलसी साहब ने अपनी साधना विधि का गान करके उस अगम तत्त्व को दिखा दिया और फूलदास ने उस साधना मार्ग का अनुगमन कर लिया। रेवतीदास जैसे समर्पित भक्त ने सुरति समाधि में निवास करके युक्तिपूर्वक सिद्धि प्राप्त कर ली। सुरति रूपी आकाश में रात्रि-दिवस क्षण-क्षण निवास प्रारम्भ किया और (अन्तर्वृति) सुरति (अपने स्थान पर) स्थिर रही। रेवतीदास एवं फूलदास के अनुकूल होकर तुलसी साहब ने कर्मबन्धन की उनकी पीड़ा समाप्त कर दी। उनके सहायक स्वामी तुलसीसाहब ने बाँह पकड़ लिया–दोनों ने उन्हें मन तथा बुद्धि से प्राप्त कर लिया और उनकी मूल कर्म वासनाजनित पीड़ा समाप्त हो उठी॥

सहायता करने वाले स्वामी ने मेरी बाँह पकड़ ली और मन तथा बुद्धि द्वारा उस परम तत्त्व को प्राप्त कर लिया–अविद्या एवं वासनाएँ जो सबके भूल में थी, नष्ट हो उठीं। मन के समस्त भ्रम दूर हो गए और आध्यात्मिक भावनाएँ स्थिर होने लगी और अब इस लोक के भोग की कोई भी अभिलाषा शेष नहीं बच रही। अर्थात्, वे सब विनष्ट हो उठी। वह जो चित्त को अचेत करने वाली वासनाएँ थीं, उसे छोड़ दी और मन की वृत्ति सुरति योग की ओर लगी सचेष्ट हो उठी। इस प्रकार तुलसी साहब ने अगम के रूप में लक्षित होने वाले उस परमार्थ तत्त्व को कहकर बताया और सन्तों के चरणों को पाकर उनकी मानसवृत्ति परम्परा के साधु सन्तों की ज्ञानवाणी में रमी रही।

॥ सोरठा ॥

फूलदास सुनु बात, संत चरन अति अगम गति।
सत मत गति पद सार, ये अगार गति को लखै॥ १॥
कोइ जानै स्रुति सार, सब्द लार लै पार रहि।
सिंध बुन्द स्रुति धार, मिलि अगार अद्‌बुद भई॥ २॥

अर्थ–हे फूलदास! मेरी बातें सुनों, सन्तों का चरण अर्थात् उनकी शरणागति अत्यन्त विलक्षण है। उसकी शरणागति का ही सार तत्त्व सन्तों का मत और उनकी ज्ञानप्राप्ति है। उनके शरण में आकर भक्तजन आगे आने वाले दुर्लभ ज्ञान का साक्षात्कार करते हैं।

शब्द ज्ञान में संसक्त होकर कोई बिरला ही श्रुति के सार तत्त्व को समझता है और उसी के द्वारा ही वह उस विलक्षण तत्त्व को देखता है। सिन्धु में बिन्दु के मिलन ही श्रुति की धारा है और उस धारा से मिलकर यह अद्‌भुत हो उठती है।

सम्बाद प्रियेलाल गुसाँई के साथ

॥ चौपाई ॥

नाम जाति इक अग्गरवाला। कहैं नाम तेहिं सुरति गुपाला॥
जिन के गुरु गुसाँई आये। प्रियेलाल अस नाम रहाये॥
उन उनके घर किया निवासा। सुन सोइ बात दरस अभिलासा॥
जिन पुनि सुनी हमारी बाता। दोऊ चले दरस को साथा॥
प्रियेलाल और सुरति गुपाला। आये लिये हाथ में माला॥
आये कीन्ह डंडवत बैठे। प्रीति उठी तुम दरसन भेंटे॥
कहै तुलसी किरपा तुम कीन्हा। दासजानि प्रभुदरसन दीन्हा॥
अपन जानि प्रभु भयउ दयाला। स्वामी बिन किरपा को पाला॥

अर्थ–एक अग्रवाल जाति के व्यक्ति जिनको सब सुरति गोपाल कहते थे–उनके गुरु गोसाईं साधु आए– जिनका नाम प्रिये लाल था। उन्होंने सुरति-गोपाल के यहाँ निवास किया–इन बातों को सुनकर उन्होंने सन्त तुलसी साहब को देखने की अभिलाषा प्रगट की। उन लोगों ने जो जो हमारी बातें सुनी थीं, उनसे प्रेरित होकर दर्शन की अभिलाषा से चल पड़े। प्रियेलाल और सुरति गोपाल हाथ में माला लिए हुए आए। उन्होंने आकर तुलसी साहब को दंडवत् किया और कहा कि हमारे मन में आपके प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ कि आपका दर्शन करें।

इसे सुनकर, तुलसी साहब बोले, कि आपने बड़ी कृपा की और मुझे दास समझकर मुझपर कृपा की। अपना समझकर आप मुझपर दयालु हुए बिना स्वामी के अपनी कृपा से कौन शिष्य का पालन कर सकता है।

प्रियेलाल उवाच ॥ चौपाई ॥

प्रियेलाल कह भये प्रसन्ना। भीतर प्रेम मगन प्रिये मन्ना॥
स्वामी दुरलभ दरस तुम्हारे। संत दरस बड़ भाग हमारे॥
नगर नारि सब यों बिधि भाखा। सो बिधि तौ हम एक न ताका॥
सब मिलि कहैं गनर के माई। उन दरसन नहिं जावौ भाई॥

बेद पुरान एक नहिं जानै। राधा कृष्न राम नहिं मानै॥
गंगा जमुना कछू न राखै। कछु नहिं आदि अंत को भाखै॥
सब जग मिलि ये कहत बनाई। सो बिधि सुनि हमहूँ चलि आई॥

अर्थ–इस बात पर अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रियेलाल ने कहा। वे मन से अत्यन्त प्रिय और भीतरी प्रेम से अत्यधिक विह्वल थे। हे स्वामी–आपका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है और हमारे बड़े भाग्य से आप जैसे सन्त का दर्शन हुआ है। नगर के समस्त नर-नारियों ने इस प्रकार (निषेध द्वारा) मना किया किन्तु उनकी ओर देखा तक नहीं। नगर के अन्तर्गत सभी एक साथ मिलकर कहते हैं कि हे भाई! उनके दर्शन के लिए न जाओ। वे एक भी वेद पुराण को नहीं जानते और राधा-कृष्णा तथा राम पर विश्वास नहीं करते। गंगा-यमुना जैसी पवित्रा नदियों को नहीं स्वीकार करते और किसी भी मनुष्य के लिए कर्म और मुक्ति की बात नहीं करते। सारा लोक समुदाय इस प्रकार की बातें बनाकर कहता है, उनकी बातें को सुनकर हम भी यहाँ चले आए।

॥ वचन तुलसी साहिब॥ चौपाई॥

कहि तुलसी उन सत सत कहिया। मैं मति-हीन बुद्धि नहि रहिया॥
मैं तौ सब चरनन कौ दासा। मैली बुद्धि नीच मोरी आसा॥
तुम्हरे चरन मोर निरवारा। पकरि हाथ करिहौ निस्तारा॥
मैं औगुन की खानि अपारा। सूरति संत चरन की लारा॥
मोर निबाह तुम्हारे हाथा। अब तौं लगौं चरन के साथा॥

अर्थ–तुलसी साहब यह सुनकर बोले, वे सही-सही कह रहे हैं। मैं तो ज्ञानहीन हूँ, मुझमें बुद्धि नहीं है। वै तो सभी जनों के चरणों का दास हूँ–मेरी बुद्धि मैली है और सारी आकांक्षाएँ निष्कृष्ट कोटि की हैं।

आपके ही चरणों में मेरा उद्धार सम्भव है और मेरे हाथों को थाम्हकर मेरा उद्धार कर दें। मैं अनन्त अवगुणों की खान हूँ और सुरति ध्यान में लगे सन्तों के चरणों में मुझे अपार संसक्ति है। आपके हाथ ही मेरा निर्वाह सम्भव है और अब तो मैं आपके चरणों के साथ लग रहा हूँ।

॥ प्रश्न प्रियेलाल॥ चौपाई॥

हे स्वामी अस अस कस भाखौ। हम जग जीव चरन में राखौ॥
काम अरु क्रोध लोभ के माते। विष रसभोग फिरै सँग साथे॥
ये जग जाल काल दिन राती। कर्म भाव भरमै सँग साथी॥
हम चहले के जीव अनीती। छूटे तुम चरनन की प्रीती॥
श्रीभगवान जी कहत पुकारा। मैं तौ सदा संत की लारा॥
गीता मैं अरजुन से भाखा। मो से बड़ा संत को राखा॥
श्रीमुख ऐसे आप बखान्यो। मों से अधिक संत के जानो।।
मो को संत भाव रस नीका। जगत भाव रस लागै फीका॥
श्रीमत में अस कहत बखानी। भागवत में ऊधो से बानी॥
स्वामी तुम सा संत सुजानी। हम निस्तार चरन में पानी॥
संतन की गति बेद पुकारा। नेतहि नेत न पावै पारा॥

महातम सब सब मिलि भाखा। सब से बड़ा संत को राखा॥
मैं स्वामी इक पूछौ बानी। किरपा करि भाखौ सहदानी॥
दास भाव पूछौ मैं स्वामी। या में भेद भाव नहिं जानी॥

अर्थ–हे स्वामी! आप इस प्रकार क्यों कह रहे हैं–हम जैसे सांसारिक जीव आपके चरणों में लगे हुए हैं। हम सभी काम-क्रोध तथा लोभ में रमें हैं और विषय वासनाओं के रसभोग और विष रूपी विषय वासनाओं के भोग विलास में निरन्तर साथ-साथ घूमते रहते हैं॥

यह संसार का जंजाल रात-दिन काल का जन्मा है और हम सब कर्मभाव से निरन्तर-संगी साथियों के साथ इसी में भ्रमित रहते हैं। अनीति करने वाले हम सब जीव कीचड़ में संसक्त हैं और आपके चरणों में प्रीति के बाद ही उससे मुक्ति सम्भव है। मैं श्रीभगवान जी को पुकार कर कहता हूँ कि मैं तो सदा सन्तों के प्रति प्रीतिपूर्वक समर्पित हूँ। गीता में भगवान ने अर्जुन से कहा था--मुझसे बड़ा सन्तों का रक्षक और कौन है? हे तुलसी साहब! आप भी इसी भाव से अपने श्रीमुख द्वारा वर्णन करें। मुझे भी सन्तों का भाव एवं उनकी वाणी का रसास्वादन अच्छा लगता है और उसकी तुलना में सांसारिक रस तथा भाव फीके लगते हैं। श्रीमद्भागवत में ऐसा ही (श्री कृष्ण द्वारा) उद्धव से कहा गया है। आपकी भाँति चतुर एवं विलक्षण स्वामी बिरले हैं और हम जैसे भक्त अपना जीवन यापन आपके चरणों में ही समझाते हैं। सन्तों के विषय में वेदों ने पुकार कर कहा है, उनकी महिमा की कोई इति नहीं है, वे नेति हैं–उसका कोई पार नहीं पा सकता। सभी ने मिलजुलकर उनके महात्म्य का वर्णन किया है और उन्होंने सन्त को सर्वोपरि स्थापित किया है। हे स्वामी! में आपसे एक बात पूँछना चाहता हूँ–कृपा करके आत्मीयतापूर्वक मुझे बताइये। हे स्वामी! मैं इसे दासस्यभाव से पूछ रहा हूँ और मैं इसमें किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रख रहा हूँ।

पहिले जग के बेद बनावा। यह रचना कौंने बिधि आवा॥
जीव कहाँ से आया कहिये। केहि बिधि कर्म माहिं भौ रहियै॥
जीव मुक्ति कैसे करि पावै। अपने घर को केहि बिधि जावै॥
माया मोह जगत अँधियारा। और अज्ञान काम की लारा॥
ऐसे जीव छुटन नहिं पावै। अपने घर को केहि बिधि जावै॥
अपना ज्ञान न सतसंग मानै। गुरु बिन राह कौन बिधि जानै॥
सतगुरु मिलै तो बाट बतावै। जब कोइ जीव मुक्ति को पावै॥
गुरु सम बड़ा और नहिं कोई। ये भगवान कही मुख सोई॥
गुरु द्रोही पातक का मारा। कभी न उतरै भौ के पारा॥
गुरु बिन कर्मनास को करई। भर्म माहिं भौंजल में परई॥
गुरु से बड़ा और नहिं रहिया बेद। पुरान संत अस कहिया॥

अर्थ–संसार में सबसे पहले वेद बनाए गए–यह रचना किस प्रकार से पहले आई। यह जीव कहाँ से आया, आप यह बताएँ–और यह जीव किस प्रकार कर्मभाव में भ्रमित हो उठा। यह जीव किस प्रकार मुक्ति प्राप्त कर सकता है और अपने स्वधम (स्वर्ग आदि) में कैसे पहुँच सकता है। माया के अज्ञान मोह में यह सम्पूर्ण संसार अंधेरा हो उठा है और उसमें मानव का अज्ञान काम की संसक्ति ही है। ऐसे जीव, अज्ञान से मुक्त नहीं हो पाते और फिर से अपने घट (स्वर्ग आदि) में कैसे जाएँ। वे सत्संग को भी आत्ममुक्ति का ज्ञान हीं मानते और बिना गुरु के जिस प्रकार मुक्ति मार्ग को चुनें, यह अस्पष्ट है। कोई सत्गुरु मिलने पर ही मुक्ति का मार्ग बता सकता है और तभी कोई जीव मुक्ति को प्राप्त कर

सकता है। गुरु से बड़ा और कोई नहीं है–ऐसा भगवान कृष्ण ने स्वयं अपने मुख से कहा है। गुरु का द्रोही महापाप (पातक) से ग्रस्त है और वह कभी इस संसार से मुक्त नहीं हो सकता। बिना गुरु के कर्मों का विनाश कौन कर सकता है? और बिना गुरु के व्यक्ति भ्रम से ग्रसित होकर भवजाल में जा पड़ता है। पुराणादि और सन्तजन यही कहते हैं कि गुरु से बड़ा और कोई नहीं है।

॥ उत्तर तुलसी साहिब । चौपाई ॥

तुलसी कहैं ये सत्त बखाना। अस अस बेद पुरान न जाना॥
ये तुम भाखा सत्त प्रभावा। बेद पुरान येही बिधि गावा॥
पुनि संतन कछु और बखाना। सतगुरु मता भिन्न करि जाना॥
जगत गुरू कंठी गहि बाँधा। ता को गुरू कहौं पुनि साधा॥
यह ब्यौंहार गुरू जग सोई। मुक्ति गुरू कोइ औरै होई॥
ये तौ गुरू जगत ब्यौहारी। इनसे मुक्ति न होइ बिचारी॥
कर्म जाति देही गुरु करई। कर्म भोग इनसे नहिं टरई॥
गुरू है आप करम के माईं। चेला को कैसे मुक्ताई॥
गुरु की करनी गुरु सोइ पावै। चेला आप कर्म भुगतावै॥
जगतगुरू जिव पार न पावै। वो गुरु संत और गोहरावै॥
कनफूका गुरु नहीं कहाई। गुरु दयाल की औरै राही॥

अर्थ–तुलसी साहब प्रियेलाल गुसाईं को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तुम पर सत्य कह रहे हो। इसका रहस्य भेद और पुराण भी नहीं जानते। यह तुमने गुरु के प्रभाव का सही-सही वर्णन किया है, इसी प्रकार से इनके विषय में वेद पुराणों ने भी कहा है। इसके बाद इसके विषय में सन्तों ने कुछ और कहा है और सत्गुरु के मत को तुम परम्परा के मतों से भिन्न करके समझो। ये जगतगुरु संत गले में कंठी नहीं बाँधते, उन्हीं को साधुजन गुरु कहते हैं। कंठी गुरु का व्यवहार तो सांसारिक रीति है किन्तु मुक्ति दिलाने वाला गुरू कोई अन्य ही होता है। ये कंठी वाले गुरु व्यावहारिक संसार के हैं:इनके द्वारा मुक्ति सम्भव नहीं है। देह के कर्मों में विश्वास रखने वाला यह गुरु उसी के अनुसार कर्म करता है: अतः इनसे कर्मभोग की मुक्ति सम्भव नहीं है। जब गुरु स्वयं कमर तक फँसा है तो वह चेलों के लिए कैसे मुक्तिदायी हो सकता है? गुरु स्वयं अपनी करनी का फल भोगता है और चेला भी अपने कर्मों से ही इस संसार के कष्टों को भोगता है। यह सांसारिक गुरु स्वयं तो इस संसार से मुक्ति नहीं प्राप्त करता-दूसरी ओर वह अन्य शिष्यों को मुक्ति के लिए निरन्तर बुलाता रहता है। कान फूंकने वाले (कान में मंत्र देने वाले) गुरु गुरु नहीं कहलाने। कृपालु सर्व दयालु गुरुओं की राह दूसरी ही है।

वे दयाल गुरु समरथ दाता। जग भौजाल पार के करता॥
गुरु है सब्द सुरति है चेला। चीन्है गुरु चेला सोइ मेला॥
वे गुरु स्वामी अगम अपारा। पिंड ब्रह्मंड दोउ से न्यारा॥
ता के रूप रेख नहिं काया। वे गुरु मिलैं तो मुक्ति लखाया॥
ये तो गुरू कर्प की लारी। आप न तरे और कहा तारी॥
ये जानौ ब्यौहारी नाता। लेन देन पैसे के साथा॥
खान पान चेला से मांगै। गर्भ बास कर देने लागै॥

चेला जानि जाहि सो लेई। पुनि पुनि ताहि भोग करि देई॥
पुत्र बैल घोड़ा होइ ऊँटा। सो बिनु दिये कोऊ नहिं छूटा॥
ये गुरु लेन देन ब्यौहारा। गुरु चेला भौ कर्म पसारा॥
कंठी बाँध गुरू सोइ भइया। जग ब्यौहार नात यहि कहिया॥
जग में कन्या क्वारी ब्याही। करे ब्याह तेहि कहै जमाई॥
ब्याह किये का नाता लागा। येहि बिधि गुरु चेला मत जागा॥
सतगुरु मत पद अगम अपारा। ता को चीन्ह चीव होइ पारा॥
वो गुरु पंथ संतही जानै। जग गुरुवा नाहीं पहिचानै॥

अर्थ–ये गुरु दयावान हैं, समर्थ दाता हैं और इस संसार के भवजाल से ये मुक्ति दिलाते हैं। गुरु शब्द है, चेला सुरति है। जिस गुरु को चेला पहचान लेता है, वह उसी में मिल जाता है। यह गुरु ही स्वामी तथा आगम एवं अपार हैं। ये पिंड तथा ब्रह्मांड दोनों से विलक्षण हैं। उन गुरु के न रूप है, न लक्षण हैं, न शरीर है और वे ही गुरू जब मिलते हैं तो मुक्ति दिखाई पड़ती है। यह तो गुरु कर्म के प्रति आसक्ति है कि जब वह नहीं तरेगा तो दूसरे को क्या तारेगा। गुरु-शिष्य का लोक का सम्बन्ध लोक व्यवहार का है और उनके बीच का सम्बन्ध पैसे के लेन देन का है। वे अपने चेले से खाने-पीने की सामग्रियां माँगते हैं। चेला समझ कर जो चाहते हैं, उससे ले लेते हैं और पुनः उस वस्तु का भोग करते रहते हैं। पुत्र, घोड़ा, ऊँट तथा बैल आदि वे गुरु मागते हैं, और उसे दिए बिना कोई भी नहीं बचा। गुरु के साथ इस लेन-देन के व्यवहार में फँसे गुरु तथा चेला दोनों भवसागर के बन्धन में फँस गए। कंठी बाँधकर कर वह गुरू बना है, संसार में यही व्यवहार और सम्बन्ध गुरु कहा गया है। संसार में क्वारी कन्या व्याही जाती है संसार जिससे कन्या का विवाह करता है, उसे जमाई (जामाता) कहकर पुकारता है। सतगुरु का मत तथा पद अगम्य और अपार है और उसकी पहचान यहाँ नहीं, सुरति समाधि के उस पार के बीच में होती है। वे सन्त के मार्ग को भी गुरु मार्ग जानते हैं और इस भौतिक संसार में उसे गुरु के रूप में नहीं पहचानते।

चेला बने जीव नहि हाना। गुरु सोई बनै कर्म की खाना॥
बिना भक्ति उबरै नहिं भाई। तासे सोई बनै कर्म की खाना॥
बिना भक्ति उबरै नहिं भाई। तासे संतन भक्ति दृढ़ाई॥
भक्ति बिना जिव जम करै होना। बिना भक्ति चौरासी खाना॥
बिना भक्ति कोइ पार न जाई। ता से भक्ति संत ठहराई॥
गुरु सेवा स्वामी को चीन्हो। ता से सदा काल आधीनो॥
स्वामी कठिन खोज करि पैहै। सतगुरु भेद संत समझैहै॥
स्वामी संत बिना नहिं पावै। बिना संत गुरु को दरसावै॥
जग के गुरू न जानै भाई। वे सतगुरु कठिन से पाई॥
दास बनै सतगुरु को पावै। दास बिना गुरु नहिं दरसावै॥

अर्थ–चेला बनने पर जीव की कोई हानि नहीं होती। यहाँ गुरु वही बनता है जो कर्मों की खानि में फंसा हो। चूँकि बिना भक्ति के चेलों का उद्धार सम्भव नहीं है, अतः सन्तों ने भक्ति की दृढ़ता स्थापित की है। गुरु की सेवा करते हुए उन्हीं को स्वामी की भाँति पहचान लेता है, इसलिए वह मुक्त नहीं होता और वह सदा काल के अधीन रहता है। कठिन खोज के बाद ही स्वामी की प्राप्ति होती है, इसलिए

सतगुरु ही संत का भेद बतलाते है, अन्य और कोई नहीं। बिना सन्तों के स्वामी की प्राप्ति नहीं होती और बिना सन्त के गुरु को कौन मार्ग दिखा सकता है। जो जग के गुरु को नहीं समझते वे सतगुरु को भी बड़ी कठिनाई से जान पाते हैं। सत्गुरु का दास बनने पर ही, सत्गुरु को प्राप्त कर सकते हैं--बिना दास को सत्गुरु नहीं दिखाई पड़ते।

।। प्रश्न प्रियेलाल ।। चौपाई ।।

तुलसी स्वामी कहौ बुझाई। कौन बिधी सतगुरु को पाई ।।
कौन बिधी स्वामी दरसावा। कौन भक्ति से सतगुरु पावा ।।
वे गुरु कहाँ कहाँ है बासा। स्वामी का कहौ कौन निवासा ।।
कौन बिधी जो नजर में आवै। चेला कीन विधी से पावै ।।
सो बिधि भिन्न भिन्न दरसाई। जा से चित्त की संसय जाई ।।

अर्थ--हे स्वामी! तुलसी साहब ने समझाकर बताया है, कि किस भांति से सत्गुरु की प्राप्ति होती है। किस विधि से वह स्वामी दिखाई पड़ता है और किस भक्ति से सत्गुरु की प्राप्ति होती है वे गुरु कहाँ है, उनकी निवासस्थली कहाँ है, उस स्वामी की निवासस्थली कौन-सी है। वह किस-किस प्रकार से दिखलाई पड़ सकता है, और शिष्य किस विधि से उन्हें प्राप्त कर सकता है। इस विधि के भिन्न-भिन्न स्वरूपों द्वारा उसे प्रकट करें--जिससे कि चित्त में स्थित इस विषय का संदेह समाप्त हो सके।

।। उत्तर तुलसी साहिब ।। चौपाई ।।

तमने गुरु अपने को जाना। आदि गुरू मत मर्म भुलाना ।।
कंठी बाँधि ज्ञान बतलावै। भक्त भये सतगुरु नहि पावै ।।
उन सतगुरु की राह नियारी। पावै संत चरन की लारी ।।
सतगुरु आप पुरुष हैं स्वामी। गगन कंज मद्ध अस्थानी ।।
पिरथम अष्ट कवल को बूझै। सहसदल कँवल पार होइ सूझै ।।
ता के परे चार दल भाई। ता से भिन्न दोइ दरसाई ।।
ता के आगे सतगुरु धामा। चौका मिलै गुरू परमाना ।।
पारब्रह्म जो कहिये ऐसा। ता के आगे सतगुरु देसा ।।
पारब्रह्म जेहि कहि गोहराई। ता ने सतगुरु भेद न पाई ।।
निरगुन सरगुन दोउ से नयारा। भिन इन से सतगुरु दरबारा ।।
यह चेला वो सतगुरु पावै। वो सतगुरु सोइ कर्म नसावै ।।
जहँ लगिवो सतगुरु नहिं पावै। तहँ लगि चेला निगुर कहावै ।।
वो सतगुरु चौथे पद स्वामी। ता की भक्ति संत सब ठानी ।।
सतगुरु फोड़ै गगन अकासा। तब पहुँचै सतगुरु के पासा ।।

अर्थ--तुमने अपने को गुरु समझकर आदि गुरु के मत के रहस्य को भुला दिया। कंठी बाँधकर ज्ञान की बातें करते हो और भक्त बनकर भी सत्गुरु को नहीं प्राप्त किया। उन सत्गुरु की राह विलक्षण है: कोई भक्त गुरु को सन्तों के आत्मीय प्रेम-से ही उसे प्राप्त कर सकता है। सत्गुरु स्वयं आत्म पुरुष-रूप (निर्गुण ब्रह्म रूप) है और उसका स्थान शून्याकाश में स्थित कमल के मध्य में है। प्रथम अष्ट कमल को समझो और यह सहस्त्रार कमल के उस पार सुझाई पड़ता है। हे भाई! उसके आगे चार दल

कमल है फिर उससे भिन्न दो दलों का कमल दिखाई पड़ता है। उसके आगे, सतगुरु का स्थान है और गुरु के प्रमाण रूप चौका यहीं मिलता है। उस परमब्रह्म के लिए जिसे ऐसा ही कहा जाता है, उसके आगे सतगुरु दिखाई पड़ता है। जिसे परमब्रह्म कहकर बुलाया जाता है, वह भी सतगुरु का रहस्य नहीं प्राप्त कर पाता। वह निर्गुण तथा सगुण दोनों से विलक्षण है—और सतगुरु का दरबार इन दोनों से भी भिन्न ह। वह चेला जो उस सतगुरु को प्राप्त करता है। सतगुरु वह है, जो कर्मों के फलों का विनाश कर देता है। जब तक चेला सतगुरु को नहीं प्राप्त करता—वहाँ तक वह निगुण कहलाता है। वे सतगुरु चौथे पद के स्वामी हैं और सारे सन्तगण उन्हीं की भक्ति के लिए कटिबद्ध होते हैं। सतगुरु इस शून्याकाश को तोड़ डालता है, तब वह सतगुरु के पास पहुँचता है।

सो घर मिलि पहुँचै उन पासा। सो चेला सतगुरु का दासा॥
सोई घर से सब जिव आये। निरगुन सरगुन उनहिं बनाये॥
वा के पास जीव चलि जावै। सो जिव जाइ परम पद पावै॥
जहँ लगि वो गुरु नाहीं पावै। जगत गुरू सोइ निगुर कहावै॥
जगत गुरू सब निगुरा भाई। जल लगि गुरु नहिं गगन समाई॥
गुरु ने अपना गुरु नहि पाया। चेला हाथ कहाँ से आया॥
खाना द्रव्य टका के माईं। सो गुरु चेला घर घर जाई॥
ज्यों ब्योपारी हाट लगावा। ऐसे ये गुरु जग रस भावा॥
पेट काज दुकान लगाई। आप तरन की खबरि न पाई॥
कहै चेला को गुरू तरावै। अपनी तरन बिधी नहिं पावै॥
ये ब्योहार तुम्हारा भाई। सतगुरु की तुम सुधि बिसराई॥
जिन ने तन का ठाट सँवारा। जीव अंस का किया पसारा॥
किया पिंड तन रचा बनाई। सात दीप नौखंड रचाई॥
सो स्वामी है घट के माईं। ता से जीव सकल चलि आई॥
सो स्वामी घट माहिं समाना। सबहि संत ये कहत बखाना॥
पिंड ब्रह्मंड दोऊ से दूरा। बसै पास रहै सदा हजूरा॥

अर्थ—उस घर में उनसे मिलन करके ही वह उनके पास पहुँच पाता है, वही शिष्य सतगुरु का दास है। उसी घट से ही सारे जीव आए हैं और उन्होंने ही सगुण तथा निर्गुण को बना रखा है। उन सतगुरु के पास जब जीव चला जाता है तो वह जीव वहाँ जाकर परमपद प्राप्त करता है। जहाँ तक वह उन गुरु को नहीं प्राप्त कर पाता—वह निगुर ही जगत गुरु कहलाता है। इस प्रकार सारे जगत गुरु निगुरा हैं और जब तक वे गुरु के आकाश में प्रवेश नहीं करते (तब तक की स्थिति) ऐसी ही है। जब गुरु ने अपना ही गुरु नहीं प्राप्त किया तो (वह गुरु वैसे बना) और उसके हाथ में चेला क्यों और कैसे आ गया? भोजन और पैसे के लिए वह गुरु चेलाओं के घर घर घूमता है। जैसे किसी व्यापारी ने बाजार लगाया हो उसी प्रकार ये भी गुरु बाजार लगाकर सांसारिक रसों का आनन्द ले रहे हैं। इन्होंने उदरपूर्ति के लिए दूकान लगा ली है स्वयं उन्हें अपने तरने की चिन्ता नहीं है। ऐसा ही, व्यवहार तुम लोगों का है और तुमने सतगुरु की सुधि भुला दी है। जिस व्यक्ति ने इस शरीर के ठाट को सँवार रखा है—उसने (अपने पुनर्जन्म द्वारा) जीव के अंश के प्रसार प्रसार कर दिया है। इस शरीर रूपी पिंड का खूब साज-श्रृंगार कर रखा है—वह सात द्वीपों तथा नव खंडों के लिए अपनी रचना कर ली है। वह स्वामी तो शरीर के ही

अन्दर निवास करता है और उसी में सारे जीव प्रविष्ट होते रहते हैं। वह पिंड तथा ब्रह्मांड दोनों से दूर है, वह पास ही में रहता है और सदा स्वामी भी बना रहता है।''

वा का भेद संत से पावै। चढ़ै सुरति छिन छिन में जावै॥
दास होइ ढूँढ़ै सतसंगा। चरन संत के बाँधै चंगा॥
जाति पाँति मोटा मन त्यागै। संत चरन में संत करि लागै॥
गोसाँई स्वामी पद डारै। बाम्हन जाति पाँति मन मारै॥
नीचा होइ दीन पद धारै। मान और मनी करै सब छारै॥
अस अस समझ संत के चीन्हा। संत चरन में होइ अधीना॥
तब उनसे मारग कछु पावै। सतगुरु संत सोई दरसावै॥
वे कृपाल कहुँ राह बतावैं। पलक माहिं अगमन घर पावै॥
जीवत पावै घर में स्वामी। मुए गये की बात न मानी॥
जीवत मिलै सोई है लेखा। मूए भाखैं अंध अचेता॥
वा को बेद नेत गोहराई। ब्रह्मा बिष्नु राह नहिं पाई॥

अर्थ–उसका भेद सन्तों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है और वह उनका सामीप्य पाकर क्षणभर में ही सुरति ध्यान के मध्य स्थित हो उठता है। दास वही है, जो सत्संगति खोजे, और सन्तों के चरणों में अपना मन बाँध दे। जाति पाँति के बड़प्पन को संसक्त इस मोटे मन को त्याग दे और सन्त बनकर वह सन्तों की चरणों में अनुरक्त हो। गोसाईं अपने स्वामि का पद त्याग दे और यदि जाति से ब्राह्मण है तो जातिपाँति के बड़प्पन को मन से दूर कर दे। वह अत्यन्त छोटा बनकर अपनी लघुता धारण करे और अपने सम्मान तथा मन में स्थित वासनाओं को नष्ट कर दे। सन्तों की समझ इसी के अनुरूप होती है और वह सन्तों के चरणों के अधीन हो। तभी कोई सन्त उनसे मार्ग प्राप्त कर सकता है। जो सतगुरु और संत है, वही यह मार्ग दिखा सकता है। वे सन्त-गुरु कृपालु है, वे मार्ग बताते हैं और साधक क्षण भर में ही उस अपने अगम्य घर को प्राप्त कर लेते हैं। जीते-जी -ही वह अपने गृह स्वामी को प्राप्त कर लेते हैं और मृत होकर पाने की बात यह नहीं मानते। वह जीवित स्थिति में ही साधक को प्राप्त हो क्योंकि कि मृतक को तो अंध और अचेत माना जाता है, वह उसे क्या प्राप्त करेगा। जिसको बेद 'नेति' कहकर गुहराते हैं–जिसके मार्ग को ब्रह्मा तथा बिष्णु तक नहीं प्राप्त कर सकते।

ऋषी मुनी पुनि कहैं पुराना। सिव जोगी कोई मरम न जाना॥
दस औतार जगत जिव माया। निरंकार जोती से आया॥
निरंकार हैं सोल्हा भाई। पुरुष निरंजन जोति लगाई॥
निरगुन निराकार निरबानी। चारो नाम काल अभिमानी॥
चारो जुगन काल जिव चारा। सोइ जग जाल निरंजन डारा॥
जोति निरंजन किया बिचारा। ता से उतपन दस औतारा॥
दस औतार काल के जाना। जा में सगरा जगत भुलाना॥
निरंकार काल है भाई। जा ने तीनि पुत्र उपजाई॥
ता ने कीन्हा बेद बिधाना। सास्तर कीन्हे बेद पुराना॥
या में ऋषी मुनी सब बूड़ा। जग अज्ञान जीव भया मूढ़ा॥

देवल देव पषान पुजावै। तीर्थ बर्त सँग जनम गँवावै॥
ऊचें मन की राह बतावै। चारों जुग जिव खानि समावै॥

अर्थ–ऋषि-मुनि तो नाना प्रकार के पुराण बताते रहते हैं और उनके अतिरिक्त शिव और योगीजन भी उनके रहस्य को नहीं जानते। संसार में यह दशावतार जीव तथा माया की कथा है तथा ये निरंकार ज्योति से उत्पन्न हुए हैं। निरंकार सोलह रूपों में हैं। पुरुष ने निरंजन के लिए ज्योति को लगा दिया था। निर्गुण, निराकार, निर्वाणी तथा काल ये चारों नाम उसी (काल) अभिमानी के हैं। चारों युगों में काल ने ही जीव को जलाया था और उसी ने ही निरंजन को भी इस सांसारिक मायाजाल में डाल दिया। उसी निरंजन तथा ज्योति ने (पुत्रोत्पत्ति के लिए) विचार किया और उसी से दसों अवतारों की उत्पत्ति हुई। ये दसों अवतार काल से सम्बद्ध है। इन्हीं दस अवतारों में सारा संसार भूला बैठा है। हे भाई! काल निरंकार है और उसके तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उसने अनेक प्रकार के वेदविधान किए, उन्होंने शास्त्रों तथा वेद पुराणों की रचना की। सारे ऋषि मुनि इन्हीं शास्त्रों तथा पुराणों में डूबे हुए हैं। फलतः सारा संसार अज्ञानी एवं जीव मूढ़ हो गया। मंदिरों में देवता पाषाण निर्मित पूजे जाते हैं और तीर्थ तथा व्रतों के साथ वे सारा जीवन गँवा बैठते हैं। वे मन के लिए श्रेष्ठतम मार्ग बताते हैं किन्तु स्वयं भी चारों युग तक जीव के रूप में संसार की खानि में समाये रहते हैं।

निरंकार काल अरु जोती। डारै मारि जीव बिन मौती॥
दस औतार काल ठग केरे। ब्रह्मा बिष्नु पुत्र जम चेरे॥
ठग ठग मिलि सब जाल पसारा। अस नहिं होइ जीव निरबारा॥
निरंकार काल अन्याई। जोती ठगनी सब जग खाई॥
इनसे न्यारा पुरुष दयाला। जहँ नहिं पहुँचै जोत अरु काला॥
वो स्वामी संतन का प्यारा। वा घर संत करैं दरबारा॥
निरंकार से पुरुष नियारा। सो साहिब संतन का प्यारा॥
लोक तीन नहिं चौथे माहीं। जा घर संत करैं पाछाई॥
निरगुन सरगुन उहाँ न जावै। जोति न ब्रह्मा बिष्नु समावै॥
दस औतार की कौन चलाई। वा घर सतन सुरति लगाई॥

अर्थ–काल तथा ज्योति निरंकार हैं और वे दोनों जीवों को बिना मौत मार डालते हैं। ठग काल के दस अवतार हैं–ब्रह्मा और विष्णु दोनों काल के दास यम के पुत्र हैं। इस सभी ठगों ने मिलकर इस माया के जाल को फैला रखा है। इस प्रकार जीव का निर्वाह इस संसार में दुर्लभ है। यह निरंकार काल अन्यायी है और ठगिनी ज्योति सारे संसार को खा जाती है। इन दोनों से विलक्षण दयालु पुरुष है–जहाँ ज्योति और काल दोनों नहीं पहुँच सकते। वह स्वामी पुरुष सन्तों के लिए प्यार भरा है और उसके घर में संतजन दरबार लगाए रहते हैं। निरंकार से यह पुरुष विलक्षण है। वह स्वामी है तथा सारे सन्तों को प्रिय है। वह इन तीनों लोकों में नहीं, चौथे लोक में रहता है और उसके घर में सन्तगण बादशाहियत करते हैं।

वहाँ सगुण एवं निर्गुण नहीं जा सकते और वहाँ ब्रह्मा एवं विष्णु भी नहीं समाविष्ट हो सकते। वहाँ दस अवतारों की बात कौन कहे, उस घर में सन्तों ने अपनी सुरति समाधि लगा रखी है।

॥ सोरठा॥

प्रियेलाल सुनु बात, संत गती न्यारी अगम॥
गुन निरगुन नहिं जोति, तिरदेवा औतार नहिं॥

अर्थ–हे प्रियेलाल! मेरी बातें सुनों, सन्तों की गति विलक्षण तथा अगम्य है। वहाँ (चतुर्थ लोक में) न गुण है, न निर्गुण है, न वहाँ ज्योति है, न उद्धार करने वाले देवता हैं और न कोई अवतार है।

॥ चौपाई ॥

जहाँ संत तहँ निरगुन नाईं। निरंकार जहँ जोति न भाई॥
दस औतार जान नहि पावै। ब्रह्मा बिष्नु महेस न जावै॥
जहँ नहिं बेद जहाँ नहिं बानी। इनसे पारै पुरुष अनामी॥
जहँ संतन की सुरति समानी। वो घर अगम संत से जानी॥
दीन होइ संतन सरनाई। तब कछु राह संत से पाई॥
फोड़ै गगन अगम को जाई। स्वामी सतगुरु भेंटै भाई॥
प्रियेलाल अस बूझि बिचारा। सब बिधि भाखि सोई निरवारा॥

अर्थ–जहाँ सन्त हैं, वहाँ निर्गुण नहीं है। हे भाई! जहाँ निरंकार है, वहाँ ज्योति नहीं है। दसों अवतार उसे जान नहीं पाते और ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव वहां पहुंच नहीं पाते। न वहाँ वेद है, न वाणी है और वह अनामी पुरुष इन सबसे परे है। जहाँ सन्तों की सुरति समायी हुई है। सन्तों के होने से ही जान लेना चाहिए कि वह घट अगम्य है। दीन बनकर सन्तों की शरणागति में जाओ, तब कोई राहत सन्तों द्वारा प्राप्त की जा सकती है। वहाँ शून्याकाश को तोड़कर अगम्य में प्रवेश किया जा सकता है और वहीं सत्गुरु स्वामी से भेंट हो सकती है। हे प्रियेलाल! इस प्रकार के मेरे विचारों को समझो। मैंने उस रहस्य का वर्णन हर तरह से बता दिया:जिससे कि इसका निराकरण हो सके।

॥ प्रश्न प्रियेलाल। चौपाई ॥

तुम तो कहा बेद से न्यारा। अरु पुनि भाख अगम अपारा॥
तुम्हरी कहन कोऊ नहिं ठहरा। भाखा तुम ये अगमपुर डेरा॥
राधा कृष्न प्रिय इष्ट हमारा। तुम भाखा प्रभु और पसारा॥
सुनकर भर्म बहुत मोहिं आवा। तुम ने कछु कछु और सुनावा॥
येहि बिधि बेद कहत है नाईं। सो प्रभु मुख से भाखि सुनाई॥
हम करैं संध्या नेम अचारा। पूजा सेवा ठाकुर द्वारा॥
और सनातन धर्म हमारा। ठाकुर भोग अछूता सारा॥
मंदिर में कोई जान न पावै। बरतन कपड़ा छुवा न जावै॥
भोजन ठाकुर करै अछूता। करते बल हाथन के बूता॥
और अनेक अनेक बिचारा। कह लगि कहौं सुचा निरवारा॥

अर्थ–तुमने तो बताया कि यह वेद से विलक्षण है और पुनः कहा कि यह अगम एवं अपार है। आपके कथनों से कोई नहीं ठहर सका और आपने बताया कि उसका स्थान अगमपुर में है। राधा-कृष्ण मेरे प्रिय इष्ट है और आपने बताया है कि (उनके अतिरिक्त) दूसरे ईश्वर चारों ओर व्याप्त हैं। उसे सुनकर मुझे अत्यधिक भ्रम उत्पन्न हुआ है–क्योंकि आपने सारी कथाओं से भिन्न कुछ और सुनाया है। इस प्रकार से उनके विषय में वेद भी नहीं कहते जो कुछ आपने अपने मुख से कहकर सुनाया है। हम नियम एवं आचरणयुक्त होकर संध्या करते हैं और ठाकुर द्वार पर पूजा तथा सेवा करते हैं। यह हमारा सनातन धर्म है कि बिना ठाकुर भोग के यह सारा भोग पदार्थ अस्पर्श है। मंदिर के अन्दर कोई जाने नहीं

पाता तथा वर्तन एवं कपड़ों की छुपा नहीं जा सकता। ठाकुर जी भोजन बिना छुआ करते हैं और यह सब पुजारी के हाथों के बलबूते पर ही करते हैं। इसके अतिरिक्त भी इस विषय में अनेक विचार हैं—और उनकी शुचिता का निराकरण कहाँ तक करें॥

॥ उत्तर तुलसी साहिब। चौपाई॥

ये सब बात अनीती भाखी। सुनी कान देखी नहिं आँखी॥
ये तौ बहुत निष्ठ कहि भाई। कहे सुने से मन रिसियाई॥
ब्रह्मा विभाव कर्म तुम कीन्हा। ये तौ निष्ठ अनीती लीन्हा॥
जनम अनेकन परिहौ खाना। ब्रह्म बिभाव संत नहिं माना॥
सब में आतम ब्रह्म बतावौ। चेतन ब्रह्म बिभाव लगावौ॥
तुम्हरै बेद पुरान बतावै। गीता भागवत सब मिलि गावै॥
सो तुम अपने मुखसे गाई। आतम ब्रह्म एक बतलाई॥
चर अरु अचर सब माहिं समाना। तुम्हरा सास्तर करै बखाना॥
कोउ-कोउ संतन कही बुझाई। एकै ब्रह्म सबन के माईं॥
कहिकै एक बिभाव बिचारौ। कौन बिधी ये ज्ञान तुम्हारौ॥

अर्थ—तुमने यह सारी बातें अनीति भरी कही है—न इन्हें कानों से सुना है और न आँखों से देखा है। हे भाई! यह तो बहुत निकृष्ट बातें कही हैं—इन्हें कहने सुनने से मन नाराज हो उठता है। यह तो तुमने ब्रह्मा के प्रति भावनारहित कर्म किया है और ये तो बहुत अनीति एवं निकष्टता लिए हुए कार्य हैं। अनेक जन्मों में तुम इस भवखानि के चक्कर में पड़ोगे और सन्तजन इसे ब्रह्म के प्रति अच्छा भाव भी नहीं मानेंगे। सभी की आत्मा में ब्रह्म बताते हो और चेतन दशा में ब्रह्म की मूर्ति के लिए विभाव (विपरीत भाव) बतलाते हो। यह तुम्हारे ही वेद-पुराण बताते हैं तथा गीता तथा भागवत आदि सभी मिलकर यह गान करते है। इसे तुमने अपने मुँह से ही कहा है कि अनेक विद्वान हैं जो ब्रह्म और आत्मा को एक ही बतलाते हैं। तुम्हारा शास्त्र यह वर्णन करता है कि चर तथा अचर परस्पर एक दूसरे में समाया हुआ है। कोई-कोई सन्त तो यह समझा कर कहता है कि सबमें एक ही ब्रह्म है। इन बातों के कहने पर एक बात पर ध्यान हो कि यह तुम्हारा ज्ञान किस प्रकार का है।

पाँच तत्त नर आतम देही। एक तत्त पाहन को सेई॥
जड़वत देख दोऊ के संगा। चेतन देख दोऊ में रंगा॥
या में लघु दीरघ को देखा। मन अपने में करौं बिबेका॥
इक चेतन की पूजा थापौ। चेतन एक निष्ट करि राखौ॥
आतम चेतन निष्ट जो भइया। पाइन जड़ सुध केहि बिधि रहिया॥
पाहन को तुम सुद्ध बतावौ। चेतन को धरि दोष लगावौ॥
बिन चेतन सुध कैसे भइया। चेतन को तुम दोष लगइया॥
चेतन देही तुम्हरी कीन्हा। कै पाहन तुम को रचि लीन्हा॥
नादहि बिंद देह को लाजा। पूजौ पाहन को केहि काजा॥
पाहन मूरति येही बनाई। गढ़ी सिलावट छाती पाँई॥

ता कौ मंदिर ठाकुर थापी। चेतन ठाकुर मंदिर आपी॥
चेतन मंदिर बोलै माहीं। तुम्हरी आँखिन सूझै नाहीं॥

अर्थ–मनुष्य के चैतन्य शरीर में पाँच तत्त्व हैं–पत्थर में एक तत्त्व है जो उसकी रक्षा करता है। यहाँ मनुष्य और पत्थर दोनों में जड़ता को देखो और यह भी देखो कि तुम्हारी दृष्टि में चेतन तत्त्व दोनों में समाविष्ट है। जिसमें अधिक है और किसमें कम, यह किसने देखा है–तुम स्वयं इस बात का विवेक अपने मन में करो। एक चेतन (पत्थर के चेतन) की पूजा करके रखते हो और एक चेतन को हीन तथा तुच्छ (आपने को) समझते हो। इस पत्थर को तो तुम शुद्ध बताते हो किन्तु आत्म चेतन को दोषपूर्ण बताते हो। बिना चेतन की सहायता से यह बात कैसे तय हुई–इस पर भी तुम चेतन पर दोष लगा रहे हो। तुम्हारी आत्मा (तथा देह) चैतन्य से सम्बद्ध है, कि तुम्हारी रचना इस पत्थर ने की है। नाद तथा बिन्दु देह को स्थापित करता है कि किस लिए पत्थर की पूजा कर रहे हो। इसी मनुष्य ने ही यह पत्थर की मूर्त्ति बनाई है और उसकी छाती पर चढ़ कर उसे गढ़ा है। उसको मन्दिर में उठाकर ठाकुर के रूप में स्थापित कर दिया और ये ठाकुर चेतन बन कर मन्दिर में आ गए। (स्थापित हो उठे)। यह चेतन मनुष्य जाकर मन्दिर में बोलता (जै जै राम) करता है और क्या यह तुम्हारी आंखें में नहीं सूझ रहा है।

पाहन प्रेम जाइ सिर फोड़ौ। मंदिर बाल आतम तोड़ौ॥
ऊपर न्हाइ अचार जो कीन्हा। अंदरमन मैला नहि चीन्हा॥
न्हाइ जो धोइ रसोई कीन्हा। सुचि भोजन ठाकुर को दीन्हा॥
सुचि ठाकुर को भोग लगाई। माखी ता पर, बैठी आई॥
माखी का कछु कीन्ह बिचार। उठि बैठे भिष्टा की लारा॥
यही अचार करौ तुम भाई। माखी को चौकस नहिं लाई॥
दस औतार भये सब भाई। ता में तीन प्रतच्छ दिखाई॥
मच्छ कच्छ कहि और बराही। ये प्रतच्छ पूजों नहिं भाई॥
मुख से दस को भाखि सुनावौं। छाँड़ि प्रतच्छ तुम जड़ को ध्यावौ॥
यह अपने मन बूझौ ज्ञाना। सत अरु असत करौ पहिचाना॥
या में भाव अभाव न जानी। सत असत लखि पद पहिचानी॥
या में निदा भाव न भाखी। सब संतन की देखौ साखी॥
निंदा आहि नरक की खाना। मिथ्या संत न करैं बखाना॥

अर्थ–प्रेमपूर्वक जाकर उस पत्थर पर अपने सिर को तोड़ो (प्रणाम करो), मंदिर में जाकर प्रणाम करते हो और अपनी आत्मा को नष्ट करते हो। ऊपर से स्नान करके शुचिता भरी पूजा का आचरण किया किन्तु अपने अन्दर के मैले मन को नहीं देखा। नहा धोकर उसने रसोई बनाई और और पत्थर के ठाकुर को पवित्र भोजन अर्पित किया। तुमने ठाकुर के लिए अपना पवित्र भोग लगाया किन्तु उसके ऊपर आकर एक गंदी मक्खी बैठ गई। हे भाई! तुम इसी प्रकार का आचरण करो किन्तु मक्खी की कोई चिन्ता नहीं है। हे भाई! दस अवतार हुए हैं जिनमें से तीन अवतारों में भगवान प्रत्यक्ष दिखाई पड़े हैं। इन्हें मच्छ, कच्छ तथा बाराही कहा गया है किन्तु हे भाई! तुम इनकी प्रत्यक्ष पूजा नहीं करते हो। तुम मुख से दस अवतारों को कहकर सुनाते हो, प्रत्यक्ष को छोड़कर तुम जड़ (कोरी कल्पना) के लिए दौड़ते हो।

इस ज्ञान को तुम अपने मन में ही समझो और इसी के द्वारा ही सत्य तथा असत्य पहचान करो। इसमें मैंने कोई निन्दा का भाव नहीं प्रगट किया है इसे तो मैंने सन्तों के साक्ष्यों द्वारा देखा है। निन्दा तो नरक की खान है और सन्त जन किसी तथ्य का मिथ्या वर्णन नहीं करते हैं।

प्रियेलाल कछु बूझि बिचारी। ये तुम ने कछु समझ सिहारी॥
पाँच तत्त बैराट बनाई। ता में सब ब्रह्मंड समाई॥
पाँच तत्त सरीर बिधाना। सोइ बैराट कहौ भगवाना॥
पिंड ब्रह्मंड एक करि राखौ। पुनि निंदा करि कस कस भाखौ॥
जो ब्रह्मंड में बिधी बताई। सो सब भाखौ पिंड के माईं॥
रज गुन तमगुन सतगुन भाई। ये सब ब्रह्मा बिष्नु कहाई॥
गो इंद्री गोपिन कर नामा। मन को मोहन सभी बखाना॥
राधे रकार नाम समझाऊँ। पिंड पाँच पंडौ बतलाऊँ॥
मन द्वै दृष्टिलीन यहि माईं। सोइ दो दृष्टि भाखि सुनाई॥
अरजुन बिधी बात समझाई। इंद्री जड़ी जो बन मन माई॥
भौ में सैन मन करै बुझाऊँ। ता को भीमसेन बतलाऊँ॥

अर्थ–हे प्रियेलाल! तुमने क्या इस विषय में समझा है–यह क्या तुमने कुछ समझ कर अनुभव (सिहारी) किया है। पाँच तत्त्वों ने मिलकर इस बैराट को बनाया है और उसी में सारा ब्रह्मांड समाया हुआ है। इन पांच तत्त्वों ने ही इस शरीर की भी रचना की है और उसी बैराट निर्मित शरीर को ही तुम भगवान कहो। जब पिंड तथा ब्रह्मांड एक हैं, तो एक-एक दूसरे की निन्दा कैसे-कैसे करके कह रहे हो। जो समस्त विधियाँ ब्रह्मांड की बताई गई हैं, वह तो सारी की सारी ब्रह्मांड में भी हैं। हे भाई! रजो गुण, तमो गुण एवं सतो गुण में त त्र हैं–इन्हीं के बीच ब्रह्मा विष्णु भी बताए गए हैं। गो शब्द का नाम इन्द्रियाँ हैं और वही गोपिकाएँ हैं और सभी बताते हैं कि मन तो मोहन कृष्ण है। मैं राधा का रकार नाम समझा रहा हू–पाँचों पिंडों को पांडव के रूप में समझाता हूँ। इसमें दोनों दृष्टियों से लीन रहता है। उन्हीं के दृष्टियों को मैं कहकर समझाता हूँ। श्री कृष्ण ने अर्जुन को इस विधि से बात समझाई थी–ये जड़ इन्द्रियाँ ही हैं–जो मन बन जाती हैं। इस भवसागर में मन शयन करता है, मैं उसे बता रहा हूँ–उसी को भीमसेन कहा गया है।

भौ में असल नकल होइ गइया। ताकर न म नकुल हम कहिया।।
सादेह दीसै सनमुख भाई। नाद बिंद बिधी देह बनाई॥
बिंद से बना बिंद्राबन होई। जग के माहीं रहा समोई॥
बसै देव इंद्री के माईं। मन बस देवन में रहा जाई॥
बिषय भोग रसदेव किये सारी। मन देवकी ये भौ रस डारी॥
जो सोधै मन धर को जाई। मनहिं जसोधा गम कहाई॥
मन डूबा भय बल के माईं। सो बलभद्र नाम है भाई॥
उदै कर्म मन दुख सुख माईं। कर्म उदै मन मित्र कहाई॥
जमुना सुरति करै असनाना। सूरति चढ़ै फोड़ि असमाना॥
जहँ जमुना जमना अस्थाना। इंद्री गोरस कालहि जाना॥
गोरस गोकुल जानौ भाई। येहि बिधि पिंड ब्रह्मण्ड समाई॥

अर्थ–इस संसार में जो असत्य (वास्तविक) था, वह नकली हो गया और इसी नकली का नाम

नकुल है, वह देह सहित सामने दिखाई पड़ रहा है और यह देह नाद तथा बिन्दु संयोग से बनाया गया है। इसी बिन्दु से वृन्दावन बना है और वह सम्पूर्ण संसार में समा रहा है।

सारे देवता इनहीं इन्द्रियों के बीच निवास करते हैं और उसका मन तो जाकर देवताओं के वश में हो गया। सम्पूर्ण विषयभोग तो रसदेव कृष्ण ने किया और देवकी रूपी मन लोक रस (वासनाओं) में डाल दिया गया। जो मन रूपी घर का जाकर शोधन करे, वही यशोदा के नाम से पुकारा गया है। जो मन बल के भय में डूब गया, वही हे भाई। बलभद्र है। कर्म के उदय के साथ ही मन में सुख दुख उत्पन्न होते हैं, सुख के काल का उदित कर्म मन का मित्र कहा जाता है। यह मन निरन्तर यमुना रूपी सुरति में स्नान करता है और सुरति को फोड़कर यही शून्याकाश में प्रवेश कर जाता है। जहाँ यम नहीं है। वह यमुना है. अन्यथा काल देवता तो इन्द्रियों को गो रस समझकर खा जाते हैं। इस गोकुल को आध्यात्मिक रस समझो, इसी प्रकार यह पिंड ब्रह्मांड में समाया हुआ है।

ये नर देह मानुष के माई। देव ऋषी मुनि ताहि समाई॥
अरसठ तीरथ सकल पसारा। गद्दी गंडा भारि अठारा॥
सातौ दीप पृथी नौखंडा। तुम कहौ मनुष देह येहि पिंडा॥
कह लगि कहौं अनेक पसारा। यह ब्रह्मंड पिंड माहिं सँवारा॥
संत सुरति फोड़ै असमाना। पिंड में देखा सकल बिधाना॥
निरखा अनुभौ मुख से भाखा। पिंड राम कृष्न की साखा॥
पिंड में रामकृष्न लखवाया। वा अहीर पर नकल दिखाया॥
नकल की नकल सिलावट कीन्हा। ऐसी भूल भटक तुम लीन्हा॥
पाहन को थापौ भगवाना। येहि बिधि बुधि मति ज्ञान हिराना॥
येहि बिधि पिंड ब्रह्मंड समाना। ता को तुम छुतिया करि जाना॥
संतन भाखा दृष्टि हिये आँखी। ताको बिधि भिनि भिनि करिभाखी॥
संतन की तुम साखि मिटाओ। अँधरी आँखि भाखि समझावौ॥

अर्थ–मनुष्य का यह नर देह है जिसमें सभी ऋषि, मुनि तथा देवता समाविष्ट हैं। इसी में समस्त अड़सठ तीर्थ फैले हुए हैं और इसी में नब्बे (अठारह गंडे = एक गंडा बराबर पांच वस्तुओं में) गद्दियाँ भी फैली हुई हैं। सातों द्वीप और पृथ्वी के नवों खंड, इसे इस मनुष्य देह या पिंड के मध्य ही समझो। अन्य अनेक फैलावों में इसमें समाहित होने की बातें मैं क्या कहूँ। यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड ही इस पिंड के अन्तर्गत बनाया हुआ है। सन्तगुण सुरति समाधि द्वारा शून्याकाश को तोड़कर ही इस पिंड में ब्रह्मांड का सम्पूर्ण विधान देखते हैं। जो मैंने अपने अनुभव द्वारा देखा है–उसी का वर्णन अपने मुख से किया है–यही पिंड (शरीर) ही राम तथा कृष्ण का साक्ष्य है। नकल की नकल लेकर इस पिंड की सिलावट की गई है–इसीलिए तुम इस प्रकार की भूलभटक की बातें कह रहे हो। तुम लोग पत्थर को भगवान मानकर पूज रहे हो और इस प्रकार से तुम्हारी, बुद्धि, मति तथा ज्ञान भुला गया है। इस प्रकार, सम्पूर्ण ब्रह्मांड पिंड (शरीर) में समाया हुआ है और उसे तुम छुतहा करके समझ लिया है। सन्तों ने इन सबका वर्णन हृदय की आँखों से देखकर किया है–उसको तुम भिन्न-भिन्न तरीके से समझा रहे हो। तुम सन्तों के साक्ष्य मिटा दो और अपनी अंधी आँखों से कहकर सारी बातें समझाओ।

अपना पिंड न खोओ भाई। तुम पत्थर में ढूँढौ जाई॥
खोज राह तुम दूर बहाई। सूरति पाहन माहिं लगाई॥
सूरति पाहन कीन्ही आसा। आसा अंत ताहि में बासा॥

सब मिलि टेरि टेरि गोहरावै। ढूंढ़ै मिलै पिंड में पावै॥
बेद पुरान माहिं बतलावै। बेद कहै तुहि तुहि समझावै॥
भागवत कहि कहि तहि बतलावै। सास्तर कहै तुहि तुहि गावै॥
संत कहै तुहि तुही सुनावै। सब कहि तुही तुही करि गावै॥
ते बुधि हीन सूझ नहिं पावै। ता से पाहन में मन लावै॥
है परतच्छ ब्रह्म तुहि आगे। जा को छुतिया करि करि भागै॥
भागवत सब्द ब्रह्म तुहि बोलै। सिना संत को पट्टी खोलै॥

अर्थ–हे भाई! तुम अपने पिंड का अस्तित्व मत समाप्त करो और उसे जाकर पत्थर में ढूंढ़ो, (यह गलत है) उस मार्ग की खोज करो जिसे तुमने दूर बहा दिया है–मन को सुरति ध्यान रूपी पत्थर में लगाओ (न कि मंदिर के पत्थर में)। सुरति रूपी पत्थर से आशाएँ करो और अन्त में देखोगे कि तुम्हारी सम्पूर्ण आशाएँ उसी में निवास घर रही हैं। इस सुरति समाधि में आपकी सारी आशाएँ टेर-टेर कर तुम्हें बुला रहीं हैं और सब खोजने के बाद पिंड में ही प्राप्त हैं। इसे वेद-पुराणों में भी समझाकर बताया गया है और शास्त्रादि कहते हैं कि वह ब्रह्म तू ही है, तू ही है ऐसा कहर समझाते हैं। भागवत पुराण भी कहता है कि वह तू ही है, वह तू ही है और सभी वह तू ही है, वह तू ही है–ऐसा कहकर गायन करते रहते हैं। किन्तु तुम सब बुद्धिहीन हो, तुझे वह सुनाई नहीं पड़ता–इसलिए तुम लोग पत्थरों में मन रमाए रहते हो। ब्रह्म तो प्रत्यक्ष रूप में तुम्हारे ही आगे है–जिसे छुतहा छुतहा कहकर तुम भाग रहे हो। भागवत तो तुम्हीं को ब्रह्म कहता है, तुम्हारे आँखों में पट्टी बाँधी हुई है और बिना सन्तों के यह पट्टी कौन खोले॥

॥ दोहा ॥

बिन सतसंग पावै नहीं, पढ़ि पढ़ि भर्म भुलान।
बेद भागवत पढ़न में, नहिं पावै सत सार॥

अर्थ–व्यक्ति शास्त्र पढ़-पढ़कर भ्रम में भूला हुआ है, क्योंकि वह बिना सत्संगति के तत्त्व प्राप्त नहीं कर सकता। वह वेद तथा भागवत आदि के अध्ययन के बाद भी सत्य का सार तत्त्व नहीं समझ पा रहा है।

॥ सोरठा ॥

संस्कृति बेदन माइ, खेद खेद खानै चलै।
संत भेद नहिं पाइ, इन सब से न्यारी कहैं॥

अर्थ–वेद में यह सम्पूर्ण संस्कृति है, उसे बाहर करके तुम भी भवसागर की पीड़ा की खानि में पड़े हो–संत का भेद तुमने नहीं प्राप्त किया है, इसलिए तुम न्यारी बातें कह रहे हो॥

॥ छन्द ॥

तुलसी बिधि भाखी संतन साखी। देखौ आँखी आप तुही॥
तुहि बेद बतावै तुहि तुहि गावै। तुहि पुरान तुहि तुही कही॥
तुहि तुहि सब गाई तुही सुनाई। तुहि तुहि भौ में भर्मि रही॥
तुहि आपा कीन्हा संत न चीन्हा। मान मनी सब दूर नहीं॥

अर्थ–तुलसीदास जी ने सन्तों का साक्ष्य पाकर इसका विधिपूर्वक वर्णन किया है और इसे तुम अपनी आँख से देख सकते हो। वेद भी 'तू ही ब्रह्म है' बताता है। शास्त्रादि भी तुम्ही ब्रह्म हो, तुम्ही ब्रह्म

हो कहते हैं और तुम्हारे पुराण भी तू ही ब्रह्म है, तू ही ब्रह्म है, कहते रहते हैं। इस प्रकार सभी 'तू ही ब्रह्म' का गम्म करते रहते हैं और तू ही ब्रह्म है, यह सुनाते रहते हैं और संसारमयी भूमि पर तू ही ब्रह्म है, तू ही ब्रह्म है—ऐसी रची हुई है। तुमने आत्मख तो पहचान लिया किन्तु सन्त नहीं पहचान पाये और तुम्हारे अन्दर की आत्म सम्मान का अहम् (घमण्ड) दूर नहीं हुआ।

सूरति नृत जानी फोड़ि निसानी। ले ले निसानी अगम लई॥
ये अगम ठिकानै सतगुरु जानै। चौथे पद गति गवन गई॥
छूटै जम काल भौ जंजाला। लखि दयाल घर गवन भई॥
पाहन अरु पानी झूठ बखानी। जानी जिन जिन मान लई॥
चेतन घट माहीं घट घट वाही। बूझ सुनाई समझ सही॥
सब झूठ अचारा घट घट प्यारा। देखा न्यारा नेक नहीं॥
जिन बूझा लेखा अगम अलेखा। सत ब्रत देखा द्वार महीं॥
कोह बूझे ज्ञाना संत बखाना। अगम ठिकाना ठौर कही॥

अर्थ—सुरति के तत्त्व को समझ करके और उसके चिह्न शून्याकाश को तोड़ करके अपने लक्षणों के तत्त्वों को लेकर वह अगन्य आकाश में पहुँच गई। इस अगम्य के ठिकाने को सतगुरु ही जानते हैं और वह चौथे लोक की अगम्य गति के स्थान पर पहुँच गई। यम से जुड़ा काव्य तत्त्व छूट गया, भव का जंजाल समाप्त हो उठा। वह चित्त दयावान् संत के उस चतुर्थ पद में प्रवेश कर गई। पत्थर के देवता और उन पर चढ़ाया जाने वाला जल असत्य हो उठा और जिन्होंने इस तत्त्व को समझा उसने स्वीकार कर लिया। वह परम चेतन तत्त्व शरीर में है—और सभी शरीरों में उसका निवास है, यह बात सुनी समझी तथा सत्य रूप में सामने आई। मूर्ति पूजा का यह आचरण ससत्य है, वह दर शरीर के लिए प्रिय है। अन्य तत्त्व को क्षणमात्र भी नहीं दिखाई पड़े किन्तु उस विलक्षण तत्त्व को सभी ने देखा। जिसने भी उस अगम्य और अलक्ष्य का अर्थ समझ लिया वह सत्य तत्त्व ज्ञान के द्वार पर ही दिखाई पड़ा। सन्त रूपी ज्ञानी को कहा जाता है जो ज्ञानतत्त्व को समझता है उसका ठिकाना अगम्य पर है और ठौर कहीं और हैं।

॥ सोरठा ॥

प्रियेलाल सुन बात, संत सुमति गति का लखी।
रहे बेद के माहिं, बहे खोज अवार में॥

अर्थ—हे प्रियेलाल! मेरी बातें सुनें, सन्तों की मति और गति को कैसे देखा जाए! वे तो वेद में लपटे रहते हैं और आचरण की खोज में मरते रहते हैं।

॥ चौपाई ॥

सतसंगति तुम करौ बनाई। तब तुम्हरी बुधि में लखि आई॥
बेद बिधी बुधि रही समाई। नित पुरान पढ़ि पार न पाई॥
अब तुमको सत बिधि समझावा। अभी तुम्हारी सो दृष्टि न आवा॥
सतसंग करौ दीन मन लाई। इष्ट जो पाहन दूर बहाई॥
कृष्न राम दोउ जम की जारा। करि करि इष्ट जगत सब मारा॥
जा को कहौ नंद कौ लाला। सो तो है सबहिन कर काला॥

छल बल करि कौरौ संघारे। पंडौ भगत हिवारे गारे॥
ता से कहौं कहा तुम पैहौ। खोजत खोजत जनम गँवैहौ॥

अर्थ–खूब सोच समझकर तुम सत्संगति करो, तब ये सारी बातें, तुम्हारी बुद्धि के अन्तर्गत दिखाई पड़ेंगी। तुम्हारी बुद्धि तो वेद विधि में समाई हुई है और नित्य पुराणों को पढ़-पढ़ कर भी उस परम तत्त्व को नहीं प्राप्त कर पाते। मैंने तुमको सत्य विधि समझा दी है किन्तु वह परम तत्त्व आज भी तुम्हारी समझ में नहीं आया है। मन को दीन (याचक) बनाकर तुम सत्संगति करो। पत्थर के बने हुए अपने इस इष्ट देवता को दूर हटा दो। कृष्ण और राम दोनों यम की बहुएँ हैं। इनको इष्ट बना बना कर सारे संसार ने स्वयं को नष्ट कर दिया। जिसे तुम नन्द के पुत्र कृष्ण कहते हो, वह सभी के बाल हैं। उन्होंने छल, बल करके कौरवों का संहार कर डाला और अपने भक्तों पांडवों को हिमालय पर गला दिया। बताओ, तुम उससे क्या-क्या प्राप्त करोगे और उसे खोजते-खोजते सारा जन्म गँवा बैठोगे, फिर भी नहीं मिलेगा।

॥ दोहा ॥

कृष्न समीपी पंडवा, गरे हिवारे जाइ।
लोहे को पारस मिलै, तौ काहे काई खाइ॥ १॥
जो कृष्न पारस हुते, लोहा पंडौ मान।
कृष्न दरस मुक्ती मिलत, गरे हिवार केहि काज॥ २॥
पंडौ चारौ नर्क को, गये युधिष्ठिर धाम।
मित्र प्रीति भगवान की, आई कौने काम॥ ३॥
कृष्न मित्र ऊधो हुते, कही एकादस माहिं।
कृष्न दरस मुक्ती हुती, तप कीन्हा क्यों ताँहि॥ ४॥

अर्थ–कृष्ण के परम नजदीक रहने वाले पांडव हिमालय में जाकर गल गए। लोहे को पारस पत्थर जो उसे स्वर्ण बना देता है, यदि मिल जाए तो उसमें काई ही क्यों लगे॥ १॥

यदि कृष्ण पारस पत्थर हैं और पांडवों को लोहा हम मानते हो तो, तो कृष्ण के दर्शन से उन्हें मुक्ति मिलती–फिर वे क्यों जाकर हिमालय में गलते?

चार पांडव नर्क को गए और युधिष्ठिर स्वर्गधाम। भगवान द्वारा प्रकट किया गया यह प्रेम का बिम्ब उसके किस काम आया।

भागवत के एकादश स्कन्ध में कहा गया है कि उद्धव कृष्ण के मित्र हैं, तब उन्हें कृष्ण के दर्शन से ही मुक्ति मिल जाती–फिर उन्होंने मुक्ति के लिए क्यों जाकर बदरिकाश्रम में तपस्या की।

॥ गजल ॥

बिद्राबन बिंद कीन्ह सोई साँचा।
गुसाँई गोपी के साथ बन बन नाचा॥ १॥
गो में मन बिधा सोई गोबिंद भाई।
मनुवाँ गोपाल मूढ़ इन्द्री माहीं॥ २॥
इन्द्री बसुदेव भेव सेवै मन को।
नाद सोई नंद फंद जानै तन को॥ ३॥

जिन ने तन सोधि लिया सोई जसोधा।
पंडौ तत पाँच और झूठा सौदा॥ ४॥

अर्थ–वृन्दावन के कृष्ण ने वही सत्य करके दिखलाया:वह यह कि गोपियों के साथ वन-वन में नृत्य किया॥ १॥

जिसका मन गौंवों में बिंधा हो, वह गोविन्द है और इन संसक्त इन्द्रियों के बीच उनका मन ही गोपाल है॥ २॥

वासुदेव रूपी मन का सम्बन्ध इन इन्द्रियाँ से ही हैं–और उसमें नाद के रूप में नंद बनकर इस शरीर के फंदों को जानता है या भोगता है॥ ३॥

जिसने अपने शरीर का शोधन कर लिया, वही यशोदा है, शरीर में स्थित क्षिति, जल, पावक आदि पाँचों तत्त्व पांडव हैं, शेष सब कुछ असत्य है॥ ४॥

॥ चौपाई॥

ऊधो कृष्न मुक्ति जो देता। कीन्हौ तप केहि कारन हेता॥
कृष्न मुक्ति नहिं दीन्ही भाई। तब ऊधों तप कीन्ही जाई॥
अपने मित्र जो कष्ट बतावा। तप करि कै मुक्ती धौं पावा॥
ऊधो मुक्ति मिली धौं नाहीं। तप की बिधी पुरान बताई॥

अर्थ–कृष्ण यदि उद्धव को मुक्ति प्रदान करते तो–तो किस कारण कहे किस हेतु से से वे तपस्या करते। जब कृष्न ने उन्हें मुक्ति नही दी, तो हे भाई! उन्होंने जाकर तपस्या की। अपने मित्र कृष्ण को उन्होंने कष्टदायी कहा और उन्होंने तपस्या करके मुक्ति प्राप्त की। तपस्या की विधि का उल्लेख तो पुराण बताई गई है। मालूम नहीं, उद्धव को मुक्ति मिली कि नहीं?

तन छूटै पुनि कहाँ समाने। ये पुरान नहिं साखि बखाने॥
तन छूटै की खबर न पावै। नर्क स्वर्ग धौं कहाँ समावै॥
तन छूटे की खबर बतावै। तौ मन को परतीती आवै॥
मुए गये की खबर न पावा। तप और कष्ट करा सोइ गावा॥
सत्त सत्त पावा की नाहीं। ऐसी बूझ सूझ नहिं पाई॥
जीवत करतब सभी बतावै। मुए मिलन कोउ ना दरसावै॥
मुए मिलन बिधि भाखै भाई। जीवत मिलन कोऊ न बताई॥
जीवत मिलन बिधि भाखि सुनावै। तब तुलसी के मन में आवै॥
जीवत इत से जाइ न भाई। मुए उत से आवत नाहीं॥
ये पुरान कस कस ठहरावा। मुए गये की खबर न पावा॥
नेक भेद उत का नहिं गावै। इत की करनी बिधि बतलावै॥
बिद देखे जग अँधरा मानै। पूछै पंडित पढ़ै पुरानै॥

अर्थ–इस शरीर के छूट जाने, पर वे कहाँ समा गए, इसके साक्ष्य का वर्णन पुराण में नहीं किया है। शरीर छूटने अर्थात् मृत्यु की तो किसी की खबर तक नहीं रहती और इस बात का क्या ज्ञान की मृत्यु के बाद वह नरक या स्वर्ग कहाँ समा गया है। यदि कोई व्यक्ति अपने मृत्यु की सूचना मुझे बता दे तो इन बातों का भी मुझे विश्वास हो उठेगा। किसी तपस्वी को मृत्यु में जाने की तो खबर ही नहीं रहती फिर उसने तपस्या के लिए जो कष्ट किया है, उसी का गान करता रहता है। सही-सही तपस्या से

किसी ने मुक्ति पायी–मैंने ऐसी सूझ (अनुभव) एवं समझ नहीं प्राप्त की है। जीते-जी ही सभी नाना प्रकार के कार्यों एवं कर्मों का गान करते हैं किन्तु मृत्यु के बाद क्या मिला, इसे कोई नहीं दिखाता। जीवन काल की प्राप्ति की उपलब्धियाँ सभी कहते हैं किन्तु मृत्यु के बाद की प्राप्ति प्रक्रिया को कुछ तो बताओ। इस जीवन काल में आध्यात्मिक तत्त्वों की प्राप्ति की कुछ बातें बताओ तभी तुम्हारी तपस्या में मुझे (तुलसी साहब) को विश्वास होगा। जीवन काल में न यहाँ से कोई स्वर्ग जा सकता है और न मृत्यु काल में कोई वहाँ से आ सकता है। ये पुराण कैसे-कैसे इसे बताते हैं किन्तु मृत्यु के बाद जाने की कोई खबर नहीं मिलती। उधर का रहस्य नेक मात्र भी नहीं पाता और उधर की करनी तथा विधि बतलाते हैं। न देखने वाले को संसार अंधा मानता है किन्तु वह इसके लिए पंडितों से पूछता है, पुराणों को पढ़ता है।

ये सब पोल पाल कर लेखा। मिथ्या पढ़ कहै बिन देखा॥
देखे की हम साखी मानैं। बिन देखी कहै झूठ समानै॥
नर्क बधी पंडौ जो गइया। नर्क भोग पुनि कस कस भइया॥
आगे खबर न उनकी पाई। नर्क भोग पुनि कहाँ सिधाई॥
नर्क भोग कहौ मुक्ति सिधावा। ये पुनि खबर कौन बतलावा॥
ऊधो तप पैस्त्रम बतलावा। तन छूटे की खबर न पावा॥
तन छूटे जोइ होइ सो होई। या को भेद न पावा कोई॥
बिना कष्ट मुक्ति नहिं भाई। यहि बिधि कृष्न ऊधो समझाई॥
कर तप कष्ट इष्ट में नाहीं। बिन तप मित्र मुक्ति नहिं पाई॥
तुम मुक्ती उन से कस पाई। मित्र मुक्ति दीन्ही नहिं भाई॥
उनको साफ कही गोहराई। ये पुरान में देखौ जाई॥
ततवर मित्र कृष्न तेहि आगे। ऊधो रोइ जप तप को लागे॥
पूजा इष्ट तुम्हारा लेखा। कृष्न मिले नहि सन्मुख देखा॥
तुम मुक्ती कस कस करि लयऊ। ऊधो सन्मुख तप को गयऊ॥
सन्मुख कृष्न मुक्ति नहिं पाई। तब ऊधो तप को मन लाई॥
पाहन नकल इष्ट को मानौ। या से मुक्ति कौन बिधि जानौ॥
या की बिधि इक साखि सुनाई। प्रियेलाल चित्त से सुनु भाई॥
जेहि बिधि करज साह से लावै। साह मिलै तबही कुछ पावै॥

अर्थ–यह सब पोलपाल (झूँठा) मामला है–झूँठा पढ़ते हैं और बिना देखी कहते हैं। हम तो देखी गई बात को ही साक्ष्य (सत्य) मानते हैं और बिना देखी बात को झूँठ के समान कहते हैं। बध करने वाले पांडव नर्क गए–उनका नर्क भोग कैसी-कैसा? और भी आगे क्या हुआ–उसकी खबर नहीं मिली कि नर्क भोग के बाद वे कहाँ चले गए। यदि कहो कि नर्क भोग के बाद उन्हें मुक्ति मिली तो इस बात का क्या प्रमाण है–इसकी खबर किसने दी। उद्धव को तपस्या का परिश्रम बतलाया गया किन्तु उनके शरीर छूटने की किसी ने कोई खबर नहीं पाई है। शरीर छूटने के बाद जो हो सो हो, इसका भेद कोई नहीं प्राप्त कर सका। बिना कष्ट के, हे भाई, मुक्ति सम्भव नहीं है, ऐसा कृष्ण ने उद्धव को समझाया है। तप के लिए कष्ट सहो, इष्ट के लिए नहीं, इस प्रकार हे मित्र! तप द्वारा तुम मुक्ति प्राप्थ करोगे। तुमने उनसे मुक्ति कैसे प्राप्त की थी, जब वे अपने मित्र को ही वे मुक्ति नहीं दे सके थे। पत्थर पर नकल के रूप मे जो गढ़े गए वे और इससे तुम किस प्रकार की मुक्ति समझते हो–इसके संदर्भ में तुम्हे

एक साक्ष्य सुना रहा हूँ। हे भाई प्रियेलाल! उसे ध्यान से सुनो जिस प्रकार किसी बनिया से कोई कर्ज के लिए जाता है—यदि बनिया मिलेगा, तभी कर्ज भी मिलेगा।

ता की निधि बताऊँ गाई। सुनियो नकल इष्ट की भाई॥
दिवस एक साह चले गाँई। अरज असामी कीन्ह बनाई॥
तुम तौ चले गाँव को भाई। गरज हमारी कौन चलाई॥
सेठ नकल अपनी लिख दीन्हा। कागद मूरत अपनी चीन्हा॥
मूरत नकल से कारज कीजौ। चाहौ सोई नकल से लीजौ॥
या से माँगि काज सब कीजौ। दाम मागि या से पुनि लीजौ॥
यहि कहि साह गाँव को गइया। तब भाइ गरज नकल से कहिया॥
नकल साह कछु कारज कीजै। दीजै दाम काम मोरा छीजै॥
पुनि वो नकल नहीं कछु दीन्हा। बहु बहु भाँति बिनय उन कीन्हा॥
सेठ नकल मूरत नहिं बोलै। पुनि पुनि माँगै गाँठि न खोलै॥
बहुत बहुत बिनती उन कीन्हा। मूरत गाँठि से कछू न दीन्हा॥
नकल सेठ से हाथ न आइया। माँग माँग उन जनम गवैया॥
असल सेठ बिन दाम न पाया। नकल सेठ से हाथ न आया॥
येहि बिधि असल कृष्न नहिं भाई। तुमने ता की नकल बनाई॥
नकल कृष्न से कछु नहिं पाई। काहे बिरथा जनम गँवाई॥
येहि बिधि बूझि बूझि मन लीजै। समझ बिचार के कारण कीजै॥
नकल भाव तेहि हाथ न आवा। ये बिधि बूझौ नकल प्रभावा॥
सादृष्ट कृष्न ऊधो सँग रहिया। मुक्ति न पाई तप को गइया॥
असल कृष्न कीये बिधि कहिये। मुक्ति नकल से कस कस पइये॥

अर्थ—उसकी निधि का कहकर मैं वर्णन करता हूँ, हे भाई! इष्टदेव की बनाई गई नकल के विषय में सुनें। एक दिन सेठ जी गाँव के लिए चले। उनके असामी ने उनसे बनाकर किया। हे भाई! आप तो गाँव को चल पड़े—आपसे हमारी गरज अब कौन चलाएगा। सेठ ने अपनी लिख दी और कागज पर अपने चित्र की पहचान बना दी। इसी नकल की मूर्ति (चित्र) से अपना काम कर लो:जो चाहो इस नकल से मांग लो। इससे माँग कर अपना सारा काम कर लो। ऐसा कहकर सेठ गाँव के लिए चला गया तब दूसरे व्यक्ति ने अपनी आवश्यकता उसे चित्त से कहा। हे नकल सेठ! ऐसा कुछ कार्य करो—मुझे कुछ रुपये देकर मेरा काम करें। किन्तु उस नकल ने उसे कुछ भी नहीं दिया—जबकि कर्जदार ने उससे अनेक-अनेक भाँति से विनय किया। सेठ की नकल वाला वह चित्र मुँह से बोलता नहीं और वह उससे बार-बार माँग रहा है किन्तु वह अपनी गांठे नहीं खोलता। कर्जदार ने मागते-मांगते अपना जीवन बिता दिया किन्तु उस नकल के सेठ से कोई काम नहीं बना। इन चित्र के रूप में नकल बनाए गए कृष्ण से कुछ भी नहीं मिलना है—यों अपना जीवन व्यर्थ ही नष्ट कर रहे हो। इसी प्रकार, मन में समझ लो कि और समझ-विचार कर कोई कार्य करें। साक्षात् श्री कृष्ण उद्धव के साथ रहे—उनसे उन्हें मुक्ति नहीं मिली और उन्होंने तब तप का आलम्बन पकड़ा। असत्य की बात इस प्रकार रही तो नकल वाले श्री कृष्ण की क्या बात कही जाए?

एकादस में कही बखाना। देखौ अपना जाइ पुराना॥
असल कृष्न की बिधी बताई। नकल कृष्न की कौन चलाई॥
जिन्ह गोपिन सँग कीन्ह बिलासा। समझ भाव मन बूझौ आसा॥
बिषय उपाय हाथ से कीन्हा। दौड़ दौड़ पाँवन से लीन्हा॥
छूटि देहि जगन्नाथ कहाये। कर्म भोग पाँव हाथ कटाये॥
अपना भोग आपने पाया। तुम ने ब्रह्म कौन बिधि गाया॥
असल कृष्न बिधि ऐसी जोई। नकल कृष्न की कैसी होई॥
असल कृष्न जो मुक्ति न पाई। कर्म भोगि कै पैर कटाई॥
कहै पुरान कृष्न गये धामा। जगन्नाथ भये कहौ प्रमाना॥
कभि कभि गये धाम बतलावौ। भागवत कृष्न धाम समझावौ॥
वोही कृष्न जगन्नाथ बतावौ। वोहि जगन्नाथ कृष्न करि गावौ॥
धाम गये की संध न पाई। यहाँ रहे की झूठ जनाई॥
कौन प्रमान दोऊ में कीजै। सत्त असत्त कौन कौ लीजै॥
या में सत्त कौन को बूझा। कहि समझावौ तुलसि अबूझा॥
नानक संत साखि बतलाई। कृष्न काल तिन भाखि सुनाई॥

अर्थ–भागवत पुराण के एकादश अध्याय में इस प्रकार का वर्णन है: और तुम जाकर अपना पुराण पढ़ो:वहाँ सही कृष्ण की व्यवस्था बताई गई है फिर नकली कृष्ण की बातें कौन कहे। जिन्होंने गोपियों के साथ इतना विलास किया उनका भाव समझकर मन में उनकी आशा समझें। अपने हाथों से विषय के सारे उपाय किये और वे पांवों से दौड़-दौड़ कर वस्तुएँ प्राप्त करते रहे। मृत्यु के बाद वे जगन्नाथ कहे गए। कर्म के भोग में फँस कर उन्होंने अपने हाथ पाँव कटा लिए। अपने किये हुए का फल स्वयं प्राप्त किया और उनको तुम ब्रह्म किस प्रकार कह रहे हो। असली कृष्ण की जब ऐसी स्थिति रही है तो नकली कृष्ण के विषय में क्या कहा जाए। यदि असली कृष्ण ने मुक्ति नहीं प्राप्त की और कर्मभोग करके एक बहेलिया से अपने पैरों को कटवा लिया। पुराण कहते हैं कि मृत्यु के बाद वे अपने धाम में पहुँचे तब बताओ कि कौन-सा ऐसा प्रमाण है कि वे जगन्नाथ हो गए। वे अपने धाम में कैसे गए और तुम हमें उस भागवत धाम को समझाओ। उन्हीं कृष्ण को तुम जगन्नाथ कहते हो और उन्हीं जगन्नाथ को कृष्ण बनाकर गाते हो। उनके धाम जाने का प्रमाण नहीं पा सके–यहाँ रहने की झूँठी बातें कहते हो। दोनों के लिए प्रमाण क्या है, इसे बतायें और किसे तुम सत्य तथा किसे असत्य कहते हो–यह समय में नहीं आता। इन दोनों में तुम सत्य किसे कहते हो न समझ पाने वाले तुलसी को यह कौन समझाए। नानक आदि संतों ने जो साखियाँ बतलाई है–कृष्ण काव्य के विषय की कथा उन्होंने कहकर सुनाया है।

॥ सवइया ॥

कालै खाइ गहौ भगवान, सो जाग्रत या जुग जाकी कला है॥ १॥
कालै खाइ गयौ ब्रह्मा सिव, सो कालै खाइ गयौ जुगिया है॥ २॥
इन्द्र मुनिन्द्र सुरासुर गंधर्व, जच्छ भुजंग दिसा बेदिसा है॥ ३॥
ये तौ भये सबही बस काल के, नानक संत अकाल सदा है॥ ४॥

अर्थ–भगवान को भी काल खा गया है–यह सम्पूर्ण जागृत संसार ही जिस काल की कला है, वह काल ब्रह्मा तथा शिव को भी खा गया है और इसी काल ने योगियों को भी खाया है। इन्द्र, मुनीन्द्र, देवता, असुर, गंधर्व और सभी दिशाएँ-दिशाबिहीन की स्थिति में वर्तमान ये सभी के सभी काल के वश में हो चुकी हैं किन्तु संत नानक सदैव-सदैव के लिए काल से मुक्त हैं॥

॥ चौपाई ॥

अब कबीर की साखि बताऊँ। कहि कबीर बिधि भाखि सुनाऊँ॥
दस औतार कबीरा गावा। ता की सब्द बिधी समझावा॥
वोहू कही काल बस गइया। दस औतार काल के कहिया॥

अर्थ–अब मैं कबीरदास की साखी बताता हूँ और कबीर की विधि को कहकर सुनाता हूँ। दस अवतारों के विषय में कबीर ने कहा है और उस 'सबद' की विधि को समझाया है। उन्होंने भी कहा है कि सभी काल के वश में हो चुके हैं और दसों अवतार काल के ही कहे जाते हैं।

॥ सबद ॥

आवै जाइ सो माया साधो, आवै जाइ सो माया।
है प्रतिपाल काल नहि वा कों, ना कहुँ गया न आया॥ १ ॥
क्या मकसूद मच्छ कछु होता, संखासुर न सँघारा।
है दयाल द्रोह नहिं वा के, कहौ कौन को मारा॥ २॥

अर्थ–जो आती जाती रहती है, हे साधो! वह माया है–और जो आती जाती रहती है, वही माया है। उसका प्रतिपालक काल भी नहीं है, जो न कहीं जाता है और न आता है। क्या कोई स्वामी मत्स्यावतार भी नहीं हैं–जिसने शंखासुर को मारा है। नहीं, वे नहीं हैं। वे स्वामी तो अत्यन्त दयालु हैं, उनमें द्रोह भाव नहीं है। बताओ उन्होंने किसे मारा है–किसी को नहीं।

वे करता न बराह कहाये, धरती धरा न भारा।
ये सब काम साहिब के नाहीं, झूठ कहै संसारा॥ ३ ॥
वे करता नहिं भये कलंकी, नहिं कलिंजै मारा।
है दयाल सबहिन को साहिब, कहौ कौन को मारा॥ ४॥
खंभ फाड़ि कै बाहर होई, तेहि पतीजै सब कोई।
हरनाकुस नख उदर बिदारा, सो करता नहिं होई॥ ५॥
परसराम छत्री नहिं मारे, ये छल माया कीन्हा।
सतगुरु भक्ति भेद नहिं पाये, जीव अमिथ्या दीन्हा॥ ६॥
सिरजनहार न ब्याही सीता, जल पषान नहिं बंधा।
वै रघुनाथ एक करि सुमरै, सो नर कहिये अंधा॥ ७॥
गोपी ग्वाल न गोकुल आया, मामा कंस न मारा।
वो दयाल सबहिन को साहिब, ना जीता ना हारा॥ ८॥
वै करता नहिं बोध कहाये, नहिं असुरन को मारा।
ज्ञान हीन करता नहिं होई, माया जग भरमाया॥ ९॥

दस औतार ईसुरी माया, करता करि जिन्ह पूजा।
कहै कबीर सुनो हो साधो, उपजै खपै सो दूजा॥ १०॥

अर्थ–वे वाराह भी नहीं है, न धरती के, भार को भी उन्होंने धारण किया है कि ये काम हमारे स्वामी प्रभु के नहीं हैं–सारा संसार तो इस तरह से उनके विषय में झूँठ बोलता है। वे संसार के कर्त्ता कलंकी अवतार से भी सम्बद्ध नहीं है और न उन्होंने कलि को मारा ही था। वे दयालु हैं, सभी के स्वामी है, बताओ किसने किसको मारा है। वे खम्भे को तोड़कर बाहर निकले थे–इसलिए सभी उन पर विश्वास करते हैं:जिसने हरिणाकुश के उदर का विदीर्ण किया था–वह कोई ईश्वर नहीं है। परशुराम ने क्षत्रियों का वध नहीं किया था, यह सब छल तथा प्रपंच भरा कार्य है। यह सब माया की छाप है। किसी ने सतगुरु द्वारा दी गई भक्ति के भेद को न समझकर और सभी जीवों के अमिध्या दान की चर्चा करते हैं। सृजनकर्त्ता भगवान ने न सीता से विवाह किया था और न जल पत्थरों से बाँधा गया था। जो राम को ईश्वर करके स्मरण करता है, उसे सभी अंधा कहते हैं। ग्वाल तथा गोपियाँ न कभी गोकुल में आईं, न कृष्ण ने अपने मामा कंस का वध किया है। वे प्रभु परम दयालु तथा सभी के स्वामी हैं। वे कभी जीते हैं और न हारे हैं। वे कर्त्ता रूप ईश्वर कभी बौद्ध नहीं कहाए गए और न कभी असुरों का वध किया है। कर्त्ता ज्ञान ही नहीं होता यह मायिक भ्रम है। दसों अवतार ईश्वरी माया हैं और हमने उनकी कर्त्ता मानकर पूजा की है। कबीरदास जी कहते हैं कि हे साधो सुनो ।

॥ चौपाई॥

सुर सब्द या बिधि कहि भाखी। उनहुँ कही कर्मन में साखी॥

अर्थ–उन्होंने इस प्रकार के देव शब्दों को बताकर कहा है और उन्होंने ही कर्मो के साक्ष्य का वर्णन किया है।

॥ सबद॥

कर्म गति टारै नाहिं टरै।
कहँ वै राहु कहाँ वे रबि ससि, आनि सँजोग परै॥ टेक॥
गुरु बसिष्ठ पंडित मुनि ज्ञानी, रुचि रुचि लगन धरै।
तात मरन सिया हरन राम बन, बिपति में बिपति परे॥ १॥
पंडो के प्रभु बड़े सारथी, सोऊ बन निकरे।
दुरबासा से स्राप दिवायौ, जदु कुल नास करे॥ २॥
रावन अस तैंतीस कोटि सब, एकछत राज करे।
मिरतक बाँधि कूप में डारे, भाभी सोच मरे॥ ३॥
हरीचंद ऐसे भये राजा, डोम घर पानी भरे।
भारथ में भरुही के अंडा, घंटा टूटि परे॥ ४॥
तीनि लोक करमन के बस में, जो जो जनम धरे।
दस औतार भाभी के बस में, सूर सुरति उबरे॥ ५॥

अर्थ–कर्मों की गति टालने से भी नहीं टलती है। वशिष्ठ जैसे ज्ञानी पंडित मुनि और जिन्होंने राम-सीता के विवाह की लग्न तय की किन्तु (विवाह के बाद) पिता की मृत्यु, राम का बन गमन, सीता का अपहरण अर्थात् विपत्तियों पर विपत्तियाँ पड़ती रहीं।

प्रभु कृष्ण पांडवों के आत्मीय सारथी थे किन्तु उनकों भी अरण्यवास हो गया। उन्होंने उन्हें दुर्वासा से शाप दिलाया और सम्पूर्ण युदुकुल का विनाश हो उठा। तैंतीस कोटि परिजनों वाला रावण ने एक क्षत्र राज्य किया किन्तु उसे भी मृतक जैसा बाँधकर कुएँ में डाल दिया और उसके भविष्य के लिए संकट आ पड़ा।

हरिश्चन्द्र जैसे प्रतापी राजा कर्मवश में होकर डोम के घर पानी भरने जैसा कार्य किया। महाभारत में परुही पक्षी का अंडे के कारण युद्ध भूमि में बड़े-बड़े घंटे टूट पड़े।

जो जन्म धारण करते हैं, वे तीनों लोकों के व्यक्ति कर्मों के वश में हैं। इसलिए दसों अवतार भवितव्यता के वश में हैं और उद्धार उसी का सम्भव है, जो सुरति लोक में प्रवेश (ध्यान) करता है।

॥ सोरठा ॥

प्रियेलाल बिख्यात, औतारी कर्मन कहे।
बहे भोग भौ माहिं, सब सब संत पुकारिया॥

अर्थ–हे प्रिये लाल! इस बात को विख्यात समझें, कर्म से प्रभावित व्यक्ति ही अवतारी समझा जाता है। सारे सन्तजन इसे पुकार-पुकार कहे हैं कि वह कर्मभोग से शासित रहता है।

॥ चौपाई ॥

राम कृष्न औतारी आहीं। भोगे कर्म जाइ तन माहीं॥
दस औतार निरंजन धरिया। सोऊ काल बस भौं में परिया॥
सोई निरंजन सोई निरंकारा। सोई काल धरे औतारा॥
कर्म भाव तिन देही पाई। करै भोग भौं में भरमाई॥
सारा जग बेदन भरमैया। औंतारी साँचे गोहरैया॥
दीनदयाल पुरुष है न्यारा। निरकार काल के पारा॥
निरंकार तक काल न जावै। वहं की गम जोती नहिं पावै॥
वो स्वामी है अगम अगाही। जह सतंन ने सुरति समाई॥
सुरति समाइ पुरुष को देखा। मिला पुरुष अगम अलेखा॥
उनका लेखा बेद न पावै। नेति नेति चारों गोहरावै॥

अर्थ–राम तथा कृष्ण अवतारी पुरुष हैं–और शरीर धारण के बाद उन्होंने सारे कर्मों का भोग किया। निरंजन के भी दस अवतार होते हैं और वे भी काल से विवशीभूत भवसागर में पड़ते हैं। वही निरंजन की दशा है, वही निरंकार की भी। वह भी काल के घट अवतार लेता है। उसने अपने देहभाव से ही कर्मभाव को प्राप्त किया है और जो कर्मभोग करता है, वह भवसागर में भ्रमित होता रहता है। सारा संसार इन वेदों में भरमाया हुआ है और लोग अवतारी को सही-सही ईश्वर कहकर पुकार रहे है।

वह पुरुष दीनों के लिए दयालु और सबसे विलक्षण है (इन सबसे भिन्न) निरंकार काल के उस पार है और ज्योति भी उसके रहस्यों का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकती। वे स्वामी अगम हैं, अगाध हैं और उनका स्थान वही है–जहाँ सन्त जन सुरति में समाधि लेते हैं। वे सुरति में समाविष्ट होकर सुरति को देखते हैं और वह गम्य, अगम्य तथा अलेख्य पुरुष वहीं प्राप्त होता है। उनका रहस्य वेद भी नहीं प्राप्त करते तथा उन्हें वे चारों वेद नेति-नेति कहकर पुकारते रहते हैं॥

पंचम बेद सुषम नहिं जाना। षष्टम प्रसंग बेद कहै नाना॥
चारि बेद पुनि गुप्त रहाई। ता में कागद लगै न स्याही॥

तुम पुनि पुरुष भेद नहिं जाना। दसो भेद कहै नहिं पहिचाना॥
दसो बेद से भेद नियारा। पुरुष भेद नहिं पावै पारा॥
निरंकार जोती नहिं जाना। जहँ पहुँचे कोइ संत सुजाना॥
तुलसी सैल सुरति से कीन्हा। पाया अगम गम्म का चीन्हा॥
पत्थर पानी दूर बहावा। तब घर अगम राह को पावा॥
बेद कितेब पुरान उठाये। तब लखि सुरति अगम को धाये॥
नेम अचार चार नहि माना। बोलै सब घट माहिं दिखाना॥
बोल अबोल दोऊ के पारा। तहँवाँ तुलसी सुरति सवारा॥
छर अच्छर निःअच्छर पारा। देखा तुलसी निरखि निहारा॥
अगम अगाध पुरुष दरबारा। तुलसी मिलै सुरति की लारा॥

अर्थ–पंचम सूक्ष्मवेद भी उन्हें नहीं जानता और छठां प्रसंग! वेद उसके विषय में नाना प्रकार की बातें कहता रहता है। वह चारों वेद से गुप्त हैं, वे कंठस्थ हैं, उनमें न कागज लगता है और न स्याही और तुम भी पुरुष का रहस्य नहीं पहचानते। दस रूपों में उन्हें वेद कहते हैं–किन्तु भी उसे नहीं पहचान पाये। दसों के द्वारा उनके भेद का निवारण नहीं हो सकता है–उस परम पुरुष का भेद कोई नहीं पाता। किसी ने निरंकार एवं ज्योति को भी नहीं पहचाना है: जिसके घर तक कोई चतुर संतजन ही पहुंचते हैं। तुलसीदास तो स्वयं अगम्य सुरति पर्वत पर बिहार करते हैं–अगम से पहचान में आने वाले उस अगम को उन्होंने चीन्ह लिया है। मैंने पत्थर मूर्ति तथा जल (देवताओं को अर्जित होने वाला जल) को दूर बहाकर अगम्य घर की राह प्राप्त की है। वेदशास्त्र, कितेब एवं पुराणों को हटाने के बाद ही उस अगम्य सुरति समाधि की ओर दौड़कर गया। मैंने नियम आचरण एवं किसी भी सदाचरण को नहीं स्वीकार किया और जिसकी जिसने आंकाक्षा की उस तत्त्व को मैंने शरीर के भीतर ही दिखाया। प्रवचनादि तथा समाधि जैसे तत्त्वों के उस पार जाकर तुलसी ने अपनी सुरति समाधि को सजा दिया। क्षरणशील तत्त्व, अक्षरणशील तत्त्व एवं शून्य के पार उस परम तत्त्व को मुझ तुलसीदास ने अपनी आँखों से देखा है। उस परम पुरुषका दरबार अगम्य और अगाध है और तुलसी साहब कहते हैं, वह मुझे सुरति के साथ मिला है।

तन में देखि ब्रह्मंड पसारा। सो हिये हेर सुरति की लारा॥
हिये में हेर फोड़ ब्रह्मंडा। हिये की लार सार नौखंडा॥
अंतर हेर हिये के माईं। अंड फोड़ ब्रह्मंड दिखाई॥
अंतर खोज कीन्ह हिये माईं। अंतर हिये माहि दरसाई॥
तन में तोड़ फोड़ हिये कीन्हा। अंतर सार हिये में चीन्हा॥
अब या का बरतंत बताऊँ। बारहमासा बरनि सुनाऊँ॥
द्वादस सन संबत का चीन्हा। मांस मांस सुनि गहौ यकीना॥
हिये बिच सुरति समझि घर आई। बारहमासा बरनि सुनाई॥

अर्थ–इसी शरीर में उस अखंड तत्त्व का प्रसार देखकर उसे हृदय में सुरति प्रेम द्वारा खोज लिया। हृदय में ही खोजकर ब्रह्मांड को फोड़ डाला। हृदय का तादात्म्य ही नौखंड का सार तत्त्व है। हृदय के अन्तर्गत ही उसे देखो और इस अंड को फोड़ देने के बाद इस हृदय में ही ब्रह्मांड दिखाई पड़ेगा। हृदय में ही उस परम तत्त्व को अन्दर-ही-अन्दर खोजो और वह परम पुरुष इसी हृदय के अन्तर्गत ही दिखाई

पड़ेगा। हृदय इस शरीर में तोड़ मोड़ करके उसे पहचान लेता है और अन्तर्वर्ती सार तत्त्व को हृदय में पहचान भी लेता है। अब मैं, इसका वृत्तान्त बता रहा हूँ और इस संदर्भ में बारहमासा का वर्णन करके सुना रहा हूँ। बारह महीनों के सन्-संवत् को पहचान लो, और उसके मास-मास का वर्णन सुनकर महीने की प्रतीति करो। इस हृदय के मध्य ही सुरति समझकर घट आएगी। इस प्रकार मैं बारहमास वर्णित करके सुना रहा हूँ।

॥ दोहा ॥

हिये हेरा स्रुत सैल से, बारह मास बयान।
जानि सूर कोइ सत जन, सुनै सो सज्जन कान॥ १॥
गुइयाँ गोह गुमान गुन, गिरि बानी बिच बास।
फाँस कटी कटि सुरति की, कीन्हा अगम निवास॥ २॥

अर्थ–श्रुति पर्वत में स्थित तत्त्व को हृदय से खोजकर मैं बारह मासों का वर्णन कर रहा हूँ। इसे कोई विद्वान (सूर) संत जन की समझता है–और जो सुनता है–वह कान सज्जनों का ही है॥ १॥॥

हे साथी! इस अगम्य गुफा के गुण का निवास चित्त रूपी पर्वत में है। सुरति में लोकवासना का फंदा कट गया है और उसने अपना निवास अगम्य में बना लिया॥ २॥

॥ सोरठा ॥

बारह मास मिलाप, सुरति आप अपनी कही॥
लही जो तुलसीदास, बारह मास समझाय कै॥

अर्थ–सुरति से बारह मासों के अपने उस मिलन का स्वयं मैंने अपना अनुभव कहा है। जिसे स्वयं गोस्वामी तुलसीदास ने प्राप्त किया था, उसे वे समझा कर कहते हैं।

॥ बारहमासा ॥ (सवैया)

गुइयाँ री गुन गोह गिरा बिच मैं न रहौंगी॥ टेक॥
आली असाढ़ के मास बिलास, सो बास पिया बिन मोहि न भावै॥
गरजि अकास की भास रबी, छबि बादर की कही बात न जावै॥
बिजली चमकै घन घोर घटा, घर घाट पिया कोउ नेक न पावै॥
गोह गुना गिरि बीच बसी, सो फँसी तुलसी चित चेत न आवै॥

अर्थ–हे सखी! मैं इस लौकिक गुणों की गुफा जैसी पर्वत कन्दरा में अब नहीं रहूंगी।

हे सखी! आषाढ़ मास के विलास-बिना प्रिय के साथ निवास किए मुझे भा नहीं रहा है। आकाश की चमक गरज रही है इन बादलों की बात कही नहीं जा रही है। घनघोर घटाएँ हैं, बिजली चमक रही है और इसमें कोई अपने प्रिय का घर और वहाँ तक जाने का घाट मार्ग कोई नहीं प्राप्त करता। गुण गिरि की गुफा के बीच मैं निवास कर रही हूँ और तुलसी साहब कहते हैं कि इसी से मैं फँस गई हूँ और मेरे चित्त में कोई ज्ञानभरी चेतना नहीं उठ रही है।

(कड़ी)

अगमन आयौं असाढ़हि मास। गरजत गगन रबी तजि भास॥
भान घटा नभ नैन निहार। सूरति समझि चली नभ पार॥
पिया पद साज गहौंगी॥ १॥

अर्थ--आषाढ़ के महीने का आगमन हो उठा और सूर्य की पखरता का त्याग करके आकाश गरज रहा है। आकाश में स्थित उस बादल की घटाओं को देखो:सुरति को समझकर आकाश के पार चलो। अपने पति के ही चरणों पर सजाव करूँगी॥ १॥

॥ सवैया॥

स.वन सोर करै बन मोर, सो दादुर प्यास पपीहा पुकारी॥
ताल मही हरी भूमि भई, सो नहीं कोइ पंछिन चोंच चुकारी॥
मैं मन में सुनि कै बिगसी, जस ताल रबी बिच कंज सुखारी॥
जो तुलसी गुन माहि रही, सो भई जम साथ के संग दुखारी॥

अर्थ–सावन के महीने में बन में मयूर शोर कर रहा है, दादुर प्यासे है, पपीहा पुकार रहा है–ताल के पास की सारी भूमि हरी-भरी हो उठी है फिर भी ताल जल को कोई पंक्षी अपनी चोचों से छू रहा है (क्योंकि) जल तो चारों ओर हो चुका है। मैं पति का स्मरण करके उस प्रकार प्रसन्न हुई जैसे ताल एवं सूर्य बीच कमल सुखी रहता है। तुलसी साहब कहते हैं कि अब यदि मैं गुणों (भौतिक गुणों) के साथ निवास करूँगी तो यम के साथ रहकर निरन्तर दुखमयी बनी रहूँगी॥

(कड़ी)

सावन सरवर नीर अपार। बरसत गगन अखंडित धार॥
गैल गली सब हरियल भूमि। नील सिखर चढ़ि सूरति घूमि॥
चमक बिजली की सहौंगी॥ २॥

अर्थ–इस श्रावण के महीने में तालाबों में अगाध जल है और आकाश में अंखण्डित जलधारा बरस रही है। सारे खाली पड़े स्थानों तथा गलियों की भूमि हरी हो उठी है। उस नील शिखर पर चढ़कर सुरति में भ्रमण करूँगी और उस शून्याकाश की विद्युत चमक को ले लूँगी॥ २॥

(सवैया)

भादों का भेद कहौं जो निखेद, सो खेद करम्म को काढ़ि-निकारी॥
सुरति सुर भई मति पूर, सो नागिनि नारि डसी जस कारी॥
चेत चली जो अकास अली, सो गली गुन गोह से होत नियारी॥
जो तुलसी सुख नारि भई, सो गई ले लार लगन्न के पारी॥

अर्थ–यदि बिना खेद के भादौ महीने के रहस्य का वर्णन करूं तो वह कष्ट जो मैं कर्म से भोग रही हूँ, इसे काढ़कर निकालना पड़ेगा। सूरति रूपी सूर जैसे ही हमारी मति को पूर्णता देने को हुआ–उसी समय काली नागिन रूपी यह माया नारी आकर मुझमें बस गई। हे सभी! मैं तो शून्याकाश की ओर चल पड़ी थी किन्तु गुण रूपी गली की गुफा में विलक्षण बन गई। तुलसी साहब कहते हैं कि मैं जो सुख की खोज करने वाली नारी होती तो वह उसे साथ लेकर इस लोक के पार चली जाती॥

(कड़ी)

भादों भर्म भेद सब छूटि। काया कर्म कलस गये फूटि॥
नागिनि बिरह भूल डसि खाई। येहि बिधि सूरति गगन समाई॥
लगन संग लार लरौंगी॥ ३॥

अर्थ–भादौं के महीने में सम्पूर्ण मर्म रहस्य छूट गया। इस शरीर के कर्म का कलश छूट गया। विरह रूपी नागिन माया के मूल को डस कर खा गई और इस प्रकार सुरति आकाश में समा गई। अब मैं पूरी लगन के साथ ही प्रेम करूँगी॥ ३॥

(सवैया)

कूर कुवार कुमति को जार, सो बारि बनी सब खाक मिलाई॥
कूकर काम भये जो निकाम, सो ठामहिं ठाम जो भूमि भुलाई॥
सुन सूरति भाल सो ताल मई, गई मानसरोवर पैठि अन्हाई॥
तुलसी सोइ संत के संग अड़ो, सो खड़ी सुन सब्द में जाइ समाई॥

अर्थ–यह क्रूर क्वार का महीना ना समझी का जंजाल है–जो भी संचित जलराशि थी, उसे उसने धूलि में मिला दिया। काम वासना रूपी कुत्ते थक उठे और जगह-जगह अपने निवास को भी भुला बैठे। शून्य सुरति अपने मस्तक पर तालमयी हो उठी और जाकर उसने मानसरोवर में स्नान किया। तुलसी साहब ऐसे सन्तों के साथ अड़ गए हैं–जो खड़ी-ही-खड़ी उस 'सब्द' को सुनकर ही उसमें समाधिष्ट हो उठे हैं॥

(कड़ी)

कुमति कुवार जारि जस फूस। कूकर काम रहे सब भूँसि॥
मानसरोवर सरस अन्हाई। सूरति समझ चली रस पाई॥
सब्द सुनि सार भरौंगी॥ ४॥

अर्थ–कुमति रूपी क्वार का महीना है, इसे घास की भांति जला दो और इस महीने में मानव जाति काम ग्रस्त कुत्ते की भाँति भौंक रहे हैं। सरस मानसरोवर में स्नान करके सुरति अपना ज्ञान करती तथा रस का आस्वादन करती हुई चल पड़ी। साधु जनों के 'सबद' को सुनकर उसे आध्यात्मिक सार तत्त्व को संचित करूँगी।। ४॥

(सवैया)

कातिक किरनि भई ससि सूर, सो दूर भये दल बादल सारे।
भूमि थीर भये जल नीर, सो नार नदी स्रुत सिंध सम्हारे॥
सिंधहिं बुंद मिले चढ़ चाल, सो काल कला जमदूरि निकारे।
तुलसी जिन चाँप धनू पै धरी, सो करी सम सूरति संत पुकारे॥

अर्थ–कार्तिक में चन्द्रमा की किरणें प्रभावमयी हो उठीं–इसलिए सारे बादल आकाश से दूर हो उठे। जल भूमि पर स्थिर हो उठे और नाले तथा नदियों के जल सुरति समुद्र में समा गए। साधना की चाल चलते हुए बूँद सिन्धु से मिल उठे और उन्होंने काल की कलाओं एवं यम की दूर भगा दिया। जिन साधुओं ने अपनी धनु पर बाण चढ़ा लिए, संतजन कहते हैं कि, उन लोगों ने अपनी सुरति समाधिको सम भाव की बना ली॥

(कड़ी)

कातिक किरनि भास भये सूर। सलितहि समुन्द मिलै जस मूर॥
बुन्द सिंध बिन फिरत बेहाला। मिलि गया सब्द कटे जमजाल॥
सुरति घर चाप चहौंगी॥ ५॥

अर्थ–कार्तिक में सूर्य की किरणें प्रकाशित हो उठीं। सरिता और समुद्र आधार के रूप में मिल गए। बुंद और सिन्धु मिलन का होने के कारण बेहाल घिर रहे हैं। साधुजनों को 'सबद' प्राप्त हो उठा और उनके मायिक संकट (जन्म-मृत्यु) के संकट दूर हो उठे। अब तो सुरति की निवास स्थली में दबाव डाल कर निर्वाह करूँगी॥

(सवैया)

अगहन मास अनंदअली, सोंचली पिया पास पलंग बिछाई॥
पायौ पलक्क के पारपती, सोसती सत सूरति सार लखाई॥
सेज मिलाप भये पति आप, सो जीवत जनम सुफल्ल कहाई॥
तुलसी मन में सुख चैन भई, सो गई बर आदि सो साध समाई॥

अर्थ–अगहन का महीना है. सखी आनन्दित है, प्रिय के पास चली और पलंग बिछा दिया। अपनी पलकों में उसने दिव्य पति को प्राप्त कर लिया और उस सती को सत्य पुरुष की सूरति का निचोड़ दिखाई पड़ गया। पति से स्वयं सेज पर मिलन हुआ और उसने जीवित अवस्था में ही अपना जन्म सुकाल कर लिया। तुलसी साहब कहते हैं कि उसके मन में परम शन्ति मिली और वह अपने अनादि पति की आकांक्षाओं में खो गई॥

(कड़ी)

अगहन अली पिया पलँग बिछावा। जीवत जनम मिलौ अस दाँव॥
पिया की सेज सुख सहस्त्रु ततिसार। नित प्रति केलकरौं पति लार॥
अली बर आदि बरौंगी॥ ६॥

अर्थ–अगहन के महीने में हे सखी! पति के लिए पलँग बिछाओ और इस जीवनकाल में देखते-देखते ऐसा अवसर मिल रहा है। पति की यह शय्या हजारों-हजारों ध्वनि तरंगों के आनन्द से भी विलक्षण है और मैं उस शय्या पर प्रतिदिन संसक्ति पूर्वक केलि क्रीड़ा करूँगी और मैं अपने उस आदि परम तत्त्व को वर के रूप में वरण करूँगी॥ ६॥

(सवैया)

पूस पुरुष क़ी होस भई, सों गई सतलोक में सो ; सिहारी॥
प्यारी सखी गुरु गैल गई, सो कही पद प्यारे की चौ घिन्हारी॥
छाइ रही सुन मंदिर में, घर घाट पिया लखि बा : बिचारी॥
पिय रस रीत की जीत भई, सो कही तुलसी जिन : न निहारी॥

अर्थ–पूष के महीने में मुझे अपने पुरुषके प्रति याद आई फलतः सत्लोक में ज कर मैंने अपना शोक विनष्ट कर दिया। मैं अपनी प्यारी सखी के बड़ी गली में गई और अपने प्रिय क आनन्द भरी पहचान बताई। उनके विषय में सुनकर उनके मंदिर में छाई रही और उनके घर-घाट और मार्ग के लिए परेशान रही। तुलसी साहब कहते हैं कि अन्त में प्रियतम के मिलन के रस की विजय हुइ -क्योंकि जिन नेत्रों से उसने मुझे जैसे ही देखा है, उसे बताया।

(कड़ी)

पूस परम परम पद पुरुष निवास। स्तुति सतलोक करै नित बास॥
सिष गुरुगवन मिले मत पाइ। प्यारी पुरुष रही घर छाइ॥
सखी सुख जानि कहौंगी॥ ७॥

अर्थ–पूस मास ही उस परम पद के लिए श्रेष्ठ निवास है और (इसी महीनें में) वह पुरुष श्रुति लोक में निरन्तर निवास करता रहता है। गुरु द्वारा उस संत पुरुष तक के गमन के ज्ञान मिलते हैं और इस प्रकार वह प्यारी आत्म चेतना उस अगम्य पुरुष के घर में जाकर निरन्तर वास करती है। हे सखी उस सुख का वर्णन मैं समझ कर बताऊँगी॥ ७॥

(सवैया)

माह मनोहर महल चढ़ी, सो खड़ी खिरकी तक तोल बखानी॥
जानि कही सोइ साध सुजान, सो मानी जिन्ही सोइ पास समानी॥
पानी दूध की छानकरी, सो भरी लखि सूरति सब्द ठिकानी॥
जीवत ही मरि जात सही, सो कही तुलसी जिन जानि निसानी॥

अर्थ–मनोहर माघ के महीने में वह महल में चढ़ी हुई और खिड़की के पास खड़ी होकर उसके रहस्य (तकलीफ) को इंगित कर रही है। उसने समझकर सुजान साधुओं को अनुभव की बातें बताई किन्तु उसे उसी ने माना जो पास आकर अनुभव किया था। दूध तथा पानी को अलग करते हुए उसे उस सुरति समाधि में देखकर आनन्दित हुई तथा सुरति शब्द में स्थिर हो उठी। तुलसी साहब कहते हैं कि जिन्होंने उसके लक्षणों की समझ लिया है, वे जीवित रहते हुए मृत जैसे हो उठते हैं॥

(कड़ी)

माह महल झँझरी चढ़ि ताक। पिया की सेज सुखसत सत भाख॥
कोइ कोइ सज्जन साध बिलास। पहुँचे अगम पिया घर बास॥
कही जिन जिवत मरौंगी॥ ८॥

अर्थ–माघ के महीने में खिड़की पर चढ़कर ताको और अपने प्रिय की सुख देने वाली शैय्या का वर्णन करो। कोई कोई साधुजन ही वहाँ विलास करते हैं और उस प्रियतम के अगम्य घर में पहुँचते हैं और कहते हैं–यहाँ जीवन्मृत रहना ही उचित है॥ ८॥

(सवैया)

फागुन फहम करौरी सखी, लख जात बह्यौ संसार असारा॥
सूरति सार के पार लखै, सो थकै मन मारग मौज अपारा॥
संत सिरोमनि शैल कही, सो गई गुरुमारग साँझ सवारा॥
प्यारे पिया की पकड़ गही, सो जकड़ हिये जंजीर सी डारा॥

अर्थ–इस फागुन के महीने में थोड़ा धीरज रखो-देखो, यह असार संसार (वासन्ती दवाव में) बहा जा रहा है। जो साधु सुरति-सार तत्त्व के उस पार देखते हैं, वे थकित हो उठते हैं–क्योंकि उस मार्ग में अपार आनन्द है। संत शिरोमणियों ने जिसे 'आनन्द-बिहार' कहा है–वह तो गुरु मार्ग पर चलकर साँझ या सबेरे चला गया। वह अब प्रियतम अगम्य पुरुष की पकड़ में है: और उसे जकड़ कर उसमें जंजीर की भांति हृदय में डाल लिया है।

(कड़ी)

फागुन फरक भयौ संसार। जिन जिन सुरति करी तन जार॥
सतगुरु मूल मता मुख बैन। जब लखि लखी संत की सैन॥
समझ सोह पकड़ धरौंगी॥ ९॥

अर्थ–फागुन के महीने में संसार में अंतर आ गया है–जिन्होंने सुरति समाधि लगाई, उनका शरीर जल उठा। सतगुरु का मूल मंत्र ही मुख की वाणी है- और जब-जब उसने संतों के इशारों को देखा उसने कहा, अब वही मैं पकड़ कर धारण कर लूँगी॥ ९॥

(सवैया)

चैत चली सो सुनौ री अली, गइ गैल गली सुन रीति निहारी॥
सेत सरासर भेद लखी, सो पकी बिधि बेनी के घाट बिचारी॥
सारी सरोवरि ताल तकी, पकि प्यारी अन्हाइ के काज सँवारी॥
जो तुलसी चढ़ि के जो चली, सो अली खिरकी बिधि आनि पकारी॥

अर्थ–चैत का महीना है, हे सखी! सुनो, मैं अपने प्रियतम की उस गली में गई और वहाँ जाकर उसकी रीति नीति देखी। मैंने श्वेत मार्ग का स्पष्ट रहस्य देखा, और वह त्रिवेणी (इडा, पिंगला, सुषमा) के घाट पर विचारी पकी हुई थी। मैंने सारे सरोवरों और तालों को देखा और पूरी तरह से परिपक्व होकर तथा स्नान करके कार्य सम्पन्न किया। तुलसी साहब कहते हैं कि जो वहाँ चढ़ती हुई चलती गई वह खिड़की तक पहुँच कर परिपक्वता प्राप्त कर की॥

(कड़ी)

चैत चली जिन चरन निहार। सो उतरी भौसागर पार॥
आद अरु अंत पंथ घर बाट। सो पद परसि त्रिबेनी घाट॥
चीन्ह खिरकी को चहौंगी॥ १०॥

अर्थ–चैत्र माह में जो उन चरणों के चिह्नों को देखकर सुरति मार्ग पर चली–वह भव सागर के पार उतर गई। आदि से लेकर अन्त तक उसके ही घर एवं घाट हैं उसके ऐसे त्रिवेणी घाट के मार्ग का अनुगमन करो–और प्रियतमा कहती है–कि मैं अपने पति के आवास की खिड़की को पहचान कर ही उसी की आकांक्षा करूंगी और की नहीं॥ १०॥

(सवैया)

बैन बिधी बैसाख बिलास, सो पास पिया नित सैल सँवारे॥
पार के सार बिहार करै, सो बिचार बिधी स्रुत तार निहारे॥
प्रीतम मेल भया रस केल, सों केल किवार के पार पुकारे॥
तुलसी तन में जिन जान लखे, सो भखे पिय पास के भास निकारे॥

अर्थ–वैशाख मास की विलास विधि की वाणी सुनो! मेरे पति मेरे सदा समीप हैं और निरन्तर बिहार को सँवार रहे हैं। उस परम तत्त्व के उस पार वे बिहार कर रहे हैं, और विचार विधि के लिए श्रुति चिन्तन के सम्बन्धों को देखते हैं। प्रियतम मिले, रसक्रीड़ा सम्पन्न हुई:उस केलि के शब्द किवाड़ के उस पार पुकारे जाते हैं–यह आश्चर्य का विषय है। तुलसी साहब कहते हैं कि जिन शरीरों में चेतना दिखाई पड़ती है, वे प्रियतम के पास आत्म निवेदन के शब्द कहते हुए अपने हृदय की पीड़ा निकाल रहे हैं।

(कड़ी)

करि बस बास बैसाख बिलास। छूटि गई तनमन की आस॥
प्रीतम प्यारी मिले मन खोल। रँग रस रीति सुने सब बोल॥
पिया सँग केल करौंगी॥ ११॥

अर्थ–वैशाख विलास में अपने वास स्वामी को नियंत्रित करो और प्रिय के साहचर्य से तन-मन की आशा छूट गई। हे प्यारी! तुम प्रियतम से मन को खोलकर मिलो। रस रीति से रंग उठो और उससे जुड़े सारे बातों को सुनो और मैं तो प्रियतम के साथ रसक्रीड़ा करूँगी॥ ११॥॥

(सवैया)

जेठ की रीत करी मन जीत, सो प्रीत की बात की सैन सुनाई॥
चेत चली तजि काल बली, सोइ जाल जली दुख दूरि नसाई॥
जिमि धाइ जो धीर गँभीर नदी, स्रुत सार सँवारि जो सब्द समाई॥
ये मुख बैन कहै तुलसी, सो लसी सत द्वार जो सब्द को पाई॥

अर्थ–जेठ की रीति यही है कि मन को जीतो तभी प्रिय की प्रेम भरी बातों की भंगिमा सुनाई पड़ेगी। बली काल को जानकर उसका त्याग करके चलो और कर्मकाल के जाल से युक्त हो उठोगी और उसका दुःख दर्द नष्ट हो उठेगा। धीर तथा गम्भीर नदी की भांति दौड़ो और श्रुति सार को सँवार कर उस शब्द में समा जाओ। तुलसी अपने मुख से यह बात कहते हैं कि जिसने 'सबद' का मर्म पा लिया है, वही उस सत्य पुरुष के द्वार पर निवास करता है।

(कड़ी)

जेठ जबर तन मन स्रुत रीत। सुरख सबज चली अगमन जीत॥
सेत जरद रँग स्याम भुलान। पाँचोइ तत्त करी नहिं कानि॥
सुखी सुनि पार फिरौंगी॥ १२॥

अर्थ–जेठ का महीना संकटमय है, तन मन को श्रुति की रीति में लगाकर अगम्य की ज्योति की ओर सँवार-सजकर चलो। वह श्याम (प्रियतम) श्वेत और जर्द रंग में भुला गया है–पांचों तत्त्वों में से किसी की बात न सुनो–तभी शून्य के उस पार तुम सुखी होकर टहलोगी॥ १२॥

केवल ज्ञान निरबान निवास। ता से परे कहै तुलसीदास॥
संत चरन धरि धारौ धूरि। अगम बरन बरनी पद मूर॥
निडर घर सुरति भरौंगी॥ १३॥

अर्थ–वहाँ कैवल्य ज्ञान का निवास है–तुलसी साहब उसके परे हैं आगे सत् के चरणों को पकड़कर उसकी धूलि धारण करो। उसके चरणों का स्थान अगम पद का मूलतत्त्व कहा गया है। मैं इस प्रकार निडर भाव से सुरति के घर को आत्म-संस्थापन से भर दूँगी॥ १३॥

(सोरठा)

बारह मास बयान, हिये हेरि कोइ पद लखै॥
चखै चरन रस रीति, प्रीति पार पुर्षहिं मिलै॥

अर्थ–इस बारह मासे के वर्णन को हृदय से देखकर कोई भी सन्त यदि उस अगम्य तत्त्व के चरणों को देखता है तो इन चरणों की रस की रीति को चखेगा और उस प्रीति को पार करके उस परम पुरुष तत्त्व की प्राप्त करेगा॥

॥ चौपाई॥

जिन जिन हेर हिये बिच पावा। बारह मास समझि चितलावा॥
समझि समझि कोइ बूझै साध। सुरति सहर घर बरन अगाधू॥

अर्थ–जिन-जिन में उस परम पुरुष की खोज करके हृदय में प्राप्त कर लिया है–इस बारह मासे को समझकरके उसी में चित्त लगा दिया। कोई साधुजन ही इसे समझकर बोध करेगा–उस सुरति नगर में धर की पहचान (वर्ण) दुर्लभ है।

चित्त दे गुनै लखै सुनि काना। सत सतसंग करै परमाना॥
बिन सतसंग साँच नहिं आवै। धर धर धोखे जन्म गँवावै॥
जिन सतसंग रंग रस पाई। हिरदे तिमर कपाट खुलाई॥
मन तन सुरति फोड़ असमाना। मद्ध हिये तन तिमर नसाना॥
मोड़ी सुरति पोढ़ा पद लारी। तेज भास लखि सुरति निहारी॥
हिये दृग नैन निरखि जस देखा। संत सैन कोइ करै बिबेका॥
जिन जिन सुख दुख दूरि बहाये। कर्म काल कृत धोय नसाये॥
तन बिच तोड़ा सुरति निसाना। सुन्न सब्द स्रुति गगन समाना॥

अर्थ–इसे चित्त से सुने और कानों से सुनकर देखे और सत् पुरुष की सत्संगति करके उसे प्रमाणित कर दे। बिना सतसंग के सत्य नहीं आता और संशय तथा धोखे में पड़कर गँवा देता है। जिन्होंने सत्संग का रंग और रस नहीं प्राप्त कर लिया है, उनके ही हृदय के अंधकार की ही किवाड़े खुलती है। शरीर की कामनाओं एवं मन की केन्द्रीयता से शून्याकाश को तोड़ने से हृदय के मध्य का तिमिर नष्ट हो उठता है। सुरति की ओर मोड़कर उस सत्य के प्रौढ़ पदों में लगो। हृदय रूपी नेत्रों से इसे इस प्रकार देखो जिसका विवेक किसी संत की भंगिमा ही निवारण करती है। जिन-जिन महात्माओं के भौतिक सुख तथा दुःखों को धोकर बहा दिया–उन्होंने कर्म, काल तथा उसके कूलों को विनष्ट कर दिया। इसी शरीर के बीच ही सुरति द्वारा लोक वासनाओं को तोड़ा गया और शून्य शब्द श्रुति के आकाश में समाधिस्थ हो उठा।

॥ दोहा ॥

सुन्न सब्द तन तोड़ि कै, मोड़ि गगन की गैल।।
मूल बिलावल में कहूँ, बूझै सज्जन सैल॥

अर्थ– इन तन को तोड़कर शून्य शब्द ने आकाश की गली मोड़ दी और इस नये तत्त्व को इस बिलावल राग द्वारा समझ लेता है॥

॥ बिलावल ॥

तुलसी तन तोड़ फोड़ मोड़ पोढ़ पाई॥ टेक॥
देखौ नृत नैन सैन बूझौ सतगुरु के बैन।
छाँड़ौ दुख सुक्ख सैन संतन मत चाही॥
अंदर में आदि खोज उतरै भौजाल बोझ।
मारौ जम काल फौज चौल चार माहीं॥
देखौ हिये हेर खोज अंत कहूँ नाहीं॥ १॥
सूरति नृत सैल खेल तोड़ौ असमाना पेल॥
सब्दा रस सुरति मेल मार दे चढ़ाई।
येहि बिधि चित चेत हेत मारौ मन सूर खेत॥

छाँड़ौ सगरी अचेत हेत सेत माईं।
ता से मन चेत बूझि देखि दृष्टि जाई॥ २॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि इस शरीर को तोड़ देने पर, फोड़ देने पर और उसकी दिशा बदल देने पर ही कोई सन्त उस प्रौढ़ (श्रेष्ठ) स्थान को प्राप्त करता है।

प्रतिदिन सतगुरु के पवित्र नेत्र और उसकी भंगिमाओं को देखो और उनकी वाणियों को समझो। संसार में स्थित सुख-दुःख को छोड़ दो और संत के मन की इच्छित भंगिकाओं को समझो।

अपने अन्दर स्थित उस आदि तत्त्व की खोजो, इस भवजाल का बोझ जिससे उत्तर सके और चार ही कदम चलकर यमराज और काल की फौज नष्ट कर दे। अपने हृदय को टटोलकर देखो, कहीं कोई अन्तिम बिन्दु नहीं है॥ १॥

सुरति के सत्य (नृत) के पर्वत पर खेलो, इस शून्याकाश की गहनता को तोड़ो, शब्द और सुरति का मेल करा दो फिर शून्याकाश पर चढ़ने का कष्ट भी खत्म कर दो।

इस प्रकार मन में समझ पैदा करने और शूरमा मन को युद्ध क्षेत्र में नष्ट कर दो और चारों ओर मान के अचेत व्याप्त तत्त्वों को, जो स्वार्थ के हेतु बने हैं, छोड़ दो॥ २॥

बाहर सब झूठ लूट ऐसा मन टूट फूट।
तन में मन आतम मोट भूला भल साईं॥
ये तौ सब काल जाल राम कृष्न निरख हाल।
या के सँग चलौ न चाल छाँड़ि भेद भाईं॥
या से सतसँग सार खोजु मौज माहीं॥ ३॥
साँची कहै पूर अदूर बूझै कोइ संत सूर।
जानै अगमन अपूर मन तन रत राहीं॥
का से कहौं बात चौज सूरति मन मार मौज।
छूटै दिल दरज दौज खोज आप माहीं॥
रोज पार सार देख अंतर बिच पाहीं॥ ४॥
बूझौ मन सीख लीक चाखौ रस अगम चीख।
छूटै भौ भर्म भीखू पी के पार साईं॥
देखौ अज अमर हेर कीजें ब्रह्मंड सैर।
लीजै पिउ पार हेर फेरि मेहर पाईं॥
जा की गम घोर सोर कँवलन के माईं॥ ५॥

अर्थ–बाहर चारों ओर असत्य की लूट बनी हुई है–और इन सब में फँसकर इस प्रकार मन पूरी तरह से टूट चुका है–इसी तन में ही आत्मतत्त्व वर्तमान है, और यहीं शरीर में स्थित स्वामी को भी मन भूल चुका है॥ ये सब काल के जाल हैं, राम और कृष्ण की स्थिति को तो समझो–इनके साथ कभी कदम बढ़ाकर मत चलो। इस रहस्य (भेद) को समझकर, हे भाई! इन्हें छोड़ दो॥

इसी में ही सत्संगति का सार तत्त्व है और इसको अपनी आत्मा के आनन्द में खोजो॥ ३॥

मैं सत्य कह रहा हूँ, वह पूर्ण तत्त्व पास में ही है। यह समझ में आ रहा है–इसे कोई बलशाली (सूर) संत ही समझता है। जो राही (साधना मार्ग द्वारा-मनुष्य) मन और शरीर में रत है, वह इसे नहीं समझता।

इससे मैं रहस्य की बातें कर रहा हूँ। सूरति समाधि द्वारा मन को आनन्दपूर्वक वश में करने ताकि हृदय में स्थित संदेह एवं रहस्य समाप्त हो उठे—और इसे तुम अपने में ही खोजो॥ प्रतिदिन उस सारतत्त्व (पुरुष) को अपने अन्तर में ही उस पार प्राप्त करो॥ ४॥

'भन के द्वारा मेरी शिक्षा समझो, उसी लीक को स्वीकारों तथा अगम रस के स्वाद को चखो ताकि इस भवसागर की भ्रममयी याचना छूट जाते और प्रिय के पार स्थित स्वामी प्राप्त हो सकें। उस अज तथा अमर तत्त्व को खोजकर देखो, इसके द्वारा इस ब्रह्मांड की सैर करो और उस पार प्रियतम को खोज लो और हृदय से उनकी दया (मेहर) प्राप्त करो। उस परतत्त्व की गम्य (पहचान-लक्ष्य) और ध्वनि कमलों के बीच सुनाई पड़ती है॥ ५॥

सुन्न घुन्न सुन्न माहिं सूरति से निरख जाइ।
हिये माहिं हरष पाइ लै से लै पाई॥
बूझै कोइ सब्द बुन्द पहुँचै पार अगम सिंधु।
सूरति से लखौ संध फंद फाड़ जाई॥
सब्दा रस सुरति चीन्ह लीन पार पाई॥ ६॥
पाया सतगुरु दयाल मारा मन डंड काल।
पाया पद पदम हाल साल जाल नाहीं॥
कीन्हा बहु प्यार यार लेखा अगमन अपार।
हर दम हिये लौ की लार कर्म को छुड़ाही॥
ये तौ तत मत्त सार तेरे तिल राही॥ ७॥

जिसकी शून्य की ध्वनि (अनाहत नाद) शून्य के मध्य सुनाई पड़ती है और सुरति समाधि द्वारा जिसे देखा जा सकता है तथा हृदय के बीच लयात्मक गति द्वारा हर्षित होकर उसे प्राप्त करो। उस अगम सिन्धु के पार पहुँचकर उसे 'सब्द' रूपी बिन्दु से समझो और इस मायिक फंदे को फाड़कर सुरति समाधि द्वारा उसे वहाँ जाकर जानो इसी सुरति समाधि द्वारा ही 'सब्द' रूपी रस में लीन उस तत्त्व को उस पार जाकर पहचानो॥ ६॥

दयालु सत्गुरु को पाकर मन और काल दोनों को दंड से मार कर उस पुरुष तत्त्व के चरण कमल का अनुभव प्राप्त करो—इसमें किसी भी प्रकार के जाल का संकट या कष्ट नहीं है। उस प्रिय ने मुझे बहुत प्यार किया और मैंने भी उस अगम्य तथा अपार तत्त्व का हृदय में अनुभव किया और कर्म को छुड़ाकर प्रतिक्षण उससे मुक्त ही उठा। यह हृदय तो तुम्हारे लिये स्थान के मार्ग का राही होकर उस सार तत्त्व में मस्त है॥ ७॥

तुलसीदास पास अस सूरति नित चढ़ि अकास।
सोहत अगमन बिलास बुन्द सिंध आई॥
ऐसी दिन दिवस रैन पौंढ़ी पलँगा पै सैन।
चीन्हा घर आदि ऐन प्यारा गुरु पाई॥
न्यारा नित नित निहार प्यारे के आई॥ ८॥
याही बिधि कहत सूर सतगुरु की चरन धर।
जाना सगरा जहूर जल जल ज्यों जाई॥
मो को प्रिये प्रिये लाग छनि छनि उठि निरख भाग।

मन से जग सुरति त्याग खग ज्यों उड़ जाई॥
छिन छिन नित करै सैल धृत ज्यों दधि माईं॥ ९॥
तुलसी तन निरख सार सूरति पेखा बिहार।
देखा पद चटक चार दीदा दरसाई॥
सुखमनि मन मन्न लार आगे सूरति सँवारि।
पाये पिया प्राग पार पूरा मद माईं॥
तुलसी तुलसी निहार बोलै घट माईं॥ १०॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि तुम्हारे पास तो इस प्रकार की सुरति तत्त्व रूपी आकाश है, उस पर नित्य प्रति चढ़ो और वहाँ उस अगम तत्त्व की निरन्तर विलासमयी भावना शोभित हो रही है और बिन्दु सिन्धु के समीप मिलने के लिए आ गई है। सारी रातें और सारे दिन निरन्तर इसी प्रकार (आनन्दमयी) हैं और उस (प्रियतम) के संकेत से उसके पँलग पर लेट गई हूँ–और प्यारे गुरु को पाकर अब अपना आदि निवास स्थान में स्थित घर पहचान लिया है और उस विलक्षण प्रियतम को मैं नित्य-प्रति-नित्य देखती जा रही हूँ॥ ८॥

सत्गुरु के चरणों की धूलि पाकर इसी प्रकार हम सिद्ध संतजन कहते हैं और अगम्य जल में घुस-घुसकर इस समग्र संसार के रहस्यों को समझा। मुझको प्रतिक्षण मेरा प्रिय-प्रिय लगा और क्षण-क्षण। उठकर अपने भाग्यस्वरूप उस प्रियतम को देखा। इस मन से सुरति द्वारा संसार को इस प्रकार त्याग दिया जैसे वृक्ष से उड़-उड़ कर पक्षी भाग जाते हों और उस अपने प्रियतम में मैं क्षण-क्षण इस प्रकार बिहार करती हूँ, जैसे दही के अन्तर्ग स्थित घृत॥

तुलसी साहब कहते हैं कि इस संसार के सार को देखकर सुरति स्थली में अपनी बिहार स्थली देखी और वहाँ पदों की चटक सुनी तथा सुनकर दर्शन दिखाई पड़ा (या उसने सुन्दर दर्शन दिया) सुख भरे चित्त में चित्त आत्मीय हो उठा और फिर अपनी सुरति समाधि को सँवार कर उसके आगे अपने प्रियतम को पूरे आनन्द के साथ प्राप्त किया।

और इस तुलसी को जैसे घट के मध्य स्वयं तुलसी देखकर आत्मीयता से बात कर रहे हैं। इस प्रकार आत्मस्व से दर्शन तक इस समाधि का बहुत बड़ा सुख रहा हो॥ १०॥

॥ सोरठा॥

प्रियेलाल लखि बात, ये अनंत न्यारी कही।
सूझि बूझि हिये सोय, जब अरूप गति को लैखै॥

अर्थ–हे प्रियेलाल, इस बातों को समझो, मैंने विलक्षण बातें कहीं हैं, इस देह के अन्तर्गत साधक उस अरूप गति को देख लेता है, तभी उसके द्वारा वह सूझता है और समझा जाता है॥

॥ चौपाई॥

ये घर अगम भेद है भाई। सतसंग करै लखै तब जाई॥
ये अगाध की बात अनूपा। बूझै संत मिलै कोई भूपा॥
अगम पंथ सतगुरु से पावै। सतगुरु मिलै तो राह बतावै॥

अर्थ–यह काया का घर अगम्य एवं अभेद्य है। सत्संगति करने के बाद ही यह इस समाज में आता है। यह अगाध तत्त्व की विलक्षण बातें हैं–कोई राजलक्षण युक्त संत जब मिलता है, तभी संतों की समझ में बातें आती हैं। सत्गुरु द्वारा साधु उस अगम्य पंथ को प्राप्त कर लेता है। सत्गुरु मिलने पर ही वह इस अगम्य तत्त्व की रातें बताता है–अन्य कोई नहीं॥

॥ प्रश्न प्रियेलाल । चौपाई ॥

स्वामी से बूझौं इक बाता। ता की बिधी कहौ बिख्याता॥
जग निस्तार बेद से होई। कै कोई और राह मति सोई॥
सब मिलि कहै बेद निस्तारा। बेद बिना नहिं उतरै पारा॥
आदि बेद चारौ जुग माहीं। जिव भौ पार उतरि के जाई॥
ऐसे सभी सभी मिल गावे। सतगुरु मिलैं भेद बतलावैं॥

अर्थ–हे स्वामी! मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ–उसके मर्म को मुझे समझाने का कष्ट करें। सारे संसार का गुजर-बसर बेद से होता है क्या इसके अतिरिक्त भी कोई अन्य मार्ग या ज्ञान है। सभी मिलकर कहते हैं कि समग्र रहन-सहन की व्यवस्था वेद से है, और बिना वेद के कोई उस पार नहीं उतर सकता। चोरों युगों में वेद ही आदि तत्त्व है और उसके द्वारा ही जीव भवसागर के उस पार उतर कर जाता है। इसी प्रकार की बातें सभी मिलकर कहते हैं–भाग्य से, यदि सतगुरु मिलते हैं तो वही इस रहस्य को बतला सकते हैं॥

॥ उत्तर तुलसी साहिब॥ चौपाई॥

सतगुरु मिलैं कहैं दरसाई। बिना संत नहिं बूझ बुझाई॥
बेद भेद बिधि नाहीं जानै। बाम्हन पंडित एक न मानै॥

अर्थ--भाग्य से, जब सतगुरु मिलते हैं तो वही उसे प्रत्यक्ष दिखकर बताते हैं। यह बिना सन्तों के समझ में नहीं आता। वेद के भेद को हम नहीं जानते--और ब्राह्मणों तथा पंडितों को हम नहीं स्वीकारते हैं॥

॥ प्रश्न प्रियेलाल। चौपाई॥

स्वामी दया भाव करि दीजै। दास जानि प्रभु किरपा कीजै॥
हे दयाल या की बिधि भाखौ। मोपर दया दृष्टि सोइ राखौ॥
मोहिं प्रभुदास भाव करि जानौ। किरपा करि सोइ करौ बखानौ॥
मैं चेरा तुम चरन बिचारा। भाखौ आदि अंत निरबारा॥

अर्थ–प्रियेलाल कहते हैं कि हे स्वामी! मेरे ऊपर कुछ दयाभाव कर दें और अपना दास समझकर कुछ कृपा कर दें। हे दयालु! इसके विषय में कुछ कहें और मेरे ऊपर आपने जो दया दृष्टि की है, उसी की रक्षा करते चलें। हे स्वामी! मुझ पर आप दास्यभाव की ही कृपा करें और कृपा करते हुए उसी का मुझसे वर्णन करें। मैं बेचारा तो तुम्हारे चरणों का दास हूँ–और आदि-अन्त तक उस परम तत्त्व का निराकरण करते हुए मुझे बताएँ।

सम्वाद प्रियेलाल गुसाई के साथ

॥ उत्तर तुलसी साहिब। चौपाई॥

अब भाखूँ सुन आदि अपारी। बेद अन्त भाखूँ सब झारी॥
सत्त पुरुष इक रहै अकाया। अंस तासु सोइ निरगुन आया॥
गुन तीनों से सरगुन भइया। सोइ भगवान बैराटी कहिया॥
सोइ बैराट से ब्रह्मा भइया। तुम कहौ ता न बेद बनइया॥

पुनि उन निरगुन बेद बुझाई। सोइ निरगुन ने नेति सुनाई॥
सत्त पुरुष निरगुन से न्यारा। निरगुन काल ने पावै पारा॥
पुरुष अस से सब जिव आये। निरगुन ने सरगुन में नाये॥

अर्थ–अब मैं आदि एवं अपार का वर्णन कर रहा हूँ। साथ ही, वेद के सम्पूर्ण अन्त का भी वर्णन कर रहा हूँ। शून्याकाश में एक सत्य पुरुष बिना शरीर का रहता है–उसी के अंश से निरंजन तत्त्व आया है। तीन गुणों में एकता हुई उसी से सगुण बना। उसी को विराट भगवान कहा जाता है। उसी वैराट से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई, उसी के लिए कहते हो कि उसने वेदों की रचना की है। उन्होनें उसके बाद निर्गुण वेद बनाया और उस निर्गुण ने नेति' शब्द कहा। सत्य पुरुष निर्गुण से न्यारा है। इस निर्गुण से काल भी पार नहीं पा सकता। पुरुष अंश से सारे जीव प्रगट हुए हैं–निर्गुण ने अपने थोड़े अंशों को सगुण में डाल दिया।

पाँच तत्त गुन तीनि समाई। भये बैराट कर्म बिधि जाई॥
जा को जगत कहे भगवाना। कर्म भाव चर अचर समाना॥
रजोगुन ब्रह्मा ता से भइया। पहिले नाद बेद पुनि कहिया॥
पाँच तत्त बिन नाद न सोई। सो विन नाद बेद कस होई॥
पुरुष नाम निरगुन से न्यारा। सोइ अंस जिव जुग जुग सारा॥
आदि पुरुष को जीव भुलाना। निरगुन काल माहिं उरझाना॥
निरगुन नेति सरगुन बतलावै। यह बैराट बेद बिधि गावै॥
सत्त पुरुष का मरम न पावै। निरगुन सरगुन को गोहरावै॥
आदि पुरुष को संत बखाना। वो घर पहुँचै सुरति निसाना॥
अब या का दृष्टांत बताऊँ। प्रियेलाल सुनियौ सत भाऊ।।
प्रथमहि जीव पुरुष से आया। निरमल ज्ञान संग सम लाया॥
परथम जुग जिव निरमल होई। तारन उजला होत न सोई॥
जिव उजला जुग उजला भाई। जबहि बेद तारन कस गाई॥

अर्थ–इस शरीर में पाँच तत्त्व एवं तीन गुण समाविष्ट हो उठे और वे कर्मविधि के कारण विराट बन गए। संसार इन्हीं को भगवान कहते हैं और इस सम्पूर्ण चर-अचर युक्त संसार में कर्मभाव समाविष्ट हो उठा। रजोगुण से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई उन्होंने पहले नाद की चर्चा की फिर वेद की। बिना पाँचों तत्त्वों के नाद की भी स्थिति नहीं है और बिना उश नाद तत्त्व के वेद तत्त्व कहाँ से हो सकता है। पुरुष निर्गुण से विलक्षण है–युग-युग के समस्त जीव उसी के अंश हैं जीव उस आदि पुरुष को भूल गया और वह निर्गुण रूप काल तत्त्व के बीच उलझ गया। सगुण को ये निर्गुण तथा नेति कहते हैं और ये वैराट के भेद विधि का वर्णन करते हैं (न कि पुरुष ब्रह्म की)। ये सत्य पुरुष का भेद नहीं जानते और ये निर्गुण को भी सगुण कहते हैं। सन्तों ने उस आदि पुरुष का वर्णन किया है और वही सुरति के चित्त द्वारा उस घर तक पहुँच जाते हैं। हे प्रिये लाल! सत्यभाव से सुनें, अब मैं इस सन्दर्भ में उनका एक दृष्टान्त देता हूँ।

सर्वप्रथम जीव का जन्म पुरुष से हुआ और अपने ज्ञान के साथ सारी निर्मलता लेकर आया था। प्रथा युग में जीवों का हृदय निर्मल होता था–उसके बाद यह उतना उजला नहीं रह गया। यदि युग उजला है तो जीव का हृदय भी उजला है तब वेदों ने जीव का उद्धार किया यह बातें कैसे कही गईं॥

कहै बेद तारन की बाता। तरन कहा कर कीन्ह बिधाता॥
उजला जुग उजला जिव आया। ताजा पुरुष पास अस गावा॥
तब तारन कस बेद बतावा। मैला जिव होइ तरन लखावा।
मैला तौ जब हता न भाई। जब यह कस निस्तार बताई॥
उजला कपड़ा धोवन कहिया। सो धोबी के कस कस दैया॥
मैले को धोबी समझावै। उजले को कस धोइ बतावै॥
या की बिधी बतावौ भाई। कस उजला धोवन बिधि गाई॥
उजला जीव बेद सँग साथा। मैला होत न पकरै हाथा॥
मैला करन बेद समझावा। जब जोइ उजला ज्ञान हिरावा॥
उजला कर निस्तारै बेदा। जीव जो आदि खानि बस खेदा॥
कर्मकाल सँग कीन्ह समाधा। अस अस बेदन करी उपाधा॥
बेद तो लिखा आदि से भाई। निरमल कोमल कर्म लखाई॥
जैसे बनिया करै दुकानै। बेचि खरीदि न टोटा जानै॥

अर्थ–ये वेदों द्वारा उद्धार की बातें कहते हैं और इस स्थिति में जीव का उद्धार विधाता ने कहाँ किया? पवित्र युग में पवित्र जीव पैदा हुआ और यह कहा जाता है कि उस समय के सारे मनुष्य पवित्र थे। इस स्थिति में क्यों कहा जाता है कि वेद ही सब का तारनहार है–यदि जीव मैला हो तो तरने की बात कहो–इस युग में तो कोई जीव मैला ही न था। जब उस समय जीव ही मैला नहीं था तब तुम इसके तरन-तारण के निस्तार की बातें, हे भाई! क्यों बता रहे हो। उजले कपड़ों को धोने के लिए कहों तो कैसे! उसे धोबी को कैसे कैसे कहकर दोगे। धोबी को तो धोने के लिए मैले कपड़े के लिए समझाओगे–और उजले के लिए कैसे धोने के लिए बताओगे। हे भाई! इसकी विधि बताओ कि उजले कपड़े के धोने की विधि क्या है? वह उज्ज्वल जीव बेद के संग और साथ था–यदि मैला होता तो उनका हाथ न पकड़ता। उस समय जब वेद का युग था तो क्या वेद ने पापवृत्ति (मैला करना) बताई थी और क्या उस समय समस्त उजला ज्ञान खो चुका था। वेद पापी को पवित्र बनाकर उसका निस्तार करता है–जीव तो, आदि काल से पाप की खानि में पड़ा हुआ है। जीव तो कर्म एवं काल के साथ समाधिस्थ हो उठा है–ऐसा ऐसा वेदों ने जीव के साथ कार्य किया है। वेद तो आदि काल से लिखा गया है और उसमें निर्मल कोमल कर्म की ही व्यवस्था है। जैसे कोई बनिया दूकान करता है और खरीदने-बचेने के बीच अपना घाटा नहीं होने देता

लेन न देन दुकान न जागा। टोटा करज ताहि कस लागा॥
बेद नाद दोउ संगहि आवा। तुम्हरे सास्तर अस अस गावा॥
बेदहि निरमल मैला कीन्हा। निरमल जब जब कछु लेन न देना॥
पुरुष पास जिव निरमल आवा। जुग निरमल जिव निरमल गावा॥
धोवन बेद भाख कस भाई। जब उजला उजले की राही॥
झूठा सौदा बेद लखावा। उजला मैला करन को चावा॥
मैला रहै जगत भौ भावै। उजला रहै तो घर को जावै॥
मैला रहै खानि में आवै। येहि कारन किया बेद उपावै॥

तीरथ ब्रत और चारों धामा। जप तप इष्ट नेम बहु कामा॥
ये सब पाप पुन्य बतलावा। येहि बिधि मैला बेद करावा॥
कर्म धर्म सब जीव फँदाई। उजले घर की राह भुलाई॥

अर्थ–वस्तु को लेते देते समय दूकानदार अन्य कोई बात नहीं जानता और वह वस्तु की कमी और कर्ज लगने के बारे में ही सोचता रहता है। वेद तथा नाद ये दोनों साथ-साथ आए हैं, ऐसा तुम्हारे शास्त्र में गाया गया है। लोगों ने (स्वार्थ वश) निर्मल वेद को मैला बना रखा है, और जब-जब वह निर्मल था:तब उससे किसी का लेना देना नहीं था। पुरुष के पास निर्मल जीव आया–उस निर्मल युग ने निर्मल जीव के बारे में कहा है। हे भाई! फिर धोने के लिए वेदों के पास जाकर क्यों कहते हो–जबकि पवित्र व्यक्ति पवित्रता की ही ओर जा रहा है। यह वेद झूँठी बातें कहा रहा है और पवित्र को अपवित्र करने की जैसी उसकी इच्छा है। आज जो अपवित्र है, वह संसार को अच्छा लग रहा है–और यदि पवित्र है तो केवल उसकी स्थिति घर तक ही सीमित है। यदि मैला है तो वह विपत्ति या माया की खानि में जाएगा और इसी कारण से वेद ने उसके पवित्र होने का उपाय किया है। वेद के उपाय हैं–तीर्थ, व्रत और चारों धामों की धर्मयात्रा, जप, तप, इष्ट के प्रति दौगम, नियम तथा अन्य धार्मिक कार्य। इन्होंने सभी को पाप पाप-पुण्य बतलाया गया है और यह सब बताकर वेदों को मैला करते हैं। धर्म एवं कर्मी सभी जीव के लिए भवसागर के फंदे हैं और सभी पवित्र घर की राहें भूल गए हैं।

घर की राह का धोका दीना। करे कर्म फिरि भयो मलीना॥
आदि अंत घर सुधि नहिं पावै। कर्म कर्म बिधि बेद बतावै॥
या की साखि बतावौ भाई। जग जिव झारि खानि में जाई॥
बेद निस्तार करन को आवा। उजला था तब नहिं समझावा॥
उजले में नहिं समझा भाई। मैले को कस पार लगाई॥
जस सहुकार चोर धर लीन्हा। घेरा ताहि कैद में कीन्हा॥
चोर ज्ञान संग छूटै नाहीं। साह ज्ञान संग घर को जाई॥
साह संग सुध जब ही पाता। तौं अपने घर को चलि जाता॥
यो अपना घर भूल न चीन्हा। ता से बेदन फाँसी दीन्हा॥
साह संत से उतरै पारा। चोरह बेद कैद में डारा॥
चोर संग ने फाँसी डारा। फाँस डारि कर कहै उधारा॥
जुगन जुगन संगहि चलि आवा। देखौं सब जग खानि समावा॥

अर्थ–उस परम पुरुष के पार के मार्ग के प्रति धोखा देते हैं–ये कर्म करके पुनः मलीन हो जाते हैं। अपने घर के आदि अन्त की याद तक उन्हें नहीं है और कहते हैं कि इन कर्म विधियों के लिए कहते हैं, इन्हें वेद बताते हैं। हे भाई! मैं इसका साक्ष्य बताओ क्योंकि सारे संसार के जीव नर्क में जा रहे हैं। वेद तो मुक्ति के लिए हल देने के लिए आया है–जब यह उझला था, तब पंडितों ने नहीं समझाया था। उसकी पवित्रता से तुमने, हे भाई! पवित्रता को नहीं समझा था और इन गन्दे कारणों से कैसे पार लगोगे? जैसे कोई सेठ-साहूकार रात को चोर पकड़ लिया हो और कैद में रखकर घेरा बना दिया हो। चोर अपने अज्ञान के कारण छूटता नहीं। वह अज्ञान को ही ज्ञान समझ रहा है। और सेठ उसी अज्ञान से भरा अपने घर को देखने जाता है–जब उसे सेठ के साथ ज्ञान होता है तो वह भी अपने घर को चला जाता–वह भूलकर भी अपना घर नहीं पहचान पाता और इसीलिए वेदों ने उस अज्ञानी को फाँसी लगा दी है। सेठ संतों का साथ करके भवसागर से पार उतर जाता है और वेद ने चोरों को कैद में डाल दिया

है और फाँसी दे देने के बाद वेद कहते है, मैंने उसका उद्धार कर दिया है। देखो, ये जीव युग युग से वेदों के साथ चले आए हैं, देखो, यह जीवों से भरा सारा संसार पाप (नरक) की खानि में डूबा हुआ है।

कइ उबरन की खबर न लावा। मरि मरि गये खबर नहिं पावा॥
मूए मुक्ति सभी मिलि गावा। जीवत मुक्ति न कोउ बतलावा॥
येहि बिधि बेद रीति है भाई। मुए मुक्ति को बेद बताई॥
जीवत मुक्ति देखिये आँखी। ताका मता कहनि सब भाखी॥
जीवत जीव मुक्ति को पावै। तहु नहिं आदि अंत घर जावै॥
घर की राह मुक्ति से न्यारी। सो सोइ जानै संत बिचारी॥

अर्थ–किसी ने भी किसी के उद्धार की कोई खबर नहीं लाए और सभी मर-मर कर उस भवसागर की खानि में चले गए, किसी की खबर नहीं मिली। सभी मृत व्यक्ति की मुक्ति की बात कहते हैं और जीवित व्यक्ति की मुक्ति की बात कोई नहीं बतलाते हैं। हे भाई! वेद की रीति ऐसी ही है–वेद तो मृत व्यक्ति की मुक्ति की बात बतलाते हैं। तुम सन्तों के साथ रहकर 'जीवित मुक्ति' अपनी आँखों से देखो–और उसके मत, और साक्षी सबका मैंने वर्णन कर भी दिया है। जीव जीवित रहते ही मुक्ति को प्राप्त करता है और उसके लिए कोई आदि-अन्त नहीं है और वह जीवित ही उस अपने परम धाम को पहुँचता है। यह परमधाम की राह मुक्ति से विलक्षण है–इसे वही जानता है–जो संतों के विचारों से जुड़ा है।

॥ प्रियेलाल उवाच। चौपाई॥

प्रियेलाल कहै बूझा स्वामी। वेद बिधी सब झूठी जानी॥
संध्या तरपन नेम अचारा। ये भी जाना झूठ पसारा॥
इनसे मुक्ति बिधी है न्यारी। ऐसी मन में समझ सिहारी॥
मुक्ति बिधी से पुरुष नियारा। सो पावै संतन की लारा॥
ऐसी खूब खूब मन आई। तब पुनि गिरे चरन पर धाइ॥
स्वामी करौ मोर निरबारा। मैं अब लागेउ चरन तुम्हारा॥
जो कछु कही सत्तमन भाई। जेहि बिधि तारा कूँची लाई॥
ऐसी पोढ़ पोढ़ मन मानी। जो जो भाखा मनहि समानी॥
अब अस दया करौं हो स्वामी। मन रहै चरन माहिं लपटानी॥
मोरे मन विधि ऐसी आई। तुम बिन राह कहूँ नहिं पाई॥
अस कहि माल डारि जिन दीन्हा। रात रहन मन में अस कीन्हा॥
सुरत गुपाल सुनौ तुम भाई। तुम अपने घर जाउ बनाई॥
हम तौ रहैं चरन के तीरा। जब मन आवै मौज सरीरा॥
सुरत गुपाल गये घर अपने। ये तौ चरचा सुनी न सुपने॥
येहि बिधि कहि अपने घर आये। प्रीयेलाल रहन मन भाये॥
ज्ञान उठा बैराग समाना। देखा जग झूठा संधाना॥
तिरिया पुत्र और धन धामा। तन छूटे कोइ आवै न कामा॥

तन पानी जस ओस समाना। फूटै बिनसै नित नित जाना॥
येहि बिधि समझि परा मन लेखा। ये जग ज्यों सुपने सम देखा॥

अर्थ–प्रियेलाल ने कहा, हे स्वामी मैंने समझ लिया है–और जान गया कि यह वेदविधि झूँठी है। सन्ध्या, तर्पण, नियम तथा आचरण–इन्हें भी समझ लिया है–ये झूँठ के फैलाव हैं। मुक्ति की विधि इनसे विलक्षण है और ऐसा मन में समझ गया और प्रतीति (विश्वास) हो उठी। वह पुरुष इस मुक्ति विधि से विलक्षण है और वह मुक्ति संतों की प्रेममयी सत्संगति से ही प्राप्त हो सकती है॥

आपकी इस प्रकार की बातें मेरी समझ में भलीभाँति आ चुकी हैं और वे उनके चरणों पर जा गिरे। हे स्वामी! आप मेरा समाधान कर दें और अब मैं आपके चरणों में आ लगा हूँ। आपने जो कुछ बताया, वह मेरे मन को सत्य प्रतीत हुआ और आप वह बताएँ कि जिससे ज्ञान के दरवाजे को खोलने के लिए ताले में चाभी लग जाए। मेरे मन ने आपके प्रौढ़ चिन्तन को स्वीकार कर लिया है और आपने जो-जो कहा है, वह मेरे मन में समाविष्ट हो चुका है। हे स्वामी! अब ऐसी दया करें कि मेरा मन आपके चरणों में लिपटा रहे। मेरे मन में अब यह ज्ञान आ रहा है कि आपके बिना कहीं भी मार्ग नहीं मिलेगा ऐसा कहते हुए उन्होंने स्वामी तुलसीदास जी के गले में माला डाल दी। और मन में यह निश्चय कि यहाँ रात्रि में रहेंगे। इसके बाद सुरति गोपाल को सम्बोधित करते हुए बोले कि हे भाई सुरति-गोपाल! अब तुम जाओ। हम तो तुलसी साहब के चरणों के पास ही तब तक रहेंगे जब तक इस शरीर में आनन्द आता रहेगा। सुरति गोपाल अपने घर गए–उन्होंने तो ये चर्चाएँ स्वप्न में भी नहीं सुनीं थीं। ऐसा कहकर ते इस प्रकार कह कर अपने घर आए और प्रिये लाल ने वहाँ रहने का मन बना लिया। प्रिये लाल का ज्ञान जागृत हो उठा, उनमें वैराग्य समा गया और उन्होंने देखा कि यह संसार झूँठा लक्ष्य है। पत्नी, पुत्र तथा धनधाम, इस शरीर के छूट जाने पर कोई काम नहीं आता॥

शरीर का जल ओस की भाँति शरीर में समा गया और वह समझ लिया कि यह स्थायी तत्त्व नहीं है–यह तो नित्य प्रति उत्पन्न और विनष्ट होने वाला तत्त्व है। मन में सांसारिकता का सारा प्रकरण इस प्रकार समझ पड़ा–जैसी इस संसार को उन्होंने स्वप्न में देखा हो॥

॥ बचन तुलसी साहिब॥ चौपाई॥

प्रियेलाल मन बिरह समानी। झरि झरि परै नैन से पानी॥
उठा ज्ञान जस सिंध समाना। उठी तरंग पुनि लहर प्रमाना॥
मुख से स्वाल बात नहिं आवै। बिरह लहर जस भुवँग सतावै॥
भुवँग डसे जस मन लहराई। मन में जहर लहर सी आई॥
जग देखा तन कछू न भावै। जला जंत जग बूड़ समावै॥

अर्थ–प्रिये लाल के मन में विरहभावना समा गई। (परम पुरुष के विछोह की भावना) और उनके नेत्रों से क्षण-क्षण अश्रु झड़ पड़ते थे। उनका स्फूर्त ज्ञान जैसे समुद्र में समा गया हो–तरंगे उठने लगीं–जिसके प्रमाण के रूप में वे लहरें थीं। उनके मुख से न प्रश्न उठते थे, न बातें आती थीं–बिरह की लहरें ऐसी उठती थीं–जैसे भुजंग (काला नाग) कष्ट दे रहा हो। सर्प के डस लेने के बाद जैसे मन लहरें लेने लगता है–उनके मन में विषबुझी लहर-सी आ गई। इस संसार को देखा, भौतिक जगत कुछ भी नहीं अच्छा लग रहा था, जैसे इस संसार के जीव जन्तु जलकर संसार में डूबकर समा गए हों॥

॥ प्रियेलाल उवाच॥ चौपाई॥

अब स्वामी मोहि सरनै लीजै। दया भाव मोहिं पर कीजै॥
कपड़ा नीके फेंकि निकारा। तोड़ जनेऊ कंठी डारा॥

अर्थ–हे स्वामी! अब आप मुझे शरण में ले लें और मुझ पर दया नाव करें। उन्होंने अपने अच्छे-वस्त्रों को शरीर के ऊपर से निकाल कर फेंक दिया और जनेऊ तथा कंठी को तोड़कर भूमि पर डाल दिया॥

॥ वचन तुलसी साहिब॥ चौपाई॥

पुनि तेहि ज्ञान भेद समझावा। ताके मन में कछु धीर न आवा॥
पुनि तेहि बोध ज्ञान गति गाई। डारि जनेऊ गले मेलाई॥
कपरा कंठी गहि पहिरावा। बूझ ज्ञान बोध मन आवा॥
कपरा में बिधि सिद्ध न होई। संत की राह और बिधि सोई॥
प्रियेलाल सुन चित दे काना। संत रीति रस करौं बखाना॥
त्यागन संग्रह सन्त न जाना। ये मने कर्म भर्म भरमाना॥
त्यागन करै सोई पुनि पावै। फिरि फिरि भोग भाव जग आवै॥
संग्रह बंधन जगत बँधाना। ये दोऊ भर्म भेद जग माना॥
संत मता दोऊ से न्यारा। संग्रह त्यागन झूठ पसारा॥
संतन सुरति निरति ठहराई। मनथिर करि करि गगन चढ़ाई॥
सूरति सूर बीर भइ द्वारे। नभ भीतर चढ़ि गगन निहारै॥
सुरति सुहागिन सूर सिधारी। नित नित गगन गिरा से न्यारी॥
ता की मैं अब सब्द सुनाऊँ। संत मते की राह लखाऊँ॥

अर्थ–पुनः उनको ज्ञान का रहस्य समझाया किन्तु उनके मन में किसी भी प्रकार का धैर्यभाव न उत्पन्न हुआ। उसके बाद तुलसीसाहब ने उनके लिए प्रज्ञाबोध की गति का कथन किया–और उनको जनेऊ को गले में डाल दिया। कपड़ा और गंठी को लेकर उन्हें पहनाया–फिर उनके मन को ज्ञानबोध हुआ। कपड़े द्वारा किसी भी विधि की सिद्धि नहीं मिलती–सन्तों की राह कुछ और प्रकार की है। हे प्रियेलाल! चित्त लगाकर कान से सुनो:मैं सन्तों की गति और उनके आनन्द का वर्णन कर रहा हूँ। सन्त न संग्रह जानते हैं और न त्याग–ये सब मन के कर्म है–जिनमें संसार भ्रमित है। जो जिस वस्तु का त्याग करता है, उसी को वह पुनः पाता है और पुनः पुनः इस भोगभाव से सम्पन्न जग में उत्पन्न होता रहता है। संग्रह और त्याग के बंधन में संसार बंधा हुआ है–ये दोनों संसार के बंधन के रहस्य तथा भेद माने जाते हैं। सन्तों का मन दोनों से पृथक है–और संग्रह त्याग का यह संदर्भ मिथ्या है। संतों ने तो सुरति एवं निरति की दशाएँ स्थिर की हैं--और वे मन को स्थिर कर करके शून्याकाश में पहुँचाते हैं और उस आकाश पर चढ़कर आमश की चारों ओर से देखते रहते हैं। सुरति रूपी सुहागिन अपने पराक्रमी पुरुष के पास जाती है और वह नित प्रति नित्य शून्य गगन की वाणी से विलक्षण होती है। अब मैं उसका शब्द सुनाता हूँ--और सन्त मत का मार्ग भी दिखाता हूँ।

॥ होली १॥

सुरति सुहागिन सूर भई री। गगन गिरा नभ गवन गई री॥ टेक॥
अधर हिये चढ़ि चसम चलीरी। पिय को परस घर आई अलीरी॥
अरध उरध बिच सुरति समानी। निरखा सब्द निरत अलगानी॥ १॥
महलन जब जब पिय को निहारी। प्रीत पुरातन प्रेम पियारी॥

अगम अधर घर निरखि निसानी। पिय को परसि दर ही लपटानी॥ २॥
सुख सागर मिलि सिंध समावा। बुन्दा समुन्द साध घर आवा॥
ज्यों पपिहा पिउ प्यास पुकारी। स्वाँति बुन्द पिउ पास मिलारी॥ ३॥
तुलसी तन मन सुरति लगाई। लैकी लगन पिय पलँग बिछाई॥
सेज सम्हारत हिये हुलसानी। ज्यों जल मिलि जल धार समानी॥

अर्थ–सुरति के सहयोग से चित्तात्मा रूपी सौभाग्यवती बलशालिनी हो उठी है और वह शून्याकाश में ध्वनित शब्दों के आधार पर आकाश की ओर चल पड़ी है। उसके नीचे-ऊपर सुरति समायी हुई है। उसने शून्याकाश के शब्द को सुनते ही निरति से अपने को अलग कर लिया। उस शून्याकाश के महल में जब अपने प्रियतम को देखा तो प्रियतम की पुरानी प्रीति में खो गई। उस अगम्य के बीच में घर के चिह्नों को देखकर और प्रिय का स्पर्श करके उसी स्थान पर ही आलिंगनवती हो उठी। सुख के सागर में मिलकर सिन्धु में समा गई और बूँद-समुद्र के मिलन को साधती (सिद्ध करती हुई) अपने घर में आ गई, जैसे पपीहा प्रिय की प्यास में उसे पुकारती रहता है क्योंकि वह जानती है कि स्वाति की बूँदे तो प्रिय के पास ही मिलेंगी। तुलसी साहब कहते हैं कि सुरति में तन-मन लगाकर और लगन के साथ प्रिय की बिछाई हुई पलंग पर वह लहकी। शैया को सम्हालती हुई वह हृदय में उमंगित हो रही है–और वह प्रियतम से इस प्रकार मिल रही है–जैसे जलधारा में जल मिलकर विलीन हो उठा हो॥

॥ होली २॥

अजब अली एक गगन गलीरी। सुरति चमक चढ़ि चटक चलीरी। टेक।
बिधि बिधि पुहुप बाग बन देखा। कहा कहौं अली अगम अलेखा।
ता बिच कंज कंवल मधु राजै। बिटप बरत तरु बिहँग बिराजै॥ १॥
सोभा भूमि अधिक छबि छाई। सुनरी सखी लख सुरति समाई।
तहँ सत सरवर ताल अनूपा। हंस भवन तन आतम भूपा॥ २॥
हिये के नैन दुरबीन लगाई। सिधु बुन्द परमातम पाई।
खिरकी अजर अली चढ़ि देखा। जहँ इक साहिब रूप न रेखा॥ ३॥
तुलसीसत गुरु देष सोक सब छूटा। कलसा कुम्भकरम का फूटा॥ ४॥

अर्थ–हे सखी! शून्याकाश की एक गली बड़ी विलक्षण है। सुरति के केन्द्र पर वह चमक एवं चटक कर चल पड़ी। उसने वहाँ नाना प्रकार के बागों तथा बनो को देखा–वे इतने अगम्य एवं अलेख थे कि उनका वर्णन क्या कहा जाए। उनके बीच में मधु से मधु से भरा एक कमल-कोश दिखाई पड़ा। वृक्षों की तरु शाखाओं पर अनेक पक्षी शोभित है॥ १॥ हे सखी! सुनो, उस भूमि की शोभा एकायक और बढ़ गई जब इसने सुरति में प्रवेश कर लिया। वहाँ सत्य सरोवर है, अनुपम ताल है–वहाँ आत्मा रूपी में दूरबीन लगाकर उस सिन्धु-विन्दु जैसे परमात्मा को प्राप्त कर लो। उस सखी ने खिड़की से चढ़कर उस अमर तत्त्व को देखा–वहाँ एक स्वामी दिखाई पड़ा–जिसके पास न कोई रूप था–न पहचान का लक्षण। तुलसी साहब कहते हैं कि यहाँ पहुँच कर समस्त शोक विनष्ट हो चुके–और कर्म-कुम्भ तथा कलश यहाँ फूट गया।

॥ दोहा॥

प्रियेलाल मत मूर, सूर सुरति अस बिधि भई।
गई गगन के पार, सार समझि संतन कही॥

अर्थ–हे प्रियेलाल! अन्यथा न मानो, ज्ञानी जनों की सुरतिसमाधि इसी प्रकार की होती है। वह सुरति के सम्पर्क मे आकर शून्याकाश के उस पार पहुँच जाती है, ऐसा सन्तों ने कहा है।

॥ चौपाई ॥

असअस सुरतिलोक लखि देखा। संत रीति रस अगम अलेखा॥
दिधि बैराग त्याग तन के री। ये सब खानि जगत भौ बेरी॥
जोगी जोग करत भरमाने। स्वाँसा पवन चढ़ावा जाने॥
इड़ा पिंगला सुखमनि माई। पवन भवन में जाइ समाई॥
गगन बिनसि सुनि स्वाँस नसाई। मनमत जोगी जुगति न पाई।
ज्ञानी गुनी मन आतम जानी। वा मनको पुनि ब्रह्म बखानी॥
आदि अंत का भेद न जानै। संत मता कैसे पहिचानै॥
संत मता कछु रीति नियारी। बूझै साधू समझ बिचारी॥
अस सुनि इष्ट भाव औतारा। ये सब जानौ काल पसारा॥
गढ़ि मूरति मंदिर मैं धारा। ये सब जानौ झूठ पसारा॥

अर्थ–इस प्रकार से सुरति लोक में प्रवेश कर-करके उसे देखा है। सन्तों की रीति और आनन्द अगम्य तथा अलक्ष्य है। इस शरीर के वैराग्य तथा त्यागादि ये सभी इस संसार रूपी भवसागर में कष्ट की खानि हैं और उनके शत्रु हैं। योगी योग करते हुए भी भ्रमित हैं और वे केवल स्वास द्वारा वायु को ही चढ़ाना जानते हैं–इंडा, पिंगला एवं सुषुम्ना से होते हुए वह वायु आकाश भवन में चढ़ जाती है। आकाश के अव्यस्थित होते ही वह श्वास नष्ट हो उठती है और वह मनमत्त योगी अन्य कोई मार्ग नहीं खोज पाता। गुणी ज्ञानी केवल आत्म तत्त्व को जानता है और उसी मन को पुनः ब्रह्म कहता है। वह आदि अन्त का रहस्य नहीं समझता है फिर, वह सन्त मत को कैसे पहचानेगा। सन्तमत की रीति तो कुछ विलक्षण है–साधु जन खूब समझ विचार कर उसे समझते हैं। इस प्रकार इष्ट भाव से जुड़े सारे अवतार हैं–इन सभी को काल का फैलाव ही समझो। मूर्तियों को गढ़कर मन्दिर में ही रखते हैं–इन सबको झूँठ-मूठ का फैलावा ही समझो॥

पानी पाहन में मन लावै। अगिनि तत्त जल तत्त समावै॥
नकल कृष्न कहौ किनको तारा। अस असुरन जिन आतम मारा॥
नकल कृष्न पाहन की आसा। पाहन मुक्तिकाल की फाँसा॥
या से जिव उबरै नहिं खाना। जुग जुग बंधन माहिं बँधाना॥
कृष्न राम जो संत बताया। ये औतारी कोउ नहिं गाया॥
गो इंद्री गोबिद कहाई। मनहिं कृष्न गोपिन के माई॥
गुन ही तीनों ग्वाल कहावै। बिंद बीच बिंद्रावन आवै॥
गो गोपी बिच कान्ह कहाई। ये मन बस रस इंद्री माई॥
अब या की सुन साखि बताऊँ। संध सब्द बिच भाखि सुनाऊँ॥

अर्थ–पानी तथा पत्थर (मूर्ति) में ये मन लगाते हैं। अग्नि तत्त्व जल तत्त्व में समाविष्ट हो उठती है। कृष्णा की मूर्ति (नकल) बताओ किसको भवसागर से पार कर दिया–उन्होंने तो ऐसे असुरों एवं जीवात्माओं का वध किया है–कृष्ण की मूर्ति में पत्थर से आशा की गई है और पत्थर की मूर्ति लोगों

के लिए काल की फाँस है। इस कार्य से यह जीव कर्म पाप की खान से नहीं उबर पाएगा और वह युगों-युगों तक बन्धन में फँसा रहेगा। कृष्ण-राम वही हैं—जिन्हें सन्तों ने बताया है—वे अवतारी हैं ऐसा किसी सन्त ने नहीं कहा है। गो का अर्थ इन्द्रिय है और इसीलिए वे गोविन्द कहे गए हैं—गोपियों के मन कृष्ण हैं और वे गोपियों में हैं। तीन गुण तीनों ग्वाले हैं। बिन्दु के बीच में वृन्दावन है। गो तथा गोपियों के बीच में होने के कारण वे गोविन्द कहलाते हैं—ये सभी मनतथा इन्द्रियों के रसानन्द हैं। अब इसकी साखी बता रहा हूँ, उसे सुनें और सिन्धु शब्द के बीच में मैं इसे कहकर सुना रहा हूँ।

॥ धमार ॥

अहो बस कान्हा गो माहीं हो ॥ टेक ॥

गो की गोप करम कहि ऊधौं, गुन सँग गैल गुवाल।
नित नित चालि चले मधुबन की, इंद्री रस खानि बसाई ॥ १ ॥
अच्छर रमत राह भइ राधे, नंद नाद सुत कान्ह।
खेलन खेल मेल फरफंदी, बूँदी तन रुचिर सुहाई ॥ २ ॥
सब बृज बनिताबिन्दाबन कीन्हा, जसुमति सो मति जान।
जो जस बुन्द सिंध से आये, ता की कर खोज लगाई ॥ ३ ॥
अरी अरजुन भौ खानि भीम बस, नकुल भये जगआई।
साधै देह देख आपन को, दो दृष्ट दों दृष्ट लखाई ॥ ४ ॥
सुरत सुधार पार तुहि कान्हा, सुनि बिधि बात बिचार।
छूटै मान खान चौरासी, सूरति सत द्वार लगाई ॥ ५ ॥
तुलसी तोल बोल मन भूला, भूल परम नहिं जान।
मन गुनग्वाल गोप गोपी सम, नित नित बिधि भवन समाई ॥ ६ ॥

अर्थ—अरे! कृष्ण! तो गायों के बीच बसे हुए हैं।

उद्धव? इन गायों के कर्म गोप नहीं हैं—ग्वाले तो गुणों से समन्वित होकर चल पड़े हैं। वे नित्य-नित्य मधुबन की चालें चलते हैं और इन्द्रियों के आनन्द की खानि यहाँ बसा दिया है ॥ १ ॥॥

'कृष्ण' शब्द के अक्षरों में रमती हुई साधिका राधा बन गई है और कान्ह नन्द रूपी नाद के पुत्र हैं। खेलने-खेलने में ही उनके बीच उलझाव भरे मेल हो उठे—और उनके शरीर पर बिन्दी अधिक शोभित हो रही है। सारी ब्रजवनिताएँ वृन्दावन बन गईं—यशोधा सुमति बनी—जो बिन्दुएँ जिस रूप में उस सिन्धु (परमात्मा) से आई थीं—उनकी लगकर खोज करो।

भीम के साथ अर्जुन आकर यहाँ भवसागर की खान बने और इस संसार में आकर नकुल भी वैसे ही बने। लौकिक और आध्यात्मिक दोनों ओर अपनी दोनों दृष्टियों को लगाए स्वयं को देखकर अपने देह के सुखों को साधने में लगे थे। सुरति सुधार रूपी हे कृष्ण तुम्हारे उस पार ही कल्याण की बातें और विचार हैं। सत्य पुरुष के सुरति-द्वार के पार लगने पर ही चौरासी योनियों का गर्व और पाप की खानि छूटेगी ॥

तुलसी साहब कहते हैं कि मनुष्य के मन का भ्रम इस संसार के तोल-बोल (दैनिक आचरण-व्यवहार) में ही भूला रहता है और वह इस संसार के मूल मर्म को नहीं जानता। मन का गुण तो ग्वाल, गो तथा गोपी के समान है और दिन-प्रतिदिन इसी विधि से कृष्ण से जुड़े व अपने भवन (मुक्ति भवन) में सिधारते रहते हैं

॥ होली ३ ॥

अहो आली होरी लख बौरी हो॥ टेक॥

सूरति रंग रँगों मन केसरि, ले पच पाँच निकारि।
सखियाँ पचीस पकरि पिचुकारी, मारौ मन को मुख मोरी॥ १॥
भरम अबीर गुलाल गुनन को, करि सतसंग उड़ाई।
ज्ञान की छानछरी भरि सूरति, सनमुख नैना नित जोरी॥ २॥
चोया चित्त अरगजा आसा, कुमकुम कुमति बिसार।
धर धर धर कूर सब काढ़ौ, करमन कर कीचर धो री॥ ३॥
नर तन नँगर बिंद बिन्द्राबन, तन मन चीन्ह बिहार।
होरी अँग भंग कर जानौ, तुलसी सज साज मिलौ री॥ ४॥

अर्थ–अरी सखी! तू होली देखकर पगला गई हो। सुरति रूपी केशर से अपन मन को रँग लो और तुम्हारे शरीर में पाँच इन्द्रियों की पाँच संसक्तियाँ है, उन्हें निकाल दो। पचीस सखियों के साथ पिचकारी पकड़कर मन की वृत्ति को मोड़कर पिचकारी मारो। भ्रम के अबीर और गुणों के गुलाम में सत्संगति करके उड़ा दो। सुरति समाधि ज्ञान के रंग भरकर उसके सामने हृदय नेत्रों को जोड़ दो। चित्त को चोवा बना लो, आशा को चन्दन बना लो। कुमकुम को कुमति समझो–तेजी से सारे कचरों-कूड़ों अर्थात् संसक्ति तथा वासनाओं के कूड़ों को हटा दो तथा कर्मों का कीचड़ भी दो दो। यह शरीर नगर है, बिन्दी वृन्दावन है उस पुरुष को शरीर तथा मन से पहचान कर उसके साथ बिहार करो। होली को भौतिक वासनाओ के रूप का भंजन समझो (उसे भंग करके) उस परमपुरुष से साज-सजाकर मिलन करो॥

॥ सोरठा॥

ये मन तनहिं बिचारि, गो गोपिन में रमि रहा॥
गही न सतगुरु बाँहि, थाह मिलत लखि ब्रह्म सम॥

अर्थ–इस मन तथा शरीर पर विचार करके जो (इन्द्रियों) तथा गोपिनों (इन्द्रियों के स्वामी) में रमें रहो। जब तक तुम सत्गुरु की बाँह नहीं पकड़ोगे–तुम्हें सदृश परम पुरुष की थाह नहीं मिलेगी॥

॥ चौपाई॥

ये मन ज्ञान ब्यान बिधि ठानी। ता से अपनी आदि न जानी॥
सतगुरु से कछु बूझ न पाई। बिष रस राह फिरौ भौ माईं॥
मन थिरहोइ सुरति घर पावै। तन बिच गगन गैल चढ़ि आवै॥
गुन गफलत को दूर बहावै। आँख खोल अपना घर पावै॥
सब में व्यापक ब्रह्म समाना। दरसै गगन फोड़ि असमाना॥

अर्थ–इस मन का उपयोग ज्ञान चर्चा के बिना करते हो–इसीलिए तुम अपनी आदि नहीं समझ पाते। हे भाई! तुम सत्गुरु से समझकर कुछ जान नहीं पाते–इसलिए तुम विषय रस की राह पर भरकते फिरते हो। जब मन [illegible] तभी सुरति का घर मिलेगा और इसी शरीर के बीच की गली से चढ़कर चित्त ऊपर तक जाता है। गुण के साथ जुड़े भ्रम को दूर भगा दो और तभी आखें खुलने पर अपना घर प्राप्त करोगे। सभी व्यक्तियों में वह व्यापक ब्रह्म समाया हुआ है–वह शरीर के ज्ञान गगन के टूट जाने पर शून्याकाश में चमकेगा॥

संत कृपा स्रुत सैल लखावै। मन चढ़ि गगन ब्रह्म को पावै॥
सुन्न सहर बिच ब्रह्म समाना। चढ़ि चढ़ि देखैं संत सुजाना॥
ज्ञानी ब्रह्म ज्ञान से भाखै। ये सब झूठे ब्राह्मन ताकै॥
ब्रह्म ज्ञान मन देखि न पावै। मन सँगगुन गिरिगाँठि बंधावै॥
सतसँग करै ब्रह्म जब जानै। बिन सतगुरुस्रु तिनहिं पहिचानै॥
हिये दृग दरपन को नित माँजै। सुरमा सुरति नैन प्रति आँजै॥
निरख परै दरसन की रेखा। निज निज नैन ब्रह्म को देखा॥
गुन गफलत निज दूर निकारा। आँख खोल कर ब्रह्म निहारा॥
बिधि बसंत बिच गाइ सुनाऊँ। प्रियेलाल लख लखन लखाऊँ॥

अर्थ–सन्तों की कृपा से ही वह श्रुति का पर्वत दिखाई पड़ता है और उस पर चढ़कर मन ब्रह्म को प्राप्त करता है। ब्रह्म तो उस शून्याकाश के नगर में समाया हुआ है और वहाँ चढ़ चढ़ कर सन्त–सुजान ही उसे देखा करते हैं। ज्ञानी जन ज्ञान द्वारा ब्रह्म का वर्णन करते हैं–ये सभी झठे ब्रह्मज्ञानी हैं। ब्रह्म ज्ञान को मन देख नहीं पाता। मन के साथ तो त्रिगुणात्मक तत्त्व गाँठे बाँधे पड़ रहता है। सत्संगति करो और ब्रह्म की जानो:बिना सत्गुरु की श्रुति के उसे नहीं पहचाना जा सकता। हृदय रूपी नेत्रों को निरन्तर दर्पण द्वारा सदा मज्जित करो (निर्मल करो) और प्रतिदिन सुरति रूपी सुरमें से नेत्रों को अंजित करो। इसके बाद ही उस ब्रह्म के दर्शन की रेखाएँ दिखाई पड़ने लगेंगी और नित्य-प्रतिनित्य उस ब्रह्म को अपने नेत्रों से देखों। गुणों से उत्पन्न भ्रमों को नित्य अपने मन से दूर निकाल दो और आँख खोलकर उस ब्रह्म को देखो। इस रहस्य को मैं बसंत राग से गाकर सुना रहा हूँ–हे प्रियेलाल! देखो, मैं उसके लक्षणों को तुम्हें दिखा रहा हूँ।

॥ बसंत॥

मत भरमै रे घर में दीदार। टुक आँख खोल गफलत बिसार॥ टेक॥
ब्यापक सब में अखंड ब्रह्म। छाँड़ भटक दुनिया के भर्म।
जुगजुग भरमत करि बिचार। सुरति नैन नित सत सुधार॥ १॥
बन भुलान घर बिसरी बाट। ठग सँग कीन्हौ घर न घाट।
दिना चारि तन की चिन्हार। छूटत तन भुगत होनहार॥ २॥
बूझ समझ घर खोज रोज। अंदर में मन मार मौज।
सँग सतगुरु करि ले निरधार। भटक भूल सब दे निकार॥ ३॥
जिन जिन सरन सतगुरु लीन्ह। तिनतिन पायौअगम चीन्ह।
अगम गली इकबिधि बिचार। तुहितुहि तुलसी वार पार॥ ४॥

अर्थ–तुम्हारा इष्ट (दृश्य) तो तुम्हारे घर (शरीर) में ही है, क्षण भर के लिए आँखें खोलकर भ्रम दूर करो। सभी में वह व्यापक अखण्ड ब्रह्म है और दुनिया के भ्रमों को त्यागकर भटकना दूर करो। सोचते-सोचते युग-युग तक भ्रम में डूबे रहे और अब सुरति के नेत्रों से उस सत्य को समझो। तुम बनों में भूल गए हो, तुम्हें सही-घाट (मार्ग) भूल गया है। तुमने गुण एवं कार्य जैसे ठगों का साथ किया, और तुम न घर के रहे न घाट के। इस संसार की पहचान चार दिनों की है और इस शरीर के छूटते ही तुम भवितव्यता को भोगने लगते हो। तुम बूझकर तथा समझकर उस तत्त्व को प्रतिदिन खोजो और मन को अन्दर अन्दर दबा कर आनन्द लिप्त हो जाओ। हे निराधार व्यक्ति! तू साथ में सतगुरु को ले ले और

उस अगम्य तत्त्व को पहचान कर उन्हें प्राप्त करो। इस विधि द्वारा एक मात्र अगम गली का तुम विचार करो और तुलसी साहब कहते हैं कि इस प्रकार तुम स्थित होगे।

॥ दोहा ॥

वार पार तुलसी लखौ, पकौ चरन के ठाहिं।
चखौ अगम रस ब्रह्म को, थकौ थीर मन माहिं॥

अर्थ–तुलसी साहब कहते हैं कि इस पार और उस पार को मैंने देखा और सतगुरु के चरणों में मैं परिपक्व हुआ। इसके बाद मैंने उसे परम ब्रह्म के रस को चखा और चखकर स्थिर मन से आनन्दित विश्रान्तिमयी (थको) हो उठा॥

॥ चौपाई ॥

ये तन पाइ बीत नहिं चीन्हा। कल्प कल्प रहे काल अधीना॥
जब से सुरति आइ जग माईं। बन्धन काल भई भौ आई॥
आई सुलछ लेन अस जानी। लाभन भयौ बिच बिषम बिकानी॥
इंद्री बस गुन गैरत माईं। फँसी फाँस कछु कही न जाई॥
सबमिलि घेरघार बस कीन्हा। घर चीन्हें बिन भई अधीना॥
अब सुनु गाइ बसंत सुनाऊँ। ता में स्रुत साखी समझाऊँ॥

अर्थ–यह शरीर पाकर अतीत को नहीं पहचाना और कल्प-कल्प तक मैं काल के वश में रहा। जब से यह सुरति इस संसार में आई काल का बन्धन भी तभी से इस भवसागर में आया। ऐसा जानकर वह माया लक्ष्य बनाकर सुरति को लेने के लिए आई किन्तु उसे कोई लाभ नहीं मिला और वह बीच में ही बिक गई। इन्द्रियों के वशीभूत होकर वह गुणों द्वारा नष्ट कर दी गई और वह इस फाँस में कुछ इस प्रकार फँस गई कि कुछ कहते नहीं बनता। सभी ने मिलकर घेर घार करके उसे अपने वश में कर लिया–और बिना अपना घर पहचाने दूसरे के अधीन हो गई। इस विषय को अब मैं 'बसंत' राग द्वारा समझा रहा हूँ और उसी में श्रुति, तथा साखी का समन्वय कर रहा हूँ।

॥ बसंत ॥

आई आई सखीस्त्रुतितिल छलेन। भौसागर भई अति बेचैन॥ टेक॥
पाँच पचीस मिलि ठाटो है ठाट। रोक रही सब घाट घाट।
पाँच तत्त्व गुन तीन सैन। तन भीतर रुहे दिवस रैन॥ १॥
आदि अंत गइ बिसरि बाद। सतसंग बिखरी संत साध।
ज्ञान गली बिधि भूली बैन। दुख सुख लागे करम देन॥ २॥
है कोई सतगुरु बूझै सार। भौसागर कोइ करत पार।
पिय की पीर तन तलफै नैन। लखि पाऊँ पद सुख से चैन॥ ३॥
आये बहुत भये दिवस काल। फँसि गइ रही मायामोह जाल॥
रबिदुखपावत परत गहन। तुलसी रहनि बिन झूठी कहनि॥ ४॥

अर्थ–हे सखी! श्री अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आ गई–सम्पूर्ण भौसागर बेचैन दिखाई पड़ने लगा। पाँच इन्द्रियों के तत्त्वों तथा पचीख ने मिलकर ठाठ ठाचा है और सारे घाटों पर यह अवरोध पैदा कर रही है–पाँच तत्त्व एवं तीन गुणों के संदर्भ शरीर के भीतर रात दिन पड़े रहते हैं। इसके

फलस्वरूप मनुष्य को अपनी आदि अन्त की स्थिति भूल जाती है–सन्तों की इच्छा एवं तत्संग दोनों भूल चुके। वाणी ज्ञान की गली को भूल चुके और कर्म के अनुसार सुख-दुःख प्राप्त होने लगे। कोई सत्गुरु है, जो इसके सार तत्त्व को समझे और कोई भवसागर को पार कर दे, इसकी चिन्ता है। इस प्रियतम की याद में शरीर तथा मन, दोनों तड़प रहे हैं–इच्छा है, सुखपूर्वक उनके चरणों को देख लें, मन को चैन प्राप्त हो उठे।

बहुत सारे दिन तथा समय और काल इसके लिए आए किन्तु मैं उस पद को न देख सकी क्योंकि माया के मोह जाल में फँसी रही। मैं ग्रहण में पड़े सूर्य की भाँति कष्ट पा रही हूँ– तुलसीसाहब कहते हैं कि मैं उस अनुभव के साथ तादात्म्य करके रह नहीं सकी हूँ–इसलिए प्रलक्ष अनुभव के बिना यह सारा कथन झूँठा है।

॥ दोहा ॥

बहुत काल भये पिउ तजे, माया मोह भुलान।
नर तन पाइ न पिउ लखा, कस घर परै पिछान॥

अर्थ–प्रियतम को छोड़े बहुत समय हो गया, मन माया मोह में भूल चला है। इस मानव शरीर को पाकर मैंने प्रियतम को नहीं देखा-माया से ग्रस्त मुझको घर की पहचान कैसे जान पड़े॥

॥ चौपाई ॥

ता से अब ये नर तन पाई। अब तुम समझि चलौ घरमाई॥
काया बन ब्रह्मंड समाना। बन बन फूल भास उरझाना॥
ये औसर सूरति समझावा। मन मलीन तजि सुरति समावा॥
ये दुरलभ तन देइ पुकारा। सो तन पाइ करौं निरबारा॥

अर्थ–इसलिए अब इस मानव शरीर को पाकर अब तुम समझ कर अपने घर में चलो (या धर्म का आचरण करो)। इस शरीरमय होकर तुम ब्रह्मांड में प्रवेश करो और वन-वन में स्थित इन फूलों की सुगंध से अपने को फँसा लो। इसी अवसर के लिए मैंने सूरति का ज्ञान दिया है और मन की मलीनता का त्याग करके सुरति में समाविष्ट हो जाओ। इस दुर्लभ शरीर को देह पुकारती रहती है और इस तन को पाकर उसके साध्य तत्त्व (परमात्मा या पुरुष) का निराकरण करो।

॥ दोहा ॥

ये दुरलभ तन पाइ कै, किया न पिउ परसंग?
मगन मिलन मन भीख भौ, ज्यों मुठि मरकट रंग॥

अर्थ–इस दुर्लभ शरीर को पाकर यदि प्रियतम के साथ निर्वाह न किया तो इस माया से मन का मिलन-बन्दर की मुट्ठी में पड़े हुए अन्न की भाँति निरवांक भिक्षा प्राप्ति के समान है।

॥ सोरठा ॥

सुनि बसंत में सीख, सब सब संतन भाखिया।
लखौं आदि बिख्यात, मन सूरति सम थिर करौ॥

अर्थ–अब बसंत छन्द की शिक्षा सुनें–इसका वर्णन सारे-के-सारे सन्तों ने किया है। मन को समाहित करके दुख आदि विख्यात तत्त्व को सुरति समाधि द्वारा देखो और सुरति समाधि की ही भाँति इस मन को स्थिर करो॥

॥ बसंत ॥

आई आई कंथ बसंत लाग। काया बनफूले भँवरबाग॥ टेक॥
तन भीतर नैना निहार। सुरति निरति लेकर गुँजार॥
नौ पल्लव बेली भँवर जाग। ले सुगंध तन बिषय त्याग॥ १॥
अमर लोक इक अजर दूब। हद अनहद के पार खूब॥
चढ़िकर देखौ सुरति साग। जो कोइ निरखै बड़े भाग॥ २॥
कोइ लखै संत बसंत बूझ। जिन आदि अंत की राह सूझ॥
ये अदेख अंदर में फाग। जहँ बिबिध तरंग रँग उठत राग॥ ३॥
सत्त पुरुष पद पुहुप पास। जहँ भूमि भँवर मन कर निवास॥
तुलसीदास भौ भरम आग। कोइ जरत न जागै बड़ अभाग॥ ४॥

अर्थ--कंत से जुड़ी हुई बसंत ऋतु आ गई-आ गई। काम रूपी बन फूल खिल उठे। भँवरे बाग में घूमने लगे। इस शरीर के भीतर नयन को देखो—ये भ्रमर सुरति-निरति दोनों को लेकर गुंजरित हैं। नव पल्लवों की वेलि पर भ्रमर जाग उठा है और सुगंधि के पार उसने वासनाओं का त्याग कर दिया है। उस अमर लोक में एक न नष्ट होने वाली वर्बा है। वह हद एवं अनहद दोनों के बीच फैली है। उस सुरति रूपी हरी पत्तियों पर चढ़कर देखो:और जिसने उन्हें देख लिया है, उनका भाग्य धन्य है। इस बसन्त को भली भांति समझता हुआ कोई सन्त ही उसे देखता है। इस हृदय के अन्तर्गत इस अदृश्य फाग (होली) को देखो-जहाँ पर नाना प्रकार के रंगों की तरंगों का राग उठ रहा था। वह सत्य पुरुष उस कमल चरण के पास स्थित है—वहीं भूमि पर मन रूपी भ्रमर की निवास स्थली है। तुलसी साहब कहते हैं कि सभी भवसागर रूपी भ्रम की आग में पड़े हैं—कोई जगता हुआ उस आग में जलता नहीं—जलने वाले अभागे हैं।

॥ चौपाई ॥

सत्त पुरुष पद पार सुनाऊ। पदम पार घर आदि लखाऊँ॥
मन जेहि बूझ समझ स्रुत संगा। ये तन बिनस जात छिन भंगा॥
निरति सुरति संग कहत बुझाई। भौ सागर बिच रही फसाई॥
मनमत मोट खोट सँग लागी। बन रस फूल भयौ अनुरागी॥
देखि देखि तन अजर तमासा। सूरति मन मिल करै बिलासा॥
आदि अंत घर सुरति बिसारी। मन संग फिरि फिरि फहम बिचारी॥

अर्थ—उस पार स्थित तत्त्व पुरुष का मैं वर्णन करके सुना रहा हूँ। उस सहस्त्रार कमल के पार स्थिति आदि घट का मैं वर्णन करूँग। श्रुति के साथ ही समझकर मन जिसे समझ पाता है, और उसको जानते ही यह क्षणभंग शरीर नष्ट हो उठता है। सुरति तथा निरति के सम्बन्ध को समझाकर कहता हूँ ये यदि दोनों एक साथ हैं तो ये भवसागर बीच फँसए रहती हैं। यदि मन में थोड़ा भी खोट हैं तो यह खोट साथ में लगा रहेगा और व्यक्ति नाना प्रकार की संसक्तियों में वाटिका के फूल के प्रति अनुरक्त जैसा दिखेगा। इस शरीर के इस नष्टकारी तमाशे को देखते हुए मेरा विचार तो यह है कि सुरति समाधि के साथ मन मिलाकर आनन्द-विलास करें। आदि तथा अन्त को ध्यान में रखकर व्यक्ति सुरति को विस्तार देता है और मन के साथ घूमता वह भ्रमवश असत्य को सत्य मान बैठता है।

॥ दोहा ॥

सुरति आदि घर छाँड़ि कै। फिरै मन गुन की लार।
जगत जाल बिच फँसि रही। क्यों कर उतरै पार॥

अर्थ–सुरति समाधि के अपने मूल घर का त्याग करके मन गुण की संसक्ति में घूमता है फलस्वरूप वह संसार के जंजाल में फँसा रहता है, इस भवसागर से पार वह क्यों हो॥

॥ बसंत ॥

देखौ देखौ सखी इक अजर खेल। चहुँ दिसि फूलो अमरबेल॥ टेक॥
बन बन फूले बिबिध भाँति। कहँ लग बरनौं पुहुप जाति॥
भिनि भिनि भौंरा करत केल। बिधि अपने घर छाँड़ि मेल॥ १॥
आदि अंत सूरति बिसार। चार लाख चौरासी धार॥
कहँ लगि बरनौं ब्रह्मांड सैल। पिंड ब्रह्मांड रच्यौ भूमि भेल॥ २॥
बेद पुकारत नेति नेति। बेदांत बरनि ताहि ब्रह्म कहेत।
संत ताहि कहै काल गैल। वे दयाल गति भिनि अपेल॥ ३॥
पिंड ब्रह्मांड रचना के पार। वे साहिब दोऊ से न्यार।
रूम रूम ब्रह्मांड खेल। इन सब से वे भिनि अकेल॥ ४॥
संत सदा वहँ आवैं जाई। वै जानैं सब भेद पाइ।
तन तिल्ली तुलसी जो तेल। मथि काढ़े तब भया फुलेल॥ ५॥

अर्थ–हे सखी! एक अविनष्ट होने वाला खेल देख लो–फिर-फिर देख लो, चारों दिशाओं में अमर की लता खिली हुई है। वन-वन में नाना प्रकार के पुष्प खिले हैं, मैं पुष्प की जातियों का कहाँ तक वर्णन करूँ। नाना प्रकार के भौंरे केलिक्रीडा कर रहे हैं और उनकी क्रीड़ा विधि ऐसी है कि वे अपने मूल घर के मेल-मिलाप छोड़े हुए हैं। इस खेल के बीच आदि और अन्त दोनों के अन्तिम सत्य सुरति को भूल चुके हैं तथा चार लाख चौरासी हजार योनियों की धारा में बह रहे हैं। इस ब्रह्मांड की बाटिका का कहाँ तक वर्णन करूँ, भूमि तो पिंड एवं ब्रह्मांडमयी रची नही गई है। वेद नेति-नेति पुकारते रहते हैं। वेदान्त ने उसका ब्रह्म रूप में वर्णन किया है। संत गण उसे काल का गलियारा कहते हैं। उन परम पुरुष दयालु की गति कुछ भिन्न है। वे साहब, पिंड तथा ब्रह्मांड की रचना के उस पार हैं और वे इन दोनों से विलक्षण हैं। उनके रोयें-रोयें में ब्रह्मांड का खेल है–और इसके होते हुए भी वे इन सबसे भिन्न हैं। संत सदा वहाँ से आता जाता रहता है–और वे ही उनके सारे सदस्यों को समझते रहते हैं। तुलसी साहब कहते हैं कि शरीर तिल है, और उसी का तेल और मथकर जब निचोड़ा गया तो फुलेल बन गया।

॥ सोरठा ॥

जस तिल्ली तन तेल, भा फुलेल फूलै मिलै।
तन भीतर अस खेल, खिलै कँवल मिलि पुरुष में॥

अर्थ–जैस तिल से तेल हैं–उसी प्रकार इस शरीर में वह परम तत्त्व है। फूलों को मिलाकर तिल का तेल मथने पर फूलेल बन जाता है, इस शरीर के भीतर इसी प्रकार का खेल है। पुरुष के अन्तःकरण से मिलकर वह सहस्त्रार कमल खिल उठता है।

॥ चौपाई ॥

ज्यों तिल्ली बिच तेल निकारा। मिलि गया फूल फुलेल पुकारा॥
ऐसे संग पुरुष मन भाई। सतगुरु जानि भेद बतलाई॥
प्रियेलाल अस बूझ विचारा। संग्रह तयागन झूठ पसारा॥
सतगुरु सूरति संध लखावै। तजि सब बंध जीव घर आवै॥
अस मुनि ज्ञान समझ बिच बैठा। दिल बिच प्रियेलाल के पैठा॥

अर्थ—जैसे तिल्ली से तेल निकाला जाता है—वह फूल में मिलाकर मथने के बाद फुलेल बना जाता है। ऐसा ही साथ पुरुष में शरीर के मिल जाने से होता है। इस तत्त्व को सतगुरु से समझकर उसको बताया है। हे प्रियेलाल! इस रहस्य को इसी प्रकार समझो तथा विचार करो:संग्रह त्याग की फैलाव भी इसके संघर्क में असत्य है। सतगुरु ही सुरति का सिन्धु दिखलाता है—और सारे बचपनों का त्यागकर ही जीव इस सुरति के निवास घर आगमन करता है। ऐसा ज्ञान सुनकर प्रियेलाल की समझ के साथ उनके हृदय में बैठ गया॥

॥ चौपाई ॥

तुलसी कहैं बुझाइ, प्रियेलाल लखि बूझि बिधि।
सूरति सिंध समाई, जब लखि पावै भेद यह॥

अर्थ—तुलसी साहब समझाकर कहते हैं, हे प्रियेलाल! इसके रहस्य को समझो तथा देखो। इस भेद को जब मनुष्य समझ लेता है, तो वह सुरति सिंधु में समाविष्ट हो उठता है।

प्रियेलाल यह बूझ बिचारी। राति रहे तुलसी के लारी॥
प्रात होत अस्थानैं जाऊँ। अब तौ तुलसी सरन समाऊ॥
रहे राति पुनि सतसंग कीन्हा। भाव भेद ता को हम दीन्हा॥
कालिंद्री मग सुरति लखाई। जमुना धार को धमक चढ़ाई॥
नौलख कँवल द्वार में लाई। गोकुल फाड़ि गगन को जाई॥
स्याम सेत खिरकी बतलाई। छिन छिन सूरति सिखर लगाई॥
तिल के आगे पहाड़ छिपाना। मुकर बीच खिरकी में जाना॥
भौंरे होत डंडवत कीन्हा। चरनन सीस प्रीत से दीन्हा॥
पुनि अस्थान जान हम कहिया। सीस टेकि मारग को गहिया॥
पहुँचे कासी नगर मँझारा। सुरत गुपाल चले तेहि द्वारा॥

अर्थ—प्रियेलाल ने हृदय में समझकर ऐसा विचार किया कि आज रात्रि तुलसी साहब के पास रहें। प्रातःकाल होने के प्रातःकाल होने के बाद में अपने निवास स्थान के लिए जाऊँगा और अब तो तुलसी साहब की शरणागति में ही समाविष्ठ हो उठूँ। वहाँ निवास किया तथा उनकी सत्संगति की और मुझे सुरति सिद्धान्त का रूप एवं रहस्य बताया। यमुना मार्ग द्वारा उन्होंने उन्हें सुरति दिखा दी और यमुना की धारा की धमक उनकी चेतना समाधि पर चढ़ा दी। वे उन्हें नौलाख पंखुरियों वाले कमल के द्वार पर ले आए और वे फिर पर्वत को तोड़कर आकाश में जा पड़े। उन्हें श्याम-श्वेत खिड़की बता दी और क्षण-क्षण उन्होंने सुरति को उस शून्याकाश के पर्वत पर स्थिति शिखर पर लगा दिया। हृदय रूपी तिल के आगे वह पहाड़ छिप गया और उन्होंने खिड़की के बीच दर्पण को समझ लिया।

प्रातः होते ही प्रियेलाल ने तुलसी साहब को दंडवत किया और अत्यन्त प्रेम के साथ उनके चरणों पर अपना सिर टेका दिया। उन्होंने फिर अपने घर जाने के लिए कहा है और सिर टेक कर मार्ग पर चल पड़े। वे काशीनगर में पहुंचे (उनका आना सुनकर) सुरति गोपाल उनके द्वार पर पहुँचे।

॥ चौपाई ॥

फूलदास रेवती पुनि आये। अरज भाव बिनती सोइ लाये॥
हिरदे गुनुवाँ चरन को लीन्हा। दास भाव बिनती जो कीन्हा॥
फूलदास अस अरज बिचारी। स्वामी दृष्टि दास पर डारी॥
दयासिंध इक अरज बखाना। सो साहिब सुनियौ दै काना॥
सूरति से नरियर को मोड़ा। कदली पत्र भाव लख फोड़ा॥
चौका पार चँदरवा ताना। सूरति से फोड़ा असमाना॥
अष्ट कँवल बिच पवन सुपारी। पहुँचे जाइ सूरति की लारी॥
उदित मुदित दोउ दीप मँझारा। चिढ़े जाइ खिरकी के पारा॥
चौथा हाथ पान पर जाई। पान परवाना अगम चढ़ाई॥
अठमेवा पुरुष को देखा। भाखौं कस कस अगम अलेखा॥
ता के रूप देख नहिं काया। अगम अगाध जनाम अमाया॥
देखा कँवल नैन नभ न्यारा। धरती गगन और सकल पसारा॥
चर और अचर दीप नौखंडा। बिधि बिधि से देखा ब्रह्मंडा॥
सूरति सैल नित करै अकासा। फूलदास बिधि अगम तमासा॥
फूलदास पार को जाई। पुरुष सुरति से भेंटि समाई॥
फूलदास मति सब बिधि गाई। सो तुलसी को आनि सुनाई॥
तुलसी ग्रंथ बिधि सकल बखाना। संत सुजन जन सुनिहैं काना॥

अर्थ–फूलदास ने इस प्रकार विचार किया कि स्वामी तुलसी साहब ने मुझ दास पर ऐसी ऐसी दृष्टि डाली है। दयासिन्धु तुलसी से हमने एक अर्ज की थी और उन्होंने इसे ध्यानपूर्वक सुना था। सुरति द्वारा मैंने नारियल को मोड़ दिया और केले के पत्ते का रहस्य समझकर उसे फोड़ डाला। अष्ट कमलों के बीच वायु की सुपारी थी और उसके सहयोग से सुरति के पास पहुँच गया। उदित-मुदित नामक दो द्वीपों के मध्य में खिड़की थी। उस पर जाकर चढ़े। चौथा हाथ पात पर पहुँचा और उस पान रूप परवाने ने मुझे अगम पर चढ़ा दिया। उस अठमेवा जैसे परम पुरुष में वहाँ मैंने देख लिया और उसके अगम्य एवं अलेख का वर्णन मैं कैसे-कैसे करूँ। उसके न रूप है, न लक्षण है, न शरीर है–वह अगम्य है, अगाध है, अनाम है, संसक्ति रहित है। मैंने उसके विलक्षण कमल नेत्रों को उस आकाश में देखा और वह समस्त पृथ्वी तथा आकाश तक फैला हुआ था। चर, अचर तथा नौखंडों में स्थित द्वीप तथा नेक अनेक रूपों के ब्रह्मांडों को मैंने देखा था। सुरति नित्य उस वाटिका में बिहार करती है–फूलदास कहते हैं कि यह अगम्य तत्त्व की रहस्यमयी क्रीड़ा थी।

फूलदास सुरति के माध्यम से उस पर पहुँचे और और सुरति तथा पुरुष के परस्पर भेंट में वे समा गए। फूलदास कहते हैं कि मैंने अपनी बुद्धि से सबका वर्णन कर दिया और जाकर मैंने सारी बातें तुलसीसाहब को सुना दी। तुलसी साहब ने अपने ग्रंथों में इन समस्त स्थितियों का वर्णन किया है। सन्त और सज्जन इसे अपने कानों से सुनेंगे॥